
Registration No. V-36244/2008-09

ISSN :- 2350-0611

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor

Dr. Kamlesh Kumar Singh

Assistant Professor

Department of Sociology

Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College

Sevapuri, Varanasi

Volume - XII

No. - 2

(April – June 2025)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - A Referred Journal, Published by : Quarterly

Correspondence Address :

C 4/270, Chetganj

Varanasi, (U.P.)

Pin. - 221 010

Mobile No. :- 09336924396

Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by

Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh**, United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar**, School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao**, Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri**, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh**, Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan**, Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh**, Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora**, Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya**, Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray**, Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi**, Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh**, Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari**, Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain**, Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh**, Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh**, Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari**, Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas**, Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan**, Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey**, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights**, a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Research Highlights"

➔	प्रकृति और नृत्य का सुन्दर संयोजन: रायगढ़ नरेश चक्रधर सिंह की रचनाओं के विशेष संदर्भ में डॉ. सम्राट चौधरी	01-03
➔	समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव खुशबू कुमारी	04-06
➔	महिला शिक्षा के समक्ष आने वाली समस्याएं एवं चुनौतियां: गया जिला के विशेष संदर्भ में गुंजा कुमारी	07-13
➔	1962 का भारत-चीन युद्ध तथा कश्मीर समस्या पर उसका प्रभाव डॉ. लालबहादुर राम	14-15
➔	बिहारीलाल हरित के साहित्य में मानवीय संवेदना और प्रतिरोध पी. सोमा शेखर	16-18
➔	योग एवं तनाव प्रबन्धन : मानसिक स्वास्थ्य का समग्र दृष्टिकोण डॉ. जयप्रकाश नारायण यादव	19-22
➔	संतों का गढ़ छत्तीसगढ़ संजय मिंज	23-27
➔	मॉरीशस की लेखिका सुचिता रामदीन के लोकगीतों की संवेदना डॉ. संजय श्रीरामजी धोटे	28-32
➔	उषा प्रियंवदा की कहानियों में तात्त्विक विवेचना डॉ. धर्मशीला कुमारी	33-35
➔	श्री. अरविंद का जीवन दर्शन भाषा कर्म, कर्मफल तथा कला की प्रासंगिकता डॉ. अमित कुमार गुप्ता	36-39
➔	वैदिक युग में नारी शिक्षा के लिए सामाजिक बाधाएँ और उनके समाधान डॉ. अशोक कुमार सिंह कुशवाहा	40-44
➔	ग्रामीण जीवन को गतिशील बनाने में नगरीकरण का योगदान डॉ. विभा कुमारी	45-50
➔	बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के कारण पारिवारिक बिखराव राजश्री अहिरवार डॉ. ओमप्रकाश यादव	51-54
➔	वामनावतरणम् महाकाव्य और औचित्य सम्प्रदाय विपुल शिव सागर प्रो. उमा शर्मा	55-58
➔	महिलाओं के स्वास्थ्य पर अकेलापन के प्रभाव का अध्ययन कुमारी ममता प्रो० (डॉ०) पूनम सिंह	59-62

➤	प्राचीन भारत में विवाह : अवधारणा एवं प्रकार रोहित बाजपेयी	63-65
➤	उषा प्रियम्बदा के कथा साहित्य में नारी संवेदना डॉ. प्रिया जोशी	66-70
➤	स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस पत्रिका का योगदान : एक अध्ययन डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह	71-74
➤	युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर मादक पदार्थों का प्रभाव (नालन्दा जिला के बिहार शरीफ नगर के विशेष संदर्भ में) मो. गयास सरवर	75-78
➤	गोरखपुर जनपद के शहरी तथा ग्रामीण उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन आनन्द प्रताप निषाद प्रो. किरन सिंह	79-85
➤	उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी तथा ग्रामीण विद्यार्थियों की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन अर्चना मौर्या प्रो. किरन सिंह	86-92
➤	स्वतंत्रता के बाद कश्मीर समस्या का ऐतिहासिक अध्ययन डॉ. हरीश कुमार सिंह	93-96
➤	मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के जनजातीय संगीत वाद्य यंत्रों का सांस्कृतिक एवं लोक जीवन में प्रारूप निकुंज वेद	97-100
➤	भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और आर्थिक असमानता का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन डॉ. शिखा गिरि	101-103
➤	साहित्यों में वर्णित बुद्ध का सामाजिक एवं राजनीतिक विचार : एक विश्लेषण उत्तम सिंह	104-107
➤	बाल विवाह में योगदान देने वाले सामाजिक कारक कुमारी शोभा	108-109
➤	नेतृत्व क्या है डॉ. अशोक कुमार मिश्रा	110-111
➤	संस्कृतसाहित्ये भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य समीक्षात्मकमध्ययनम् विद्युत् प्रभा वेहेरा	112-114
➤	लोक और आधुनिक मूर्तिकला के बीच संवाद : बस्तर के सन्दर्भ में डॉ. उमेश कुमार नेताम	115-117
➤	नागार्जुन के उपन्यासों में नारी विमर्श सुदीप पाण्डेय	118-121
➤	ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शारीरिक दक्षता, जीवन शैली एवं लक्ष्य निर्धारण का तुलनात्मक अध्ययन डॉ. अच्छे लाल यादव	122-124

➤	गांधी के ग्राम-स्वराज की प्रासंगिकता : ग्रामीण आर्थिक-आत्मनिर्भरता के विशेष संदर्भ में <i>हिमांशु सिंह</i>	125-129
➤	हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में नारीवादी दृष्टिकोण और राष्ट्रवादी चेतना : एक ऐतिहासिक और समकालीन यात्रा <i>पवन कुमार मिश्रा</i> <i>डॉ. अभिषेक मिश्र</i>	130-133
➤	रामकथा के परिप्रेक्ष्य में 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास : विचार बोध <i>डॉ. गेलजी भाटिया</i>	134-138
➤	पृथक बिहार आन्दोलन : एक अवलोकन <i>आकाश दीप</i> <i>प्रो. (डॉ.) दीनेश प्रसाद कमल</i>	139-141
➤	वैश्विक पटल पर 1857 के क्रांति का विश्लेषणात्मक अध्ययन <i>नन्दिता यादव</i> <i>डॉ. गोविन्द सिंह दागी</i>	142-144
➤	डिजिटल युग में महाविद्यालय पुस्तकालय की बदलती भूमिका और चुनौतियाँ <i>अजय कुमार यादव</i>	145-148



प्रकृति और नृत्य का सुन्दर संयोजन: रायगढ़ नरेश चक्रधर सिंह की रचनाओं के विशेष संदर्भ में

डॉ. सम्राट चौधरी*

यह संसार ईश्वर की सबसे सुन्दर रचना है। प्रकृति की हरियाली, नदियाँ, झरने, पेड़-पौधे, पशु, पक्षी, फूल-फल, कुछ ईश्वर की अनुपम कृतियाँ हैं। प्रकृति के इस अनुठी रचना के साथ ही सम्पूर्ण जीव जगत का अस्तित्व जुड़ा हुआ है। सभ्यता के विकास से पहले मानव समाज प्रकृति से ही अधिक जुड़ा हुआ था। प्रकृति में जीवनयापन करने की प्राथमिक आवश्यकताएँ, शिकार करना, शिकार के बाद आनंद की अभिव्यक्ति, विभिन्न जानवरों, पक्षियों की चाल-चलन, गति आदि का अनुकरण, हाव-भाव, चेहरे के भावों से कुछ करके बताना यही सब आगे चलकर नृत्य के रूप में, नाटक के रूप में विकसित हुआ होगा। समय के साथ-साथ कलाएँ विकसित होती गयीं, आगे चलकर ललित कला एवं उपयोगी कला के रूप में जाना गया है। कला में सृजनात्मकता तो प्रकृति की ही देन है। मनुष्य सदैव सौन्दर्य का अभिलाषी रहा है। सुन्दर से सुन्दरतम की ओर हमारा मन सदा उत्सुक रहता है। जीवन की सार्थकता मानों और इसी सौन्दर्य पर निहित है। प्रकृति के कण-कण में सौन्दर्य समाहित है। कलाकार के जीवन में यह सौन्दर्यानुभूति प्रकृति का ही देन है। कलाकृति में प्रकृति की सुन्दरता का वर्णन कलात्मक अभिव्यक्ति है। कथक नृत्य में रायगढ़ का नाम आज चौथा घराना के नाम से जाना जाता है। लखनऊ, जयपुर और बनारस—कथक नृत्य शैली के यह तीन घराना पूर्व से ही प्रसिद्ध था। छत्तीसगढ़ में स्थित रायगढ़ रियासत केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी विशेष महत्व रखती है। आज कथक नृत्य में जब भी रायगढ़ घराने की बात होती है तो रायगढ़ नरेश चक्रधर सिंह जी का नाम, संगीत, नृत्य अपितु कला जगत में इनके महान योगदान आदि विषय मुख्य रूप से चर्चा में आता है। नवाव वाजिद अली शाह के मृत्यु के बाद कथक जगत में 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में संकट के घने बादल छा गये थे समाज में भी उन दिनों नृत्य-संगीत का दयनीय अवस्था के चलते कलाकार इधर-उधर भटकने लगे, ऐसे ही समय में सन् 1905, 19 अगस्त को गणेश चतुर्थी के शुभ दिन पर राजा भूवदेव सिंह के राज प्रसाद में चक्रधर सिंह का जन्म हुआ। बचपन से ही सांगितिक माहौल में रहे, सन 1924 में रायगढ़ के राज सिंहासन पर आसीन हुए तथा कला के संरक्षण में कार्य करना प्रारंभ कर दिया था। शास्त्रीय नृत्य संगीत को उन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया।

राजा साहब स्वयं एक प्रख्यात तबला वादक, पखावज वादक, साहित्य में भी गहरी रुची रखते थे। जीवन के अल्प आयु में ही उन्होंने 'नर्तनसर्वस्व', 'मूरज परन पुष्पाकर', 'ताल बल पुष्पाकर', 'ताल तयोनिधि', राग रत्न मजुषा' जैसे बहुमूल्यवान ग्रंथों की रचना की है। आश्चर्य की विषय यह है कि एक ही व्यक्ति अपने जीवन काल क स्वल्प आयु में अतने सारे ग्रंथों की रचना कैसे किये होंगे। राजा साहब एक महान रचनाकार के साथ-साथ प्रकृति प्रेमी भी रहे। जिसका उदाहरण उनके रचनाओं में स्पष्ट रूप से झलकता है। प्रकृति से संबंधित रचनाओं की बात करे तो रायगढ़ घराने की रचनाओं में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों का अवलोकन कर सूक्ष्म कलात्मक दृष्टिकोण से अपनी स्वरचित बन्दिशों में, गीत, ठुमरी, गजल आदि में प्रकृति का वर्णन करते हुए इन सभी का सार्थक नामकरण भी किया है। इनके रचनाओं में विशेषता यह है कि कोई भी रचना हो उसके विशेषता व अर्तनिहित कथा अनुसार नामकरण मुख्य है। इससे पूर्व कथक नृत्य में नृत्य की बन्दिशों का नामकरण नहीं हुआ था। आज के सन्दर्भ में भी कथक नृत्य के रायगढ़ शैली में यह नए आयामों को जोड़ने में राजा साहब का योगदान विचारणीय है। रायगढ़ की रचनाओं में प्रकृति के विभिन्न तत्वों के चित्रण से यह प्रतीत होता है कि राजा साहब की प्रेरणा प्रकृति थी।

1936 में इलाहाबाद में आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में चक्रधर सिंह ने अपना बहुमूल्य भाषण दिये थे। संगीत नृत्य के प्रति उनका गहन चिंतन, प्रकृति के प्रति उनका लगाव आदि इनके कह गये बातों में से स्पष्ट है। संगीत की व्यापकता, हमारे जीवन में उसका असर या यूँ कहा जा सकता है, कि आज जो Music Therapy एक महत्वपूर्ण विषय है यह बाते तो राजा साहब ने कई वर्ष पहले कहे गये हैं। उन्होंने

* एम.ए., पी एच.डी (कथक), इं.क.सं.वि.खैरागढ़ (छ.ग.)

Email - joy24samrat@gmail.com, Phone No.- 9862780357

कहा था "सॉप के समान विषधर जीवन और हरिण के समान चौकड़ी भरने वाले जंगली जन्तु भी इसके प्रभाव से तुरन्त वश में कर लिया जा सकते हैं।कृष्ण की वंशी से तो केवल पशुपक्षी ही नहीं वरन समग्र चर और अचर मुग्ध हो गये थे। पक्षियों की मधुर बोलियां भी चलते मुसाफिरों को बरबस रोक लिया करती हैं।" (सिंह, मांडवी, कथक नृत्य परम्परा में रायगढ़ दरबार बी.आर.रिदमस 2013, P-17,18) इन विषयों पर इनके द्वारा रचित रचनाओं पर कई विद्वानों ने चर्चा की है। प्रकृति में ऋतु, पेड़-पौधे, फूल-फल पर उन्होंने अनेक बन्दिशों की रचना की है। यह सब विषय मेरे शोध कार्य में भी सम्मिलित रहा इन्हीं विषयों पर कुछ प्रमुख रूप से चर्चा इस शोध आलेख पर किया जा रहा है।

प्रकृति के जिन-जिन तत्वों के बारे में राजा साहब ने अपने रचनाओं में उल्लेख किया, उनमें से कुछ बन्दिशों के पढ़ते से या उसमें प्रयुक्त किये गये कुटाक्षरों में उन तत्वों का आभास या एक संकेत अवश्य प्रतीत होता है। ऐसे ही कुछ रचनाओं में दलबादल परन, गज विलास परन, चमक बिजली, कड़क बिजली, मत्तमयूर आदि में प्राकृतिक तत्वों का वर्णन स्पष्ट प्रतीत होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह बन्दिशें नृत्य में अधिक प्रचलित हैं या फिर यह बात अधिक सार्थक प्रतीत होता है क्योंकि इस संदर्भ में विद्वानों ने कलाकारों ने इन बन्दिशों पर अनेक चर्चा किये, प्रयोग किये। राजा साहब द्वारा बन्दिशों में कुछ ऐसे कुटाक्षरों का प्रयोग हुआ है जो सिधा-सिधा प्रकृति से जुड़ जाता है। उदाहरण के लिए एक बन्दिश जो जोड़ा परन के नाम से जाना जाता है, जिसमें बोल कुछ इस प्रकार है :- झिनकिट, कुकु, तिद्दी, तद्दा यहां पर झिनकिट से झींगुर (Cricket) कीट की आवाज, झींगुर जब अपने पंरों को आपस में तेजी से रगड़ता है तो उससे जो ध्वनि निकलती है उसे झीं कहा गया है।

तिद्दा-यह टिड्डा (locust) या टिड्डी नामक कीट के अनुसार उपयोग में लाया गया है। इस प्रकार के कई उदाहरणों से प्राकृतिक तत्वों का इन रचनाओं में सुन्दर चित्रण देखा जाता है।

फूलों पर केन्द्रित कई सारे रचनाएं हैं, जिसके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि फूलों के नाम से बन्दिश को जाना जाता है। गंधपुष्पी, जवाकुसुम, रक्तपुष्पी, हेमपुष्प, सुरप्रिय, मुक्तापुष्प, कादम्ब, मेघपुष्प, कुरबक आदि अनगिनत फूलों के नाम से रचनाएं हैं। वैसे तो इन बन्दिशों में तबला-पखावज के कुटाक्षर व बोलों का ही प्रयोग हुआ है नाम केवल फूल के अनुसार है। इससे एक आशय यह लगाया जा सकता है कि उस समय राजा साहब ने इतने सारे बन्दिशों की रचना की है शायद उन बन्दिशों को संरक्षण की दृष्टिकोण से इन अलग-अलग फूलों का नाम दे दिया गया होगा। परंतु इससे भी आश्चर्य की बात यह है कि इनमें से कई सारे फूलों का नाम और उन सब फूल हमारे आसपास के वातावरण में अनुपलब्ध है। उदाहरण :-

हेमपुष्प	-	इसे अशोक नाम से जाना जाता है इसका प्रयोग आयुर्वेद में किया जाता है।
विजयसार	-	इसे मालबार किनो, इंडियान किनो आदि वृक्ष के नाम से जाना जाता है।
मेघपुष्प	-	यह पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है यह गुच्छे में खिलती है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि राजा साहब ने प्रकृति में इतने खूबसूरत फूलों को कितना पास से देखा होगा तभी नृत्य की इन बन्दिशों को फूलों के नाम से जोड़ दिया। इनका यह रचनात्मकता प्रकृति के साथ नृत्य के अंतर्संबंध को भी स्थापित करता है। इनको द्वारा रचित इन बन्दिशों को बड़ी सुक्ष्मता से और गहन अध्ययन की आवश्यकता है जिससे नृत्य में प्रयोग के समय इसकी विशेषता को ध्यान में रखते हुए अंगों की अभिव्यक्ति किया जा सके। दलबादल आदि रचनाओं में वर्षा ऋतु का भाव स्पष्ट है। गजविलास में गज की आकृति, चलन आदि को नृत्य में बहुत ही खूबसूरत ढंग से दर्शाया जाता है। गजविलास रचना का प्रेरण राजा साहब को उनके ही महल में उनके पालतू हाथी से मिला है। राजा को उस हाथी से बेहद लगाव था यह कहा जाता है कि राजा के मृत्यु के बाद उनके गम में हाथी ने दिवार पर सर पटकते हुए अपना प्राण दे दिया। यहा प्रकृति के साथ उनका जुड़ाव स्पष्ट है। 'मत्स्यरंगवली' (पक्षी किलकिला और मीन) में एक पक्षी (Kingfisher) का मीन यानि मछली के ताक में रहना, मछली का तालाब में इधर-उधर विचरण करना, पक्षी का शिकार करना आदि विषयों को इस घराने के नर्तक बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं। 'मत्तमयूर' में मयूर का नृत्य प्रमुख है। बोलों का संयोजन भी मयूर के पंख फैलाकर नृत्य करना, उसमें जो छंद-गति का आभास मिलता है वो बहुत ही रोचक है।

शुद्ध नृत्य के रचनाओं के अतिरिक्त कथक के भाव पक्ष को भी महाराज ने समृद्ध किया है। उदाहरण :-

नायिका वर्णन (तिलक कामोद दादरा)

"चन्द्र बदनि, मृग लोचनी, दामिनी दुति गोरी।

..... मुख मंडल शशि स्वरूप।

लटकन बेणी अनुप। मानों नागिनी स्वरूप

(राम, कार्तिक, रायगढ़ मे कथक नई दिल्ली, राज कमल प्रकाश प्रा. लि. 1982)

यहाँ नायिका का वर्णन है। प्रकृति की उपमा दी गई है। नायिका की मुखमंडल को चन्द्र के साथ, आंखों को मृग यानि हिरण के आंखों से तुलना किया गया है इत्यादि।

‘खिले है फूल हर एक जाँ खुदा की कुदरत के’ प्रस्तुत रचना में ईश्वर की सुन्दर तथा अप्रतीम रचना इस संसार व प्रकृति के सौन्दर्य को दर्शाया गया है। ‘नगमये बुलबुल’—सुरीली आवाज या गीत गाता हुआ बुलबुल पक्षी की बात कही गयी है। इस प्रकार अनेक रचनाएं है जिस पर प्रकृति के सुन्दरता को नृत्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने की अनेक सम्भावनाएं है।

कलाकार का संबध सदैव प्रकृति से रहा है। प्रकृति की रहस्य को , व्यापकता को राजा चक्रधर सिंह ने आत्मसात किया होगा तभी इनकी रचनाओं में प्रकृति की सुन्दर छवि हमें अभिभूत करती है। प्रकृति के अनुरूप ही इनके रचनाओं की विशेषता है चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता। राजा साहब के जीवन व शासनकाल के सत्य आयु में ही इनका योगदान आने वाले कई दशकों तक संगीत व कला जगत के इतिहास में सुनहरे अक्षरों से लिखा रहेगा।

सन्दर्भ सूची

- 1 सिंह, मांडवी, कथक परम्परा, स्वाति पब्लिकेशन, 2010
- 2 सिंह, मांडवी, कथक नृत्य परम्परा में पब्लिकेशन रायगढ़ दरबार, बी.आर. रिदमस 2013
- 3 Ashirwadam Dr.P.D.Raigarh Darbar
- 4 महंत भगवान दास माणिक, कथक घराना रायगढ़, नई दिल्ली



समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव

खुशबू कुमारी*

शोध सार :-

वैश्वीकरण शब्द दो शब्दों विश्व और एकीकरण से मिलकर बना है जिसका अर्थ है कि पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था को एकीकृत करना है और उन्हें एक ही छत के नीचे लाना है। इसका मुख्य मकसद देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दूरियों को दूर करना है। वैश्वीकरण के पीछे की कामना पूरे विश्व को एक बनाना है। हम रोजमर्रा के जीवन में न जाने कितने ही वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करते हैं लेकिन आप भी यह जानते हैं कि वे सभी वस्तुएं/सेवाएं जरूरी नहीं कि भारत देश में निर्मित की गई हों। यानि अमेरिका, जापान, चीन में बनें वस्तुओं का उपभोग भारत में बड़े पैमाने पर हो रहा है और यही वैश्वीकरण है। यह उदाहरण भूमलीकरण के आर्थिक आयाम दिखाता है।

विशिष्ट शब्द :- वैश्वीकरण, एकीकरण, विकास, सामायोजन, आर्थिक इत्यादि।

वैश्वीकरण से आशय विश्व के विभिन्न समाजों और अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण से है। यह उत्पादों, विचारों, दृष्टिकोणों, विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं आदि के आपसी विनिमय के परिणाम से उत्पन्न विचार है। इसके कारण विश्व में विभिन्न लोगों, क्षेत्रों एवं देशों के मध्य अन्तः निर्भरता में वृद्धि होती है। वहीं पश्चिमीकरण का आशय ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके अंतर्गत समाज के विभिन्न पहलुओं यथा—भाषा, रहन—सहन, उद्योग, प्रौद्योगिकी, आर्थिक गतिविधि, राजनीति आदि में पश्चिमी विशेषताओं का समावेश होने लगता है।

वैश्वीकरण के संदर्भ में कह सकते हैं कि — यह एक प्राचीन अवधारणा है। इसका बीज पाश्चात्य पूंजीवाद व उपनिवेशवाद में देखा जा सकता है और जिसने अन्य देशों के संसाधनों पर नियंत्रण के रूप में अपनद प्रक्रिया को आगे बढ़ाया।

प्राचीन काल में प्रसिद्ध रेशम मार्ग द्वारा भी भारतीय उपमहाद्वीप समेत चीन, फारस, यूरोप और अरब देशों के साथ व्यापार—वाणिज्य के माध्यम से सभ्यताओं के बीच अंतर्क्रिया बढ़ी। समय के साथ विभिन्न धर्मों जैसे—इस्लाम, बौद्ध और हिन्दू धर्म का यूरोप व अफ्रीका के देशों में प्रचार—प्रसार भी वैश्वीकरण का उदाहरण है।

ब्रिटेन या अन्य यूरोपीय देशों द्वारा उपनिवेशों में प्रचलित संस्कृति, भाषा, दर्शन आदि को अपने देशों में पहुँचाया गया, जिससे वैश्वीकरण को बढ़ावा मिला। इस संदर्भ में औद्योगिककरण के पूर्व पश्चिमी देशों में भारतीय सूती वस्त्रों की व्यापक मांग को देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण को पश्चिमीकरण के पर्याय के रूप में देखा जा रहा है। इस अवधारणा का आधार यह है कि वैश्वीकरण एक आधुनिक परिघटना है। वर्तमानमें सूचना क्रांति के प्रसार, विभिन्न देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की स्थापना और पश्चिम की प्रभावित से संचालित अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से वैश्वीकरण की प्रक्रिया पश्चिम से निर्गत हुई प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त गैर—पश्चिमी देशों में भी पश्चिमी संस्कृति व जीवन शैली को लेकर स्वीकार्यता बढ़ी है। किन्तु यह भी सत्य है कि पूर्व के देशों की संस्कृतियों का प्रसार पश्चिम सहित दुनिया के अन्य देशों में भी हुआ है। वर्तमान समय में पूरा विश्व एक गांव की तरह बन गया है जहाँ दुनिया के विभिन्न देश एक दूसरे से कई प्रकार के लेन देन करते हैं। यह लेनदेन विचार, ज्ञान, सूचना, सामान और सेवाएं आदि का होता है। वैश्वीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो कि है आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक। हालांकि आर्थिक क्षेत्र में इसका महत्व सामाजिक और सांस्कृतिक से कहीं ज्यादा है। दुनिया के सभी देश या भूभाग किसी न किसी रूप से एक दूसरे से जुड़े हैं।¹

विश्व के सभी देश अपनी वस्तुओं और सेवाओं का आदान प्रदान अन्य देशों में सुगमता से कर पा रहे हैं। इससे दोनों देशों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से फायदा मिलता है। भारत में अगर जापान में बनी वस्तुएं बिक रही हैं तो इससे जापान और भारत दोनों को आर्थिक रूप से फायदे मिल रहे हैं। वैश्वीकरण की परिभाषा कई विद्वानों ने दी है, लेकिन अगर हम उन सभी परिभाषाओं का निचोड़ निकालें तो पता चलता है कि इसका अर्थ भौगोलिक सीमाओं के परे जाकर सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आयामों का विकास करना ही है।

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

1. टॉम जी पामर: "सीमाओं के पार विनियम पर राज्य प्रतिबन्धों का ह्रास या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनियम का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्व स्तरीय तन्त्र।"
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन : "लोगों और देशों की बढ़ी हुई अंतर्संबंधता और अन्योन्याश्रयता।"

समाज वैश्वीकरण के फायदे और नुकसान पर बंटा हुआ है। इसके महत्व से ज्यादा लोग इसके नकारात्मक पक्ष को ज्यादा उभारते हैं। हालांकि इसके जहाँ कई फायदे हैं और इसके कई नुकसान भी हैं, जिन्हें नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। वैश्वीकरण को भूमंडलीकरण, ग्लोबलाइजेशन, अन्तरराष्ट्रीयकरण भी कहा जाता है अंग्रेजी में इसे कहा जाता है।

भारत में वैश्वीकरण की शुरुआत वर्ष 1990 से माना जाता है, लेकिन ऐसा कहना पूरी तरह गलत होगा। जब हम वैश्वीकरण के इतिहास पर नजर डालते हैं तो पता चलता है कि यह प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। माना जाता है कि मनुष्य की उत्पत्ति और विकास से ही इसकी शुरुआत हो गई थी। हालांकि इसका कोई पुख्यता प्रमाण अभी उपलब्ध नहीं है। लेकिन दुनिया की प्राचीन सभ्यताओं की खोज और अध्ययन से पता चलता है कि उनके बीच व्यापार होता था।

प्राचीन समय से इसलिए कहा जाता है कि – सिंधु घाटी सभ्यता और मेसोपोटामिया की सभ्यता के बीच व्यापार संबंधों के साक्ष्य देखने को मिलते हैं। अगर हम थोड़ा आगे आते हैं तो इसका एक रूप हमें मौर्य साम्राज्य, गुप्त साम्राज्य, इसका व्यापक स्वरूप 16वीं शताब्दी से देखने को मिलता है जब पुर्तगाल का वैश्विक विस्तार शुरू हुआ। पुर्तगालियों ने अफ्रीका और भारत के साथ विस्तार और व्यापार किया जो वैश्वीकरण का पहला प्रमुख व्यापारिक रूप था। इसके बाद ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद से आर्थिक वैश्वीकरण में बड़ा उछाल देखने को मिला। इसके अलावा दो विश्वयुद्धों ने भी भूमंडलीकरण का रास्ता प्रशस्त किया।² वैश्वीकरण के संदर्भ में निम्न बातों को मुख्य माना जाता है।

- आर्थिक आयाम
- राजनीतिक आयाम
- सामाजिक आयाम
- सांस्कृतिक आयाम

इनमें सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक आयाम है जो वैश्वीकरण का एक मुख्य उद्देश्य भी है। अगर ध्यान दिया जाए तो दुनिया के सभी देश मुख्य रूप से आर्थिक उद्देश्यों और हितों को पूर्ण करने के लिए ही एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हालांकि इसके अन्य तीनों आयामों को नजरंदाज करना भी अनुचित होगा जो कमोवेश वैश्वीकरण के महत्वपूर्ण पहलू हैं।

1. वैश्वीकरण के आर्थिक आयाम :-

वैश्वीकरण के आर्थिक पहलू को सही ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सका है। आर्थिक वैश्वीकरण का सीधा अर्थ अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी अंतरराष्ट्रीय संगठनों और तथा विश्व भर में आर्थिक नीतियों के निर्धारण में इनके द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका पर जाता है। इसे संकुचित करना अनुचित होगा। बल्कि इसके अंतर्गत राष्ट्रीय आर्थिक अवरोधों का दूर होना, व्यापार एवं सेवाओं का मुक्त प्रवाह, निवेश में उदारीकरण, विदेशी सीधा निवेश आदि सम्मिलित है।

आर्थिक आयाम के अंतर्गत आने वाले मुख्य बिन्दु को इस प्रकार देखा जा सकता है।

1. निजीकरण :-

टेलीविजन पर यानि निजीकरण की खबरे सुनते हैं। लेकिन इसकी शुरुआत इंग्लैंड और अमेरिका से हुई थी जहां उद्योगों और सेवाओं के निजीकरण की वकालत की गई। निजीकरण का सामान्य अर्थ सार्वजनिक संपत्तियों को निजी स्वामित्वों के हाथों बेचना। इसके पीछे का उद्देश्य व्यवसाय को वैश्विक अर्थव्यवस्था की चुनौतियों का सामना करने और अधिक कुशल बनाने के लिए किया गया है।

भारत में भी नब्बे के दशक में निजीकरण से जुड़े महत्वपूर्ण कदम उठाए गए और सार्वजनिक संपत्तियों का निजीकरण किया गया। इसके साथ ही लाइसेंस राज को खत्म करना, सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों में विनिवेश आदि शामिल था। ये सभी कदम वैश्विक अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखकर किया गया जोकि वैश्वीकरण के आर्थिक आयामों का एक पहलू है।

2. उदारीकरण :-

उदारीकरण का अंग्रेजी में कहा जाता है। इसका सामान्य अर्थ यह होता है सामाजिक तथा आर्थिक नीति के क्षेत्रों में प्रतिबंधों में छूट। इसका उद्देश्यों सरकारों को व्यापार आदि कार्यों में भूमिका को घटाना और

बाजारों को सबके लिए खोलना। देश की सरकारें आर्थिक क्षेत्रों से हाथ खींच लेती हैं और उन क्षेत्रों पर सरकार के नियंत्रण को सीमित किया जाता है। पहले के समय में अगर एक देश किसी अन्य देश में व्यापार करना चाहता था तो कई प्रकार के प्रतिबंध लगाए जाते थे।

3. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश :-

वैश्वीकरण के आर्थिक आयाम के बाद सामाजिक आयाम पर भी नजर डालते हैं। अक्सर लोग भूमंडलीकरण के सिर्फ आर्थिक मायने ही निकालते हैं और इसके सामाजिक आयाम को खारिज करते हैं लेकिन यह अनदेखी ही कही जा सकती है। भूमंडलीकरण न सिर्फ आर्थिक बल्कि समाज देश के सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों पर भी अपनी छाप छोड़ता है।

1. श्रम सुधार और श्रम कल्याण :-

वैश्वीकरण का सबसे बड़ा सामाजिक प्रभाव श्रम सुधार और श्रम कल्याण की दिशा में हुआ है। इसकी वजह से श्रम संबंधित विभिन्न नीतियों और कानूनों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले हैं। सार्वजनिक क्षेत्र वेतन एवं रोजगार नीतियों, न्यूनतम वेतन निर्धारण एवं रोजगार सुरक्षा नियम आदि उपायों के माध्यम से सुधार किए गया और निरंतर किया जा रहा है। लेकिन इसका दूसरा पहलू यह है कि इसकी वजह से श्रमिकों के वेतन कम हो रहे हैं।³

वैश्वीकरण की इस आंधी में अब उत्पादकों के पास विकल्पों की बाढ़ आ गई है और इस वजह से श्रमिकों के वेतन में गिरावट देखी जा रही है। हालांकि एक सकारात्मक पहलू यह है कि इससे रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि देखी गई है। लेकिन साथ ही नई तकनीकों के आने से कुछ क्षेत्रों में बेराजगारी के बढ़ने की चिंता भी दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है। वर्तमान समय में इसका सबसे बड़ा उदाहरण दिवाली पर्व को ले सकते हैं जिस दिन चीनी सामानों और दियों की खरीद ज्यादा हो रही है और भारत में बन रहे मिट्टी की दियों की खरीददारी में लगातार गिरावट देखी जा रही है।

3. प्रवासन और शहरीकरण :-

आर्थिक वैश्वीकरण की वजह से सामाजिक क्षेत्र पर काफी असर पड़ा है। हालांकि पहले भी लोग बेहतर रोजगार और श्रम मूल्य की तलाश में अपने देश समाज की भौगोलिक सीमा लांघते थे लेकिन भूमंडलीकरण के बाद से इसमें तीव्रता देखी गई है।⁴ प्रवासन अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों से होता है और शहरों की तरफ भागता है जिसके कई लाभ तो कई हानिया भी हैं।

इसका मुख्य कारण वैश्वीकरण ही है जो शहरीकरण को बढ़ावा देने का कार्य करता है। इसके साथ ही बेहतर रोजगार और रूपयों के लिए हजारों की मात्रा में मजदूर देशों में भी जाते हैं। भारत से किसी अन्य देश में जाकर श्रम करने का उद्देश्य बेहतर जीवन यापन और ज्यादा वेतनमान ही होता है।

3. गरीबी

ऐसा माना जाता है कि वैश्वीकरण ने गरीबी को कम करने का कार्य किया है लेकिन कई ऐसे क्षेत्र हैं, खासकर कि खाद्ययान्त्र उत्पादन, जिसमें गरीबी बढ़ी है। कृषि वैश्वीकरण ने स्थानीय कृषि को बर्बाद करने के साथ ही मुख्य निर्धारण को भी असामान्य बनाया है। आर्थिक उदारीकरण से न सिर्फ ग्रामीण बल्कि शहरी गरीबी में भी बढ़ोतरी देखने को मिली है। सामाजिक क्षेत्र व्यय में गिरावट अथवा सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में सामाजिक क्षेत्र व्यय में गतिहीनता भी गरीबों के विरुद्ध हो गए। आज गरीब और गरीब होता जा रहा है, अमीरी और गरीबी की सीमा में अधिक अंतर देखने को मिल रहा है। अमीरों का वर्चस्व आज सभी क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है।⁵ शहरों और गाँवों में अमीरी और गरीबी बहुत ही एक गंभीर विषय बन चुका है।

संदर्भ सूची :-

1. पाण्डेय, रवि प्रकाश (2005) : वैश्वीकरण एवं समाज, शेख प्रकाशन, इलाहाबाद। (पृ-52)
2. गुडे एवं हॉट (1952) : मेथड इन सोशल, रिसर्च, मैकग्राहिल। पृ-87
3. गिडेन्स, एन्थोनी (1990) : दी कन्सिक्वेंस ऑफ मॉडर्निटी, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यूएसए।
4. कल्होत्रा, सुभाष (2011) : वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था, रिंतु पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. दोषी, एस0एल0 जैन, पी0सी0 (2009) : 'समाजशास्त्र, नई दिशाएँ' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

महिला शिक्षा के समक्ष आने वाली समस्याएं एवं चुनौतियां: गया जिला के विशेष संदर्भ में

गुंजा कुमारी*

सार:

समाज में बदलाव लाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपकरण शिक्षा है। महिला समाज का अभिन्न अंग है अतः सामाजिक परिवेश के उन्नति के लिए महिलाओं में शिक्षा का होना अनिवार्य माना जाता है। स्कूलों और कालेज में बच्चों और युवाओं को समानता, मानवाधिकार, पर्यावरण संरक्षण, और सामाजिक न्याय के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षा केवल अकादमिक नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसमें नैतिक और सामाजिक मूल्यों का समावेश होना चाहिए। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना है कि वर्तमान समय में छात्राओं को शिक्षक ग्रहण करने में किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है और सरकार उन्हें कौन सी सुविधाएं प्रदान कर रही है। प्रस्तुत शोध में अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है। उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली के माध्यम से 20 छात्राओं का चयन किया गया है। अध्ययन का क्षेत्र ज्ञान एवं मोक्ष की धरती गया जिला है। तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीय दोनों ही स्तरों के द्वारा किया गया है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से यह जानने की कोशिश की गई है कि बालिकाओं या छात्रों को शिक्षित करने में परिवार की क्या भूमिका है।

परिचय:

समाज में बदलाव लाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपकरण शिक्षा है। स्कूलों और कालेज में बच्चों और युवाओं को समानता, मानवाधिकार, पर्यावरण संरक्षण, और सामाजिक न्याय के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षा केवल अकादमिक नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसमें नैतिक और सामाजिक मूल्यों का समावेश होना चाहिए। बच्चों को शुरू से ही ईमानदारी, समानता, और सहिष्णुता के मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए। महिला सुरक्षा के मुद्दे का समाधान केवल कानून के माध्यम से संभव नहीं है। इसके लिए समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनी भूमिका समझनी होगी। सबसे पहले, लड़कियों और लड़कों दोनों को समानता और सम्मान के मूल्य सिखाने की जरूरत है। यह शिक्षा न केवल परिवार में, बल्कि स्कूलों और कॉलेजों में भी दी जानी चाहिए। (MISHRA, 2024)

बिहार में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति

अनुच्छेद 14 राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में समान अधिकार एवं अवसर पर बल। अनुच्छेद 15 - लिंग के आधार पर भेदभाव वर्जित। अनुच्छेद 15 (3) महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक दृष्टिकोण। अनुच्छेद 16 लोक नियोजन में अवसर की समानता। अनुच्छेद 19 विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। अनुच्छेद 21 प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता। अनुच्छेद 23 - बलात्, बेगार और दुर्यवहार की मनाही। इत्यादि ऐसे अनेक संवैधानिक उपबंध एवं अधिनियम हैं जो महिलाओं को सशक्त बनाने में कारगर सिद्ध हुए हैं। (कुमारी, 2018)

महिला समाज का अभिन्न अंग है अतः सामाजिक परिवेश के उन्नति के लिए महिलाओं में शिक्षा का होना अनिवार्य माना जाता है। सामाजिक रूप से विकसित राज्य तभी माना जा सकता है जब समाज के सभी

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

वर्गों में शिक्षा, व्यवसाय आदि में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विकास की सहभागिता स्थापित हो। इन सभी क्षेत्रों में महिलाओं में जागृति के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य का होना आवश्यक है। बिहार राज्य में तो महिलाओं को शिक्षा के तरफ अग्रसर करने में वर्तमान मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता में इनका योगदान अहम माना जाता है। बिहार के विकास पुरुष के रूप में मुख्यमंत्री ने बालिका साईकिल योजना की शुरुआत कर महिला शिक्षा में अलख जगाने का प्रयास किया है तथा इसमें सफलता प्राप्त की है। साथ ही बिहार भारत का वह पहला राज्य बना जो महिलाओं को राज्य स्तर पर सभी क्षेत्रों में 50 प्रतिशत आरक्षण देकर समाज में जागृति लाने का काम किया है। जिसका परिणाम हम समाज में देख रहे हैं। उदाहरण के तौर पर ग्रामीण शिक्षा और स्वास्थ्य के प्रति अपनी अलग पहचान बना रही है। जिसको हम शिक्षक और अन्य नौकरियों में भागीदारी के रूप में देख सकते हैं। अब पुरानी रूढ़िवादी व्यवस्था से उपर उठ कर हर कदम पे अपनी साहस और सशक्तिकरण का परिचय दे रही है। मुख्यमंत्री ने इनके प्रति अपनी उदारता का दायरा और बढ़ा कर स्नातकोत्तर तक की शिक्षा को मुफ्त कर दिया है। जिसके परिणाम स्वरूप महिलाएँ शिक्षा के प्रति बहुत जागरूक हुई हैं तथा अपनी प्रतिभा को निखार कर सभी के सामने आ कर नौकरी, पेशा में भी अपना हाथ आजमाने लगी है। इन सभी स्तरों पर महिलाओं के विकास को देखा जा सकता है। इनके उपलब्धियों की चर्चा किया जाए तो हम इस आधार पर पहुँचते हैं कि वर्ष 1951 में जो इनके साक्षरता का आंकड़ा था उसमें तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। हम इसकी चर्चा इस प्रकार के आंकड़ों से देख सकते हैं।

उद्देश्य

1. प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना है कि छात्राओं को शिक्षा ग्रहण करने में कौन-कौन सी चुनौतियां का सामना करना पड़ रहा है ।
2. प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना है कि सरकार के द्वारा छात्राओं को कौन-कौन सी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं ।

अध्ययन पद्धति :

प्रस्तुत शोध गुणात्मक और गणनात्मक अर्थात् मिश्रित प्रकृति का है ।जिसमें प्राथमिक और द्वितीय दोनों तरह के आंकड़ों का उपयोग किया गया है।

अध्ययन स्रोत :

प्राथमिक आंकड़ों को एकत्र करने के लिए व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति , गहन साक्षात्कार और अवलोकन का प्रयोग किया गया है । द्वितीयक आंकड़ों का संकलन करने के लिए पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, सरकारी रिपोर्ट और जनगणना आदि का उपयोग किया गया है ।

अध्ययन क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध का क्षेत्र ज्ञान और मोक्ष की धरती गया जिला है ।

निदर्शन

प्रस्तुत शोध में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली के माध्यम से 20 छात्राओं का चयन किया गया है ।

शोध प्रारूप

प्रस्तुत शोध के अध्ययन के लिए अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है ।

सैद्धांतिक ढांचा

प्रस्तुत शोध में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से यह जानने की कोशिश की गई है कि सामाजिक संरचना की अपरिहार्य इकाइयां (परिवार) छात्राओं को वर्तमान समय में कैसे प्रभावित कर रही है ।

तालिका : 1
बिहार राज्य में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति

क्र.सं.	वर्ष	कुल संख्या (प्रतिशत में)	पुरुष	महिला
1.	1951	13.49	22.68	4.22
2.	1961	21.95	35.85	8.11
3.	1971	23.17	35.86	9.86
4.	1981	32.32	47.11	16.61
5.	1991	37.49	51.37	21.99
6.	2001	47.55	60.32	33.57
7.	2011	49.45	65.40	37.13

स्रोत: भारत की जनगणना, 2011 रिपोर्ट

उपरोक्त आंकड़ों के आधार पर हम कह सकते हैं कि बिहार राज्य में महिलाओं की साक्षरता दर या यूँ कहें कि शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष 1951 के अपेक्षा महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। यहाँ पर हम यह देखने को मिलता है कि राज्य की कुल जनसंख्या 13.49 होती है, वहाँ पर वर्ष 1951 में महिलाओं की साक्षरता निम्न स्तर पर यानि 4.22 होती है परन्तु हम जैसे-जैसे दशक के अनुसार आंकड़े को देखते हैं तो वर्तमान परिदृश्य बहुत ही बदली हुई नजर आती है।

एक समय ज्ञान के भंडार के रूप में मशहूर, नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों के साथ बिहार भारत के सबसे गरीब और निरक्षर राज्यों में से एक बन गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार, यह साक्षरता के मामले में अंतिम स्थान पर था, जिसका कुल प्रतिशत 61.80% था, यानी राष्ट्रीय औसत 74.04% की तुलना में लगभग 12 अंक कम और भारत के सबसे साक्षर राज्य (केरल) की तुलना में 33 अंक कम। 2011 में बिहार में पुरुष साक्षरता दर 70% थी, जबकि महिला साक्षरता 50% से थोड़ी अधिक थी, जो दर्शाता है कि लगभग आधी महिलाएँ साक्षरता के दायरे से बाहर हैं पुरुष साक्षरता 57.1% की तुलना में महिला साक्षरता केवल 29.6% है। साक्षरता में लैंगिक असमानता बिहार शिक्षा प्रणाली की पहचान बनी हुई है, जो 2011 में 19.7 अंक थी। यह एनएफएचएस-5 के नवीनतम आंकड़ों में भी दोहराया गया है, जिसमें पता चला है कि बिहार में 15 से 49 वर्ष की आयु के पुरुषों की साक्षरता दर 76.4% की तुलना में 55% है। बिहार में साक्षरता दर में प्रगति को दर्शाता है, लेकिन 21.4 अंकों के लिंग अंतर को भी उजागर करता है, जो न केवल राज्य और केंद्र बल्कि नागरिक समाज से भी तत्काल ध्यान देने की मांग करता है।(कौर,2023)

छात्राओं के समक्ष आने वाली प्रमुख चुनौतियाँ:-

ऐतिहासिक और सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ

ऐतिहासिक रूप से, बिहार कम साक्षरता दर से जूझ रहा है, खासकर महिलाओं के बीच। इस असमानता में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पारंपरिक लिंग भूमिकाएं, कम उम्र में विवाह, और महिला शिक्षा की तुलना में पुरुष शिक्षा को प्राथमिकता देने के शैक्षिक उपेक्षा के चक्र को कायम रखा है। कई परिवार अभी भी लड़कियों के लिए शिक्षा को अनावश्यक मानते हैं, खासकर प्राथमिक विद्यालय से परे, जिसके कारण महिला छात्रों के बीच पढ़ाई छोड़ने की दर अधिक है।

आर्थिक बाधाएँ

गरीबी एक और महत्वपूर्ण बाधा है। बिहार भारत के सबसे गरीब राज्यों में से एक है, और आर्थिक कठिनाइयाँ अक्सर परिवारों को शिक्षा की तुलना में तत्काल वित्तीय आवश्यकताओं को प्राथमिकता देने के लिए मजबूर करती हैं। लड़कियों को अक्सर घर के कामों में हाथ बंटाना पड़ता है या परिवार की आय में वृद्धि करने

के लिए काम करना पड़ता है, जिससे उनकी शिक्षा की संभावनाएँ और भी कम हो जाती हैं। शिक्षा की लागत, जिसमें यूनिफॉर्म, किताबें और परिवहन शामिल हैं, भी कई परिवारों के लिए निषेधात्मक हो सकती है।

अपर्याप्त बुनियादी ढांचा

राज्य का शैक्षणिक बुनियादी ढांचा अक्सर अपर्याप्त है, खासकर ग्रामीण इलाकों में जहां बिहार की अधिकांश आबादी रहती है। स्कूलों में शौचालय जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव है, जिसका लड़कियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लड़कियों के लिए अलग और स्वच्छ शौचालयों की अनुपस्थिति एक बड़ी बाधा है, जो अनुपस्थिति और स्कूल छोड़ने में योगदान देती है, खासकर जब लड़कियां युवावस्था में पहुंचती हैं।

सुरक्षा संबंधी चिंताएँ

स्कूल जाने वाली लड़कियों के लिए सुरक्षा एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों की लंबी दूरी लड़कियों को उत्पीड़न और हिंसा के जोखिम में डालती है। सुरक्षित परिवहन विकल्पों की कमी और लिंग आधारित हिंसा की व्यापकता कई माता-पिता को अपनी बेटियों को स्कूल भेजने से हतोत्साहित करती है।

शिक्षा की गुणवत्ता

बिहार में शिक्षा की गुणवत्ता चिंता का एक और विषय है। कई स्कूलों में संसाधनों और कर्मचारियों की कमी है, जिसके कारण शिक्षण का स्तर घटिया है। प्रशिक्षित और प्रेरित शिक्षकों की कमी छात्रों के सीखने के परिणामों को प्रभावित करती है, खासकर लड़कियों को जो पहले से ही शिक्षा प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही हैं।

सरकारी पहल और एनजीओ प्रयास :

इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए, सरकार और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) दोनों ने कई पहल की हैं। बिहार सरकार ने मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना जैसे कार्यक्रम शुरू किए हैं, जो लड़कियों को साइकिल प्रदान करते हैं ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वे सुरक्षित रूप से स्कूल जा सकें। मिड-डे मील योजना छात्रों को पौष्टिक भोजन प्रदान करके ड्रॉपआउट दरों को कम करने में मदद करती है, माता-पिता को लड़कियों सहित अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करती है।

एनजीओ भी लड़कियों की शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करके और पूरक शैक्षिक संसाधन उपलब्ध कराकर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। उदाहरण के लिए, प्रथम और एजुकेट गर्ल्स स्कूलों में लड़कियों के नामांकन और प्रतिधारण दर में सुधार के लिए जमीनी स्तर पर काम कर रहे हैं। (मिश्रा, 2019)

बिहार में महिलाओं की शिक्षा में सुधार के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण, आर्थिक बाधाओं, बुनियादी ढांचे, सुरक्षा और शिक्षा की गुणवत्ता को संबोधित करता हो। शैक्षिक बुनियादी ढांचे, सामुदायिक जागरूकता कार्यक्रमों और लक्षित सरकारी नीतियों में निरंतर निवेश आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने का व्यापक प्रभाव पड़ेगा, जिससे पूरे राज्य के लिए व्यापक सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक लाभ होंगे।

बिहार में महिला शिक्षा विकास हेतु सहयोगी कदम

राज्य सरकार और विभिन्न संगठन विभिन्न पहलों एवं प्रयासों के माध्यम से महिला शिक्षा की सुधार की दिशा में कार्यरत हैं, जिनमें वित्तीय प्रोत्साहन, अनौपचारिक प्रशिक्षण, और सामुदायिक भागीदारी शामिल है। इन प्रयासों का मुख्य उद्देश्य लड़कियों को शिक्षा एवं विकास में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना है।

शिक्षा में विकास हेतु बिहार सरकार की पहल:

- मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय फेलोशिप फंड (बिहार में अल्पसंख्यक समुदायों के छात्रों हेतु)।
- कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (KGBV) (बिहार में लड़कियों के नामांकन के लिए कार्यरत)

- सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) (1987-2016) भारत के संविधान में 86 वां संशोधन 2002 को पारित हुआ, जिसमें कहा गया है कि 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को मौलिक अधिकार के रूप में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा मिलनी चाहिए। कार्यक्रम के निर्माता पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेई थे।
- बालिका पोशाक योजना- मिडिल स्कूल की लड़कियों के लिए स्कूल यूनिफॉर्म, कक्षा छह से आठवीं तक दो जोड़ी स्कूल ड्रेस के लिए हर साल 700 रुपये।
- मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना- इस योजना में सभी लड़कियों को कक्षा 9 में प्रवेश लेने पर निःशुल्क साइकिल दी जानी है।
- मुख्यमंत्री अक्षर आंचल योजना- महिलाओं के बीच निरक्षरता की उच्च दर से निपटने के लिए, यह कार्यक्रम सितंबर 2009 में शुरू किया गया था। वंचित क्षेत्रों में अक्षर आंचल योजना को अशिक्षित महिलाओं ने खूब पसंद किया। (<http://www.biharstat.com/education>).

बिहार सरकार द्वारा नीतिगत हस्तक्षेप:

बिहार सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए किए जा रहे प्रयास राजनीतिक इच्छाशक्ति और सकारात्मक बदलाव के संकेत दे रहे हैं। महिलाओं के लिए कई अग्रणी कदम उठाकर बिहार अन्य राज्यों के लिए एक ट्रेंडसेटर बनने की ओर अग्रसर है। इसे पंचायती राज संस्थाओं और शहरी निकायों में महिलाओं के लिए 50% आरक्षण प्रदान करने के कदम से देखा जा सकता है, जिसने एक सामाजिक क्रांति की नींव रखी। इस क्रांति को कई नई योजनाओं और नीतिगत पहलों द्वारा पूरक बनाया गया है - मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना, मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना, मुख्यमंत्री अक्षर आंचल योजना, जिनमें से महिला साक्षरता योजनाओं में मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना का एक अलग स्थान है। (कौर, 2023)

केस स्टडी 1 :- इस संदर्भ में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्रा से जब बात की गई तो उसने बताया कि उसके समक्ष शिक्षा ग्रहण करने में सबसे बड़ी समस्या दूरी की आती है। उसका निवास स्थान नवादा जिला में है और उसे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए बोधगया के मगध विश्वविद्यालय में आना होता है। जिसके कारण वह प्रतिदिन कक्षा में उपस्थित होने में असमर्थ हो जाती है। इस वजह से उसे शिक्षा ग्रहण करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

केस स्टडी 2 :- इसी संदर्भ में जब एक विवाहित छात्रा से बात की गई तो उसने बताया कि उसे घर के सारे कार्य करने के बाद विश्वविद्यालय आना होता है और घर जाने के बाद भी उसे कई कार्य करने होते हैं। क्योंकि वह अपने ससुराल में रह रही है। जिस वजह से उसे हर दिन विश्वविद्यालय आने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विश्वविद्यालय से शिक्षक ग्रहण के पश्चात जब वह पुनः अपने घर जाती हैं, तो उन्हें वापस से रसोई का कार्य करना होता है। कई बार शिक्षण संस्थान निवास स्थान से दूर होने के कारण उन्हें अकेले आने में भी असुविधा होती है तो वैसी स्थिति में वह अपने अभिभावक या पिता के साथ विश्वविद्यालय में आती हैं।

केस स्टडी 3 :- प्रस्तुत शोध में जब एक अविवाहित छात्रा से बात की गई तो उसने बताया कि उनके पिता उन्हें उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए बहुत अधिक प्रोत्साहित करते हैं। उसने बताया कि मेरे पिताजी कहते हैं कि मैं अपने पिता के कारण अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी और वर्तमान समय में मैं आर्थिक रूप से बहुत ही कमजोर हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि मेरी बेटियां बहुत अच्छे से शिक्षा ग्रहण करें और सरकारी पदों पर प्रतिष्ठित हो। उस छात्रा ने यह भी बताया कि वह एक ग्रामीण इलाके से संबंधित है और वहां बालिकाओं को शिक्षित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। फिर भी उसके पिताजी ने वर्तमान समय में उसे उच्च शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति दी है और अपने जीवन में आगे बढ़ाने के लिए उसे प्रोत्साहित किया है।

केस स्टडी 4 :- प्रस्तुत शोध में जब एक दूसरी अविवाहित छात्रा से बात की गई तो उसने बताया कि उसने अपने स्नातक की पढ़ाई औरंगाबाद के महाविद्यालय से की है। वर्तमान समय में वह बोधगया के

विश्वविद्यालय में नामांकित है। उसने बताया कि उसे उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए उसके माता-पिता ने अनुमति दी है परंतु नए स्थान पर रहने की असुविधा है। उसके माता-पिता का कहना है कि ऐसे स्थान पर उसे कैसे छोड़ सकते हैं। जहां उसके परिवारजन या जानने वाले सगे-संबंधी कोई ना हो। वैसी स्थिति में वह छात्रा अभी एक निजी रूम लेकर अपने शिक्षक से संबंधित सभी कार्यों का संपादन कर रही है। उसने बताया कि वह छात्रावास के लिए आवेदन कर चुकी है। जल्द ही जब उसे विश्वविद्यालय के प्रांगण में छात्रावास की सुविधा प्राप्त हो जाएगी तो वह और भी अच्छे ढंग से शिक्षक से संबंधित कार्यों का संपादन कर सकेगी।

बिहार में शिक्षा और वैधानिक सुरक्षा:

बिहार में शिक्षा और वैधानिक सुरक्षा, दोनों ही महिलाओं की स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। शिक्षा महिलाओं के सशक्तिकरण में मदद करती है, उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाती है, और उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करती है। वैधानिक सुरक्षा उन्हें घरेलू हिंसा, दहेज जैसे अपराधों से सुरक्षा प्रदान करती है और उनके अधिकारों की रक्षा करती है।

शिक्षा का प्रभाव:

- शक्तिकरण:

शिक्षा महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाती है, जिससे वे समाज में बेहतर ढंग से अपनी भूमिका निभा सकती हैं।

- रोजगार:

शिक्षित महिलाएं अधिक रोजगार के अवसरों तक पहुंच पाती हैं और आर्थिक रूप से सशक्त बनती हैं।

- स्वास्थ्य:

शिक्षा महिलाओं को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनाती है, जिससे वे अपने और अपने बच्चों के स्वास्थ्य का बेहतर ध्यान रख सकती हैं।

- सामाजिक जागरूकता:

शिक्षा महिलाओं को सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों के प्रति जागरूक बनाती है, जिससे वे अपने अधिकारों के लिए लड़ सकती हैं।

- संसाधनों तक पहुंच:

शिक्षा महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य संसाधनों तक बेहतर पहुंच प्रदान करती है।

निष्कर्ष:

- महिलाओं या किशोरियों की जो पारंपरिक भूमिकाएं हैं। वह उनके समक्ष आज भी एक बहुत बड़ी चुनौती बनी हुई है।
- विवाहित छात्राओं के समक्ष उनके परिवार और बच्चों की जिम्मेदारियों के साथ-साथ ही उन्हें शिक्षण से संबंधित सभी कार्य को करना होता है।
- अविवाहित छात्राओं के अभिभावकों को उनके सुरक्षा की चिंता हमेशा सताते रहती है कि नई जगह पर उन्हें अकेले कैसे शिक्षा ग्रहण करने के लिए छोड़ दिया जाए।
- एएसईआर रिपोर्ट 2022 के अनुसार, स्कूलों में नामांकित न होने वाली 15-16 वर्ष की लड़कियों की संख्या 2006 में 28.2% से घटकर 2022 में 6.7% हो गई है।
- शिक्षा और वैधानिक सुरक्षा, दोनों ही महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बिहार में महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए, इन दोनों को बढ़ावा देना जरूरी है बिहार सरकार ने अपने केंद्रित प्रयासों के माध्यम से महिला साक्षरता में उल्लेखनीय प्रगति की है।

सुझाव :

- एक विकसित और समृद्ध भारत का हमारा सपना तभी साकार होगा जब हम अपने मानव संसाधन पूल के प्रत्येक सदस्य की ताकत का लाभ उठाने के लिए लैंगिक भेदभाव को खत्म करेंगे।
- महिलाओं को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। उन्हें यह पता होना चाहिए अगर वे किसी तरह की हिंसा का सामना करती हैं तो क्या कदम उठा सकती हैं। समाज में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव की आवश्यकता है।
- पितृसत्तात्मक सोच को खत्म करने के लिए सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन आवश्यक हैं। इसके लिए फिल्मों, टीवी कार्यक्रमों, और अन्य माध्यमों के जरिए महिलाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना चाहिए।
- बिहार में महिलाओं की शिक्षा के मामले में कई चुनौतियाँ हैं, सरकार, गैर सरकारी संगठनों और समुदायों के सम्मिलित प्रयास राज्य की महिलाओं के लिए एक उज्ज्वल और अधिक न्यायसंगत भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।
- यह सुनिश्चित करना कि हर लड़की को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले, न केवल एक नैतिक अनिवार्यता है, बल्कि बिहार के समग्र विकास की दिशा में एक आवश्यक कदम है।

सन्दर्भ सूची

- जनगणना 2011. (2011)। जनगणना 2011 से प्राप्त: <https://www.census2011.co.in/literacy.php>
- MISHRA, DEEPTI .(2024). महिला की सुरक्षा के लिए जरूरी है परवरिश में बदलाव, सिर्फ कानून नहीं; समाज को भी निभाना होगा फर्ज.
- <https://www.jagran.com/news/national-ncr-addressing-womens-safety-a-collective-responsibility-of-law-and-society-23790564.html>
- <https://www.youthkiawaaz.com/2024/06/womens-issue-in-education-in-bihar-by-kritika-mehta/>
- कौर,हरलीन.(2023).नीति संक्षिप्त: बिहार राज्य में महिला साक्षरता <https://www.cdpp.co.in/articles/policy-brief-female-literacy-in-the-state-of-bihar>
- कुमार, सत्यम."बिहार में महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण की चिंता : एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य" International Journal of Multidisciplinary Trends 2025; 7(2): 37-42
- Census of India - Literates and educational level से आंकड़ा प्राप्त किया गया।
- Census Statistics for Bihar. को देखा गया।
- <http://gov.bih.nic.in/Profile/CensusStats-03.htm> को देखा गया
- <http://www.biharstat.com/education> को देखा गया
- मिश्रा, हरकिशोर."महिलाओं की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन : बिहार राज्य के सीतामढ़ी जिले के विशेष संदर्भ में", JETIR February 2019, Volume 6, Issue 2. www.jetir.org (ISSN-2349-5162)
- कुमारी, मधु. (2018). "महिला सशक्तिकरण में सरकारी योजनाएँ : बिहार राज्य के विशेष संदर्भ में". INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS. Volume 6, Issue 2. ISSN: 2320-2882

1962 का भारत-चीन युद्ध तथा कश्मीर समस्या पर उसका प्रभाव

डॉ. लालबहादुर राम*

भारत और चीन स्वतंत्र होने के पश्चात नयी विश्व व्यवस्था में संयुक्त रूप से अपने लक्ष्यों कि तरफ अग्रसर हुए। लेकिन जैसे-जैसे दोनों राष्ट्रों के हित प्रतिकूल होते गए, वैसे ही दोनों एक दूसरे के विरुद्ध होते गए जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कहा जाता है कि कोई शाश्वत मित्र या शत्रु नहीं होता, केवल हित शाश्वत होते हैं। भारत-चीन सम्बन्धों पर भी यह खरी उतरती है। वर्तमान में एशिया के ये दो बड़े राष्ट्र काफी हद तक प्रतिस्पर्धी हैं, लेकिन इस समय बदलती अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के परिवेश में अपने सम्बन्धों को नया मोड़ देने को तत्पर हैं।

इन दोनों राष्ट्रों के बीच प्राचीन काल से ही घनिष्ठ सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक सम्बन्ध रहे हैं। स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस विशेषकर नेहरू का चीन के कम्युनिस्ट आंदोलनों के प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण रहा है। साम्यवादी चीन के अभ्युदय के पश्चात भारत और चीन दोनों की विश्व के स्त्रातजिक वातावरण के प्रति दृष्टिकोणों में एकरूपता रही जिसके कारण दोनों एक दूसरे के अत्यंत निकट आते गए। भारत द्वारा साम्राज्यवाद, जातिवाद एवं पश्चिमी सैनिक गठबंधन का मूलतः विरोध, तिब्बत में चीनी कार्यवाही के प्रति भारत की तटस्थता, बड़ी शक्तियों की शासक प्रवृत्ति का सामान्य तौर पर विरोध आदि विश्व स्त्रातजिकी के प्रति चीन के साथ भारत की एकरूपता स्थापित कर रहे थे इसी को ध्यान में रखते हुए 1954 में दोनों देशों के बीच समझौता हुआ और इसके बाद कुछ वर्षों तक भारत-चीन के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे, लेकिन बाद में स्त्रातजिक वातावरण में परिवर्तन आने के साथ ही दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध में परिवर्तन शुरू हो गए जिसकी अंतिम परिणति 1962 में दोनों देशों के बीच युद्ध के रूप में रही। इसका प्रमुख कारण रूस-चीन मतभेद और भारत-रूस का बढ़ता सहयोग, तिब्बत का विद्रोह और दलाई लामा को भारत सरकार द्वारा राजनैतिक शरण दिए जाने का निर्णय, भारत-चीन सीमा विवाद आदि तथ्य उत्तरदायी रहे, जिससे दोनों देशों के हितों में क्रमशः कटूता आती रही।

अक्टूबर 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण से कश्मीर समस्या में एक नयी सरगर्मी आयी। पाकिस्तान इस मौके का लाभ उठाना चाहा, क्योंकि भारत द्वारा पश्चिमी देशों अमेरिका एवं ब्रिटेन से सैनिक सहायता की मांग की गई थी। उस समय अमेरिका और ब्रिटेन के प्रतिनिधि मण्डलों ने कश्मीर समस्या पर विचार विमर्श करने हेतु भारत को राजी करना चाहा। अमेरिका के सर बेल हैरिमन तथा ब्रिटेन के इंकन सैण्डीज ने भारत को गोलमेज सम्मेलन हेतु सहमत करने का प्रयास किया।¹ 30 नवम्बर 1962 को संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन के प्रयास से नई दिल्ली और रावलपिण्डी में एक साथ घोषणा की गयी कि पाकिस्तान के राष्ट्रपति और भारत के प्रधानमंत्री अन्य मामलों के साथ-साथ कश्मीर समस्या पर भी वार्ता करने के लिए सहमत हो गये। तदनुसार भारत के स्वर्ण सिंह और पाकिस्तान के जुल्फीकार भुट्टो के मध्य 27 दिसम्बर 1962 से लेकर 16 मई 1963 के बीच छः दौर की वार्ताये हुईं।² फिर भी समस्या यथावत बनी रही और इस पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया जा सका।

1963 में पाकिस्तान ने चीन के साथ हुए सीमा समझौता में पाक अधिकृत कश्मीर का 2000 वर्गमील से ज्यादा हिस्सा चीन को दे दिया। यह समझौता रणनीतिक और भू राजनीतिक रूप से पाकिस्तान के लिए फायदेमंद हुआ।³ छः दौर की वार्ताओं के पश्चात पंडित नेहरू ने घोषणा की कि कश्मीर भारत का अभिन्न हिस्सा था, और रहेगा।⁴ जिसके कारण दोनों देशों के मध्य तनाव और बढ़ गया। 1964 में नेहरू जी की मृत्यु के पश्चात कश्मीर समस्या के समाधान की जो आशाएं दिख रही थी, वे भी समाप्त होने लगी।

नेहरू जी की मृत्यु के पश्चात लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री बनें जो कि नेहरू जी के विपरीत ज्यादा व्यावहारिक और यथार्थवादी थे। शास्त्री जी और अयूब खान ने एक संयुक्त बयान द्वारा दोनों देशों के बीच रिश्तों को सुधारनें और आपसी सूझ-बूझ को बढ़ावा देनें और कश्मीर सहित सभी मुद्दों पर मतभेद को हल करनें की बात कही।⁵

* एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, समता पी0 जी0 कालेज सादात, गाजीपुर

शास्त्री जी के शासन काल में, युद्ध विराम रेखा (सीज फायर लाइन) का अतिक्रमण कश्मीर में बढ़ने लगा। पाकिस्तान द्वारा कश्मीर में आने वाले घुसपैठियों की संख्या बढ़ गई, जिनका प्रमुख उद्देश्य कश्मीर के गाँवों पर हमला करना होता था, ये हमले सुनियोजित होते थे। जम्मू-कश्मीर विधान सभा द्वारा वहाँ के सदर-ए-रियासत एवं प्रधानमंत्री के पदों को क्रमशः राज्यपाल और मुख्यमंत्री के नामों में परिवर्तित किये जाने और अनुच्छेद 356-357 को राज्य द्वारा स्वीकार किये जाने का पाकिस्तान द्वारा जोरदार विरोध किया गया।⁶ इस बीच शेख अब्दुल्ला द्वारा भारत विरोधी गतिविधियों में शामिल होने के कारण 8 मई 1965 को भारत सरकार द्वारा उन्हें कैद कर लिया गया।⁷ पाकिस्तान में भारत की इस कार्यवाही की निन्दा की और भारत के विरुद्ध एक बार फिर जिहाद का नारा लगाया। 13 जुलाई 1965 को जुल्फीकार अली भुट्टो ने घोषणा की कि "पाकिस्तान कश्मीर के बिना एक सिर का देश है।"⁸ जिससे भारत का रूख और कठोर हो गया और भारतीय गृहमंत्री गुलजारी लाल नन्दा ने घोषणा की कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और इस विषय पर पाकिस्तान से किसी भी बातचीत से इन्कार किया।

इस बीच करगिल में भारत और पाकिस्तानी सेना के बीच एक झड़प हुई, जिसकी वजह से भारत ने युद्ध विराम रेखा पर पाकिस्तान की तरफ तीन चौकियों पर कब्जा कर लिया, जिस पर पाकिस्तान ने विरोध जताया तो भारत का जबाब था कि पाकिस्तान द्वारा लगातार लद्दाख के सम्पर्क मार्ग के अतिक्रमण करने के कारण ही उसके द्वारा ऐसा करना आवश्यक हो गया था।⁹ संयुक्त राष्ट्र के प्रेक्षकों द्वारा इस बात का आश्वासन दिये जाने के बाद कि पुनः सड़क मार्गों पर आक्रमण नहीं होगा और प्रेक्षक वहाँ नियुक्त किये जायेंगे, तब भारत ने अपनी सेनाएं वहाँ से हटा ली।¹⁰

इस समय भारत की विदेश नीति को विविध चुनौतियों का सामना करना पड़ा रहा था। शास्त्री जी को चीन से विरोधी रिश्तों को सम्भालना पड़ रहा था, साथ ही चीन और पाकिस्तान के बीच विकसित होने वाले गठबन्धन का भी सामना करना पड़ रहा था। पाकिस्तान भारत के विरुद्ध अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए विभिन्न इस्लामिक देशों के संगठनों के साथ राजनैतिक, आर्थिक और रक्षा के क्षेत्र में सहयोग कर रहा था। सोवियत संघ की प्रतिस्पर्धा अमेरिका और चीन से चल रही थी। भारत इस समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अलग-थलग पड़ गया था, जिसके कारण उसकी सोवियत संघ पर आर्थिक संघ पर आर्थिक रक्षा और तकनीक के मामले में निर्भरता बढ़ती जा रही थी तथा पाकिस्तान के भी सोवियत संघ से सम्बन्ध सुधर रहे थे। ऐसे में भारत को चीन और पाकिस्तान की चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी सैन्य शक्ति को मजबूत करना आवश्यक हो गया था।¹¹

1965 तक आते-आते यह स्पष्ट हो गया कि भारत-पाक के बीच कश्मीर समस्या का समाधान नहीं हो सकता। पाकिस्तान अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाता गया और भारत में छिट-पूट घटनाएँ होती रही, जिसके कारण भारत-पाक के मध्य एक और संघर्ष की शुरुआत हुई, जिसे 1965 का भारत-पाक संघर्ष के नाम से जाना जाता है।

सन्दर्भ-सूची:

1. लार्स बिल्केनबर्ग, पेज-194
2. किसिंग्स कान्फ्रेम्पोरेरी आर्कीटीस, 1963-64, पेज-1943-44.
3. दाक्षित, जे. एन.-एनाटोमी आफ फ्लाड इनहेरिटेन्स, कोणार्क, प्रकाशन नई दिल्ली 1995, पेज-12
4. द हिन्दू, 16 जून 1963
5. पाकिस्तान टाइम्स-13-14 अक्टूबर 1964.
6. पाकिस्तान टाइम्स-13-14 अक्टूबर 1964
7. द हिन्दू, 9 मई, 1965.
8. अस्थाना, वन्दना: "इण्डियाज फारेन प्वालिसी एण्ड सब कांटेनेंटल पोलिटिक्स", कनिष्क प्रकाशन, दिल्ली पेज-116.
9. द हिन्दू, 12 जून 1965.
10. द हिन्दू, 2 जुलाई 1965.
11. नन्दा, कोलोनल रवि, "कश्मीर एण्ड इण्डो पाक रिलेशन" लान्सर्स बुक, नई दिल्ली 1999, पेज-196.

बिहारीलाल हरित के साहित्य में मानवीय संवेदना और प्रतिरोध

पी. सोमा शेखर*

बिहारी लाल हरित का जन्म 13 दिसम्बर, 1913 में हुआ और उनकी मृत्यु 26 जून, 1999 हुई। बिहारी लाल हरित हिंदी दलित कविता के प्रसिद्ध हस्ताक्षर रहे हैं। "हीरा डोम और स्वामी अछूतानंद जैसे प्रारंभिक दलित रचनाकारों की श्रेणी में 'हरित' का नाम लिया जाता है।" ई. सन 1940 से 1980 के दशक तक दलित हिंदी कविता धारा के क्षेत्र में 'हरित' एवं उनके शिष्यों का प्रभाव रहा है। उनके प्रभाव का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 70-80 के दशक में टेलीविजन पर एक ही चैनल दूरदर्शन आता था, उस समय दूरदर्शन और आकाशवाणी पर 'हरित' की कविताओं का प्रसारण अनेक अवसरों पर किया जाता था।

दलित समाज के प्रसिद्ध नारे जय भीम की रचना का श्रेय बिहारीलाल हरित को है। उन्होंने ही 1946 में डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के जन्म दिवस समारोह के अवसर पर पहली बार दिल्ली में डॉ अंबेडकर की उपस्थिति में एक कविता के माध्यम से जय भीम का उद्घोष किया था। कविता के विषय में वे बोले थे :

"नवयुवक कौम के जुट जावें सब मिलकर कौम परस्ती में,
जय भीम का नारा लगा करे भारत की बस्ती-बस्ती में।"²

दलित साहित्य की अवधारणा -

डॉक्टर अंबेडकर को दलित समाज के घर घर तक पहुंचाने तथा जनमानस को अंबेडकर के प्रति श्रद्धा से भरने के लिए हरित जी ने 1973 में 'भीमायण' महाकाव्य की रचना की। अभिमान की एक विशेषता यह भी है कि " इसमें उन्हीं छंदों का प्रयोग किया गया है जिनका प्रयोग तुलसीदास ने रामचरितमानस में किया है। यह साहित्य के उन आचार्य आलोचकों के लिए एक सशक्त जवाब है जो दलित रचनाकारों में कौशल की संभावनाओं को नकारते हैं।"³

वीरांगना झलकारी बाई हरित जी का दूसरा महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है जिसमें देश के स्वाधीनता आंदोलन के दौरान झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की जान बचाने के लिए अंग्रेजी सेना से वीरता पूर्वक लड़का अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाली दलित वीरांगना झलकारी बाई के शौर्य और बलिदान की गौरव गाथा का चित्रण कर इतिहास के उन प्रसंगों और घटनाओं की ओर समाज और राष्ट्र क्या ध्यान आकृष्ट करने का सार्थक प्रयास किया गया है जो दलितों के राष्ट्र प्रेम त्याग और शौर्य से परिपूर्ण है। प्रसिद्ध दलित राजनेता और देश के भूतपूर्व उप प्रधान मंत्री बाबू जगजीवन राम के जीवन पर आधारित जग जीवन ज्योति नामक एक चंपू काव्य की रचना भी उन्होंने की।

बिहारीलाल हरित अभिमान के कवि थे। सन 1940 में हापुर उत्तर प्रदेश निवासी चर्चित शायर जिनका उपनाम 'बूम' था उसने चमारी नामा नामक एक लघु पुस्तिका लिखी जिसमें दलित स्त्रियों पर आपत्तिजनक टिप्पणी की गई थी। " हरित जी का मानस दलितों के प्रति बूम की आपत्तिजनक टिप्पणियों साहब और आंदोलित हुआ और उन्होंने चमार नामा लिखकर बूम का सटीक जवाब दिया।"⁴ इसके अलावा भी बिहारीलाल हरित ने अन्य कई पुस्तकें लिखी जिनमें अछूतों का बेटाज बादशाह प्रमुख है। हिंदी दलित साहित्य में कई महाकाव्य रचे गए जिनमें बिहारीलाल हरित कृत्य भीमायण, जग जीवन ज्योति कथा वीरांगना झलकारी बाई प्रसिद्ध है। इस प्रकार सन 40 से लेकर 80 के दशक तक दलित समाज में अंबेडकरी आंदोलन के प्रचार प्रसार में हरित जी की महत्वपूर्ण साहित्यिक सभा रही है इनकी काव्य संवेदना का निर्माण असमानता शोषण और अन्याय के प्रतिकार का उद्देलन है जिसका संबंध समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने से है। हरित जी दलित चेतना के समर्थ रचनाकार हैं जिन की कविताओं में प्रतिरोध की भावना प्रबल दिखती है।

सामाजिक योगदान -

बिहारी लाल हरित का समाज सेवी के रूप में एक विशेष स्थान रहा है। पूर्वी दिल्ली के विकास में हरित का विशेष योगदान है। शाहदरा स्थित बिहारी कालोनी आज बिहारी लाल हरित के नाम से है।

* लेक्चर इन हिंदी, गवर्नमेंट कॉलेज (ए), अनंतपुर आंध्र प्रदेश

उनकी प्रसिद्ध रचनाएं-

भीमा यन महाकाव्य, वीरांगना झलकारी बाई महाकाव्य, चमार नामा, अछूतों का बेताज बादशाह इत्यादि। लोक साहित्य में ऐसी कई दलित प्रतिभाएँ हैं, जो समाज में उसी की भाषा, उसी के स्तर और रुचि के अनुसार अपने गीतों और कविताओं से समाज को जागृत करने, संगठित करने और सम्मान पाने का प्रयास करती रही हैं। ऐसे समय में अपनी सत्तानवे वर्ष की आयु पूरी कर रहे लोकसंस्कृति के कवि बिहारीलाल हरित का व्यक्तित्व एक विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न है। इस मायने में कि उन्होंने अपना सम्पूर्ण काव्य साहित्य कंठस्थ कर रखा है। कवि के रूप में 80 साल में निरन्तर जो कविताएँ रची हैं उनमें अधिसंख्यक उन्हें कंठस्थ हैं। वे आशु कवि हैं, हाथ में कागज लेकर पढ़नेवाले को वे कवि नहीं मानते। उनका यह बड़ा व्यक्तित्व केवल कविताओं से नहीं, बल्कि लम्बे समय तक सामाजिक कार्यकर्ता, भजनोपदेशक और सुधारक के रूप में उन्होंने जो कार्य किये उन कार्यों की खोजबीन के साथ उनके सृजन का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

यद्यपि वे गुरु-शिष्य परम्परा के व्यक्ति हैं, इस कारण उन्हें राजपाल सिंह राज, कवि सुसुम वियोगी आदि अपना गुरु मानते हैं; पर कवि को शिष्य संख्या तक सीमित नहीं रखा जा सकता। उनकी रचनाएँ दूर तक असर करती हैं। वे जिस समय, संस्कार, विचार और व्यवस्था को जिये हैं, उनकी कविता को उसी सन्दर्भसे सम्बद्ध करके देखना होगा। कवि हरित ने महाकाव्य के परम्परागत मानदंडों को तोड़ा है। वे न कथित उच्च कुलोद्भव हैं और न कविता उन्हें विरासत में मिली। हरित जी तमाम अछूत बच्चों की तरह हिन्दू विद्या मन्दिरों से बहिष्कृत हुए और धर्म परिवर्तन कराने के इल्जाम की कोपभाजन हो रही ईसाई मिशनरी ने उन्हें सरस्वती के दर्शन करने के अवसर दिये थे। 1919 में उन्होंने चन्द्रावली गाँव (वर्तमान में शाहदरा) में दाखिला लिया था। तब हिन्दू पाठशालाओं व मुस्लिम स्कूलों में अछूतों के बच्चों को प्रवेश नहीं दिया जाता था। इस पर भी बालक हरित का मोह अपने संस्कारों से था। शिक्षा के बहाने ईसाईकरण उन्हें पसन्द नहीं था। चुटिया (शिखा) काटने पर उन्होंने स्कूल छोड़ा दिया था। बचपन से ही उन्हें गीत-संगीत में रुचि थी।

1930 के आस-पास दलितों में लोकगीतों के माध्यम से समाज सुधार के कार्यक्रम चले। उस समय साहित्य की मुख्यधारा पर अंग्रेजों के प्रिय लोगों का कब्जा था। दलित दया के पात्र तो कमोबेश बने पर कृपा के नहीं। हरित तो एक तरह से भजनोपदेशक थे, पर उनके भजन ईश्वरीय गुणगान नहीं थे। वे अछूतानन्द की परम्परा को अग्रसारित करनेवाले आत्मगौरव और आत्मसम्मान बढ़ानेवाले गीत गाते थे। हारमोनियम और ढोलक के साथ उन्होंने अपने गीत गाये और रचे। बहुसंख्यक समाज से सीधा जुड़ने और आम आदमी में कविता को ले जाने की उनकी यह क्षमता अनुपम है, अनुकरणीय है। अब बड़ा कवि वह होने लगा है, जिसकी रचना या तो वह स्वयं पढ़ता है या उसका वह सम्बन्धी, छापने या पुरस्कार देने के लिए लिखवाता है। हरित का इस साहित्य की राजनीति से वास्ता नहीं था।

बिहारीलाल हरित के कृतित्व पर बात करते समय एक जरूरी नाम प्रायः छूट जाता है। वह नाम गोवर्द्धन बिहारी का नाम (है), जबकि यह तथ्य दिलचस्प है कि 1933 से 45 के आस-पास रचे गये इनके गीतों में संयुक्त कवित्व रहा है। एक कवि पहली पंक्ति कहता तो दूसरा दूसरी, या उसकी टेक तैयार कर देता था। उल्लेखनीय यह है कि वे कविता के लिए कविता नहीं लिख रहे थे, बल्कि अपने गरिमापूर्ण व्यक्तित्व, सादगी और अपनापन भरे सहज व्यवहार से अपने सोये हुए समाज को जगा रहे थे। वे अपनी संवेदना समाज के लिए बता रहे थे।

हरित जी ने लघु एवं वृहत् तीन दर्जन के करीब पुस्तक लिखा है। हरक पर संक्षेप में या एक किश्त में बात कर पाना यहाँ सम्भव नहीं है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में 'भीमायण', 'झलकारी बाई' और 'जगजीवन ज्योति' महाकाव्य हैं। 1945 में लिखी और 1946 में प्रकाशित 'अछूतों का पैगम्बर' की ये पंक्तियाँ दलितों के दालित्य का कितना सजीव चित्रण करती हैं-

"तीन रुपये का जमींदार से ले लिया उधार नाज।
एक आने का दोस्तो, ठहरा लिया था ब्याज ।।
दादा का करजा पोते से ना उतरने पाया।
तीन रुपये में जमींदार ने सत्तर साल कमाया।।"⁵

शाहदरा की 'गोवर्द्धन बिहारी कॉलोनी' दो मित्र कवियों के नाम पर है। लोक-संस्कृति में उनकी जड़ें गहरी हैं। यह अलग बात है कि लोक संस्कृति के कवियों पर शोध करते हुए भी उनके योगदान को नजरंदाज किया गया। इन दोनों कवियों की तैयारी संवाद के नमूने से देखे जा सकते हैं-

'समझेगा वही जिसे द्वारे जब हो,
पानी वही भरेगा जहाँ पर नसेब हो।
'उलझेगा वही ज्यादा, जिसमें फरेब हो,
पहले ही खरा बनेगा, जिसमें ऐब हो।"⁶

जाति पहचान से लोग प्रायः डरते हैं। वे अपने उपनाम ऐसे ढूँढकर चिपकाते हैं, जिनसे वे दलित और सवर्ण दोनों से छिप सके, जैसा मौका हो, लाभ उठा लें; पर स्वयं को चमार, भंगी कहनेवाले दलित लेखक अभी पैदा नहीं हुए हैं शायद। हरित जी चमार की लिखी कविता सुनाते हैं, हलांकि वे ऐसे घर में नहीं जन्में जहाँ चर्मकार्य होते हों, वे किसान घर में पैदा हुए थे।

'जय भीम, जय भारत' दलितों में सम्बोधन का ऐसा प्रचलित नारा बन गया है कि प्रायः भाषणों, पत्र-व्यवहारों और मिलने बिछड़ने के अवसरों पर दलितों में यह प्रयुक्त होता रहता है; पर बहुत कम लोग जानते हैं कि 'जय भीम' (नारा) के जनक कविवर बिहारीलाल हरित ही हैं-

"खोये अधिकार दिलायेगा, यह भीम का झंडा।
छुआछूत मिटाएगा, जय भीम का झंडा।
यह गौरव याद दिलायेगा जय भीम का झंडा।
यह सोयी कौम जगायेगा जय भीम का झंडा।"⁷

अन्त में यह कह देना उचित होगा कि किसी गैर दलित कवि से उनकी तुलना करना हरित जी का अपमान होगा। वे जो हैं-बेमिसाल या कहें अपना उदाहरण स्वयं हैं, हाँ, गोवर्द्धन बिहारी यदि जीवित होते और ये दोनों मित्र परस्पर स्पर्धा में सृजन करते तो तुलना होती। कबीर और रैदास की तरह 'हरितजी' ने जाति-व्यवस्था को परत-दर-परत उखाड़कर रख दी है-

"ज्यूँ कदली की पात में, पात, पात में पात
ज्यूँ गदहन की लात में, लात, लात में लात
ज्यूँ कवियन की बात में, बात, बात में बात
यूँ हिंदुअ न की जात में, जात, जात में जात।"⁸

संक्षेप में हिंदी में कबीर, रैदास तक हम न भी लौटें, तब भी पिछली दो - तीन पीढ़ियों के साहित्य क्रम को देखने से यह साबित होता है कि हिंदी दलित साहित्य अपने अलग नाम और दूसरे रूपों में यहां प्रत्येक युग में उपस्थित हैं, विशेषकर लोक साहित्य के क्षेत्र में लोक संस्कृति से सरोबार साहित्य की लम्बी यात्रा तय की है साहित्यकार बिहारीलाल हरित ने जिनका विस्तृत वर्णन इस लेख में किया गया है।

संदर्भ - ग्रंथ :-

1. स्क्रिप्ट त्रुटि. "Citation/CS1"
2. वही
3. सांचा. cite.web
4. <http://dalitsahitya.in /thought>
5. अछूतों का पैगम्बर - 1946 .हरित . पृ 55
6. बूम. हरित . पृ.69
7. दैनिक हिंदुस्तान पटना .12 मई.1999 पृ.112
8. वही



योग एवं तनाव प्रबन्धन : मानसिक स्वास्थ्य का समग्र दृष्टिकोण

डॉ. जयप्रकाश नारायण यादव*

प्रस्तावना

आधुनिक जीवनशैली में तनाव और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। काम का दबाव, अनियमित दिनचर्या, अस्वस्थ खान-पान और सामाजिक संबंधों में कमी जैसे कारकों के कारण व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ रहा है। ऐसे में, योग एक प्राचीन किंतु प्रभावी उपाय के रूप में उभरकर सामने आया है, जो न केवल तनाव को प्रबंधित करने में सहायक है, बल्कि समग्र मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योग एक ऐसा प्राचीन अभ्यास है जो आज की निष्क्रिय और तनावपूर्ण जीवनशैली में नई ऊर्जा और संतुलन प्रदान करता है। यह न केवल शारीरिक मजबूती और लचीलापन बढ़ाता है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्थिरता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योग के नियमित अभ्यास से मांसपेशियों को ताकत मिलती है, श्वसन और हृदय संबंधी कार्यों में सुधार होता है, साथ ही यह चिंता, तनाव, अवसाद, पुराने दर्द और नींद से जुड़ी समस्याओं को भी कम करता है। प्रत्येक वर्ष 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है, जो योग की वैश्विक महत्ता को दर्शाता है। भारत में योग की परंपरा लगभग पाँच हजार वर्षों से चली आ रही है, जो इसे न केवल एक व्यायाम पद्धति बल्कि एक जीवन दर्शन बनाती है। योग भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य देन है, जिसका उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा के बीच सामंजस्य स्थापित करना है। यह केवल शारीरिक व्यायाम तक सीमित नहीं है, बल्कि एक समग्र जीवन पद्धति है जिसमें आसन, प्राणायाम, ध्यान और यम-नियम जैसे अंग शामिल हैं। वैज्ञानिक शोधों ने भी यह सिद्ध किया है कि योग का नियमित अभ्यास तनाव के स्तर को कम करने, चिंता और अवसाद से निपटने तथा मन को शांत और केन्द्रित करने में सक्षम है।

तनाव आज के समय की एक प्रमुख समस्या है, जो शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। लंबे समय तक तनाव में रहने से हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, अनिद्रा और पाचन संबंधी विकार जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। यहाँ योग एक संपूर्ण समाधान प्रस्तुत करता है। योगासन शरीर की मांसपेशियों को आराम देते हैं, प्राणायाम तंत्रिका तंत्र को शांत करता है और ध्यान मन को नकारात्मक विचारों से मुक्त करता है। इस प्रकार, योग तनाव के दुष्प्रभावों को कम करके व्यक्ति को एक स्वस्थ और संतुलित जीवन जीने में मदद करता है। तनाव के तीन प्रमुख चरण शंका, प्रतिरोध और थकावट, व्यक्ति को मानसिक और शारीरिक रूप से कमजोर बना देते हैं। यह सकारात्मक भी हो सकता है, लेकिन अधिकतर मामलों में इसके नकारात्मक प्रभाव सामने आते हैं। लंबे समय तक तनाव बने रहने पर उच्च रक्तचाप, अल्सर, चिड़चिड़ापन और उदासीनता जैसी गंभीर समस्याएँ जन्म ले सकती हैं।

मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में योग का योगदान और भी गहरा है। यह न केवल मन को शांत करता है, बल्कि आत्म-जागरूकता और आत्म-स्वीकृति को भी बढ़ावा देता है। योग के माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को बेहतर ढंग से समझने लगता है, जिससे भावनात्मक स्थिरता आती है। इसके अलावा, योग का दार्शनिक पक्ष जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक होता है, जो आधुनिक जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए आवश्यक है।

आधुनिक जीवनशैली ने मानव जीवन को तेज, प्रतिस्पर्धात्मक और परिणाम-आधारित बना दिया है। कार्यस्थल का दबाव, शैक्षणिक बोझ, सामाजिक अपेक्षाएँ और अनिश्चित भविष्य ये सभी कारण व्यक्ति को मानसिक रूप से थका देते हैं। इन परिस्थितियों में, मानसिक तनाव एक सामान्य परंतु गंभीर चुनौती के रूप में उभर रहा है, जो व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और सामाजिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। युवाओं, विशेषकर छात्रों एवं कर्मचारियों, में यह समस्या और भी व्यापक रूप से देखी जा रही है।

* असो. प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, समता पी. जी. कॉलेज, सादात-गाजीपुर

मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा और महत्त्व

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2005) के अनुसार, "मानसिक स्वास्थ्य" की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:

"स्वस्थ होने की एक अवस्था जिसमें हर व्यक्ति स्वयं की क्षमता को साकार करता है, जीवन के सामान्य तनावों का मुकाबला कर सकता है, उत्पादकतापूर्ण तथा परिणामदायक रूप से कार्य कर सकता है, तथा अपने अथवा अपने समुदाय के लिए योगदान दे सकता है।"¹

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2013)² के अनुसार मानसिक रोगों से तात्पर्य उन मानसिक, तंत्रिका संबंधी विकारों और मादक पदार्थों के दुरुपयोग से उत्पन्न समस्याओं से है जो व्यक्ति को पीड़ा, विकलांगता या रुग्णता की स्थिति में ले जाती हैं। ये समस्याएँ व्यक्ति की आनुवंशिक संरचना, जैविक कारकों, शारीरिक गठन के साथ-साथ सामाजिक परिस्थितियों और पर्यावरणीय प्रभावों के कारण उत्पन्न हो सकती हैं। यह परिभाषा मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक रोगों के बीच स्पष्ट अंतर स्थापित करती है। मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक विकारों की अनुपस्थिति मात्र नहीं है, बल्कि यह एक सकारात्मक मनोदशा और समग्र कल्याण की स्थिति है। साथ ही, मानसिक रोगों की रोकथाम और उपचार मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं।

एक व्यक्ति के सामान्य कार्यप्रणाली और समग्र कल्याण के लिए उत्तम मानसिक स्वास्थ्य अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यह मानव अस्तित्व के कुछ मूलभूत सिद्धांतों को बनाए रखता है। सर्वप्रथम, स्वतंत्र रूप से सोचने और कार्य करने की क्षमता, जिसमें स्वयं के विचारों, भावनाओं, व्यवहार और पारस्परिक संबंधों का प्रबंधन शामिल है, स्वस्थ जीवन का आधारस्तंभ है। इस क्षमता का अभाव मानवीय स्थिति को सर्वाधिक अक्षम बनाने वाला कारक है। दूसरा, आनंद, खुशी और जीवन में संतुष्टि की प्राप्ति तभी संभव है जब व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य संतुलित हो। मानसिक समस्याओं से ग्रस्त व्यक्ति के लिए प्रगति करना और जीवन में पूर्णता की अनुभूति प्राप्त करना अत्यंत कठिन हो जाता है। तीसरा, पारिवारिक संबंध, मित्रता और सामाजिक संपर्क जीवन में उन्नति के लिए आवश्यक शर्तें हैं। जो व्यक्ति दूसरों के साथ स्वस्थ संबंध स्थापित करने में असमर्थ होते हैं, उनमें मानसिक विकारों के विकसित होने की संभावना अधिक रहती है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उत्तम मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति समाज के व्यापक हित में है। अतः उपरोक्त मूलभूत मानवीय मूल्यों का पोषण एवं संरक्षण जीवन के प्रारंभिक चरण से ही आरंभ होना चाहिए। इन मूल्यों के विकास में शिक्षकों की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे ही बच्चों के मानसिक विकास की नींव रखते हैं और उन्हें जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करते हैं।

योग की प्रासंगिकता

आधुनिक समय में योग को आसन (शारीरिक मुद्राएँ), प्राणायाम (श्वास व्यायाम) और ध्यान तक सीमित माना जाता है (गोयल एवं अन्य, 2014)³ हालाँकि, भारतीय परंपरा में योग का अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। यह चेतना की उच्च अवस्थाओं तक पहुँचने और अस्तित्व के गहन अनुभव प्राप्त करने का मार्ग है।

'योग' शब्द संस्कृत की 'युज' धातु से उद्भूत है, जिसका अर्थ है जोड़ना अर्थात् शरीर, मन और आत्मा को एक सूत्र में बांधना। इसी एकात्मता के माध्यम से योग व्यक्ति को संपूर्ण स्वास्थ्य और आंतरिक शांति की ओर ले जाता है।

भारतीय दर्शन के विश्वकोश (खंड-12) 'योग: भारत का ध्यान दर्शन' (लार्सन एवं भट्टाचार्य, 2016)⁴ में योग की दो प्रमुख परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं:

- व्यापक अर्थ में योग उन सभी आध्यात्मिक प्रक्रियाओं एवं साधनाओं को समाहित करता है, जिनके माध्यम से मनुष्य अपने अस्तित्वगत दुःखों से मुक्त होकर उच्चतर चेतना की अवस्था को प्राप्त करता है।
- विशिष्ट अर्थ में योग पतंजलि के योगसूत्र में प्रतिपादित भारतीय दर्शन की उस समृद्ध परंपरा को दर्शाता है, जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करने का सुव्यवस्थित मार्ग बताया गया है।

योग का मूल सिद्धांत यह है कि संसार केवल भौतिक पदार्थ से नहीं बना है, बल्कि इसमें एक गहन 'आत्मसाक्षात्कार' जैसे शब्दों से व्यक्त किया गया है। यह केवल ध्यान की क्षणिक अवस्था नहीं, बल्कि जीवन के प्रति एक समग्र परिवर्तन है, जो व्यक्ति के दैनिक कार्यों, संबंधों और मानसिक शांति को प्रभावित करता है (अग्रवाल एवं कॉनरेलिसेन, 2021)⁵

भारतीय जीवन-दृष्टि में योग विद्या को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे सर्वोच्च ज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया है। वेदों, उपनिषदों और अन्य प्राचीन ग्रंथों में योग का उल्लेख विस्तृत रूप में मिलता है। भारतीय दर्शनों में अनेक आचार्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से योग को परिभाषित किया है, जो इसकी व्यापकता को दर्शाता है। योग, मानव की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक क्षमताओं को विकसित करने का सबसे सहज और प्रभावी माध्यम है। यदि व्यक्ति योग को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना ले, तो वह अपने जीवन को संतुलित, सुखद और समृद्ध बना सकता है।

महर्षि व्यास के अनुसार—

“योगसमाधिः।”⁶

महर्षि पतंजलि ने इसे व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करते हुए कहा है—

“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”⁷

कठोपनिषद् के अनुसार:

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमागति।।⁸

जब मनुष्य की पाँचों इंद्रियाँ, मन और बुद्धि पूर्ण रूप से नियंत्रण में आ जाते हैं और भीतर पूर्ण शांति स्थापित हो जाती है, तब वह अवस्था परम शांति और मुक्ति की मानी जाती है।

मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में योग का प्रभाव

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2001)⁹ की मानसिक स्वास्थ्य परिभाषा में सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण की अवधारणाएं सम्मिलित हैं। इस दिशा में सकारात्मक मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेपों के लिए मूल्यवान दृष्टिकोण प्रदान करता है। अनेक शोधों ने यह दर्शाया है कि सकारात्मक मनोविज्ञान पर आधारित हस्तक्षेप तनाव से रक्षा करते हैं, व्यक्ति की कार्यक्षमता एवं स्वास्थ्य को बढ़ाते हैं और सामाजिक जुड़ाव को प्रोत्साहित करते हैं (वाजक्फेयज, 2009)¹⁰। ऐसे में योग और ध्यान को प्रभावशाली हस्तक्षेप के रूप में अपनाकर सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य एवं कल्याण को मजबूती दी जा सकती है। योग के माध्यम से न केवल पीड़ा से मुक्ति पाई जा सकती है, बल्कि जीवन में गहन एवं स्थायी कल्याण की अनुभूति भी प्राप्त की जा सकती है।

आज की तेज रफ्तार और तनावपूर्ण जीवनशैली में योग मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने और सुधारने का एक अत्यंत प्रभावशाली साधन बनकर उभरा है। यह प्राचीन भारतीय पद्धति तनाव, चिंता, अवसाद तथा अन्य मानसिक संघर्षों के प्रबंधन के लिए एक समग्र और संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो वर्तमान समय में बहुतायत में देखे जा रहे हैं। शारीरिक मुद्राओं, श्वास-प्रश्वास की तकनीकों और ध्यान की विधियों के अद्वितीय संयोजन के माध्यम से योग शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित करता है, जिससे भावनात्मक स्थिरता तथा मानसिक स्पष्टता में वृद्धि होती है। योगासनों के माध्यम से किए जाने वाली सचेत गतिविधियाँ न केवल शारीरिक तनाव को कम करती हैं, बल्कि हमारी तंत्रिका प्रणाली को भी शांत करती हैं, जो दीर्घकालिक तनाव अथवा मानसिक आघात से पीड़ित व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

योग में श्वास से संबंधित क्रियाएँ, जिन्हें प्राणायाम कहा जाता है, मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती हैं। नाड़ी शोधन, भ्रामरी आदि जैसे प्राणायाम शरीर की विश्राम प्रतिक्रिया को सक्रिय करते हैं, जिससे हृदयगति, रक्तचाप और मानसिक उद्वेग नियंत्रित होते हैं। यह परिवर्तन शरीर में तनाव से संबंधित हार्मोन के स्तर को घटाता है और चिंता के लक्षणों में कमी लाता है। इसके अतिरिक्त, प्राणायाम अभ्यास के दौरान ध्यान की एकाग्रता मन को वर्तमान क्षण में टिकाए रखने का अभ्यास कराती है, जिससे व्यक्ति भूतकाल की पीड़ा या भविष्य की चिंता से बचकर मानसिक रूप से अधिक स्थिर बनता है जो अवसाद की पुनरावृत्ति को रोकने में सहायक है।

योग के दार्शनिक आयाम भी अत्यंत गहरे मनोवैज्ञानिक लाभ प्रदान करते हैं, जो उसके शारीरिक अभ्यासों को सशक्त बनाते हैं। वैराग्य (आसक्ति से मुक्ति) और स्वाध्याय (आत्म-अध्ययन) जैसी अवधारणाएँ जीवन की अनिश्चितताओं और कठिनाइयों के प्रति संतुलित दृष्टिकोण अपनाने में सहायक हैं। अब कई उपचार पद्धतियाँ भी इन यौगिक सिद्धांतों को अपनाने लगी हैं, जिससे यह देखा जा रहा है कि ये उपाय मानसिक आघात से लेकर भोजन संबंधी विकारों तक के उपचार में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। जहाँ आधुनिक औषधीय हस्तक्षेप केवल लक्षणों को दबाते हैं, वहीं योग व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और आत्मिक स्तरों को एकीकृत करते हुए मानसिक पीड़ा के मूल कारणों का समाधान प्रस्तुत करता

मूल रूप से भारत में जन्मा योग आज वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना चुका है। सम्पूर्ण विश्व अब योग के असंख्य लाभों को समझने लगा है। यह प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की एक अनुपम देन है जो शरीर और मन, विकास और कर्म, संयम और सिद्धि के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। यह मानव और प्रकृति के बीच साम्य बिठाता हुआ स्वास्थ्य एवं कल्याण का समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाने का ऐतिहासिक निर्णय 11 दिसंबर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा लिया गया, जिसे रिकॉर्ड 177 देशों ने सह-प्रायोजित किया। संयुक्त राष्ट्र ने इस अवसर पर मान्यता दी कि योग स्वास्थ्य एवं कल्याण का एक सम्पूर्ण विज्ञान है जो वैश्विक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निष्कर्ष

योग और ध्यान न केवल भारत की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं, बल्कि वे मानसिक स्वास्थ्य और संपूर्ण कल्याण की दिशा में भी अत्यंत प्रभावशाली साधन हैं। आधुनिक मनोविज्ञान और परामर्श पद्धतियों में इन प्राचीन विधाओं का एकीकरण यह दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा वैश्विक स्वास्थ्य दृष्टिकोणों को समृद्ध कर सकती है। वैज्ञानिक अनुसंधानों और चिकित्सकीय प्रयोगों ने यह प्रमाणित किया है कि योग और ध्यान तनाव प्रबंधन, भावनात्मक नियंत्रण, आत्म-जागरूकता और सामाजिक जुड़ाव में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। इस संदर्भ में, यह समझना आवश्यक है कि योग केवल शरीर की क्रियाओं तक सीमित नहीं है, अपितु जीवन के प्रति दृष्टिकोण, मानसिक संतुलन और आत्मिक विकास को भी प्रभावित करते हैं। जब इन विधियों को सकारात्मक मनोविज्ञान के सिद्धांतों से जोड़ा जाता है, तब वे मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक समग्र और सशक्त हस्तक्षेप बन जाते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन तकनीकों को देशज और वैज्ञानिक दोनों आधारों पर और अधिक व्यापकता से अपनाया जाए, ताकि मानसिक कल्याण एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रहकर समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंच सके। इस प्रकार, योग और न केवल भारत के गौरवशाली अतीत की धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के मानसिक स्वास्थ्य समाधान की कुंजी भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2013)
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2005)
3. गोयल, एम., एवं (2014)
4. लार्सन एवं भट्टाचार्य, (2016) : भारतीय दर्शनशास्त्र का विश्वज्ञान खंड, 12, योग : भारत का ध्यान दर्शन. मोतिलाल बनरसीदास.
5. अग्रवाल, जे., एवं कॉनरेल्लिसेन, एम. (2021)
6. व्यासभाष्य, यो.-द.- 1/1
7. पतंजलि योग सूत्र- 1/2
8. कठोपनिषद 2/3/10-11
9. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2001)
10. वाजक्फेयज, सी. एच. : मनुष्य कलात्मक कल्पना और स्वास्थ्य, नैकोनिक और स्वास्थ्य मनुष्य विज्ञान का संग्रह, (2009)



संतों का गढ़ छत्तीसगढ़

संजय मिंज*

प्राचीन काल से ही छत्तीसगढ़ संतों का गढ़ रहा है। छत्तीसगढ़ में अनेक संतों की कार्यस्थली एवं जन्मस्थली रही है। संतों ने समाज को एक नवीन क्रांतिकारी व प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रदान किये हैं। आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए बाह्य अडम्बरों, कर्मकाण्डों का निषेध उन्होंने किया तथा समाज को एक नई दशा व दिशा दी है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह शूद्र, ब्राह्मण, हिन्दु, या मुसलमान हों, गृहस्थ हो या साधक, मोची, जुलाहा या लखपति हो सभी की समानता की घोषणा करके संतों ने साम्यवाद की पुनः प्रतिष्ठा की। संतों ने सिद्धों व योगियों कर भाँति धार्मिकता को समाजिकता से पृथक, विच्छिन्न एवं विरोधी रूप न देकर दोनों को सुसम्बद्ध व सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है। भारतीय हिन्दी साहित्य के समान्तर छत्तीसगढ़ में भी निर्गुण और सगुण भक्तिधारा गतिमान थी। अधिकांश निर्गुणिय संत अनपढ़ और अल्पशिक्षित ही थे। शास्त्रीय ज्ञान का आधार न होने के कारण ये अपने अनुभव की ही बात कहने को बाध्य थे। अल्पशिक्षित होने के कारण इन संतों ने विषय को ही महत्व दिया, भाषा को नहीं। संत सुनी सुनाई बातों पर विश्वास नहीं करते थे। संतों के समागम से जो कुछ सुना उसे ज्यों का त्यों नहीं मानते थे, बल्कि अनुभव के द्वारा अर्जित सत्यता को वरीयता देते थे। छत्तीसगढ़ के प्रमुख संतों का समान्य परिचय नीचे प्रस्तुत है।

संत धनी धर्मदास--:

धनी धर्मदास को छत्तीसगढ़ का प्रथम संत होने का गौरव प्राप्त है। धनी धर्मदास संत कबीर के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख संत और संत कबीर के प्रमुख शिष्य थे। संत धनी धर्मदास छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं।

संत धनी धर्मदास का जन्म सन् 1502 ई. को मध्यप्रदेश राज्य के जिला शहडोल के बांधोगढ़ में हुआ था। इनका विवाह सुलक्षणावती के साथ सन् 1530 ई. को हुआ था, जो पथरहट नगर की थी। कबीर पंथ में सुलक्षणावती को अमीनमाता के नाम से जाना जाता है। संत धर्मदास और उनकी पत्नी सुलक्षणावती ने सन् 1570 ई. में बांधोगढ़ के विशाल जनसमूह के सामने अपने गुरु कबीर दास से दीक्षा ली थी। उनके अखण्ड भक्ति से प्रसन्न होकर संत कबीर दास जी ने संत धनीधर्म दास जी को अपना मुख्य उत्तराधिकारी शिष्य बनाया और जीवन प्रर्यन्त कबीर पंथ की अगुवाई का आशीर्वाद दिया था। संत कबीर दास जी के वचनों को एकत्रित कर उन्हें लिपिबद्ध करने श्रेय संत कबीर दास जी को ही जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है “संत कबीर के वाणी का संग्रह उनके शिष्य संत धर्मदास ने सन् 1570 ई. में किया था। “ज्ञान बाँटने का एक माध्यम होता है, जैसे गीता को सुनने को श्रेय अर्जुन को है, वैसे ही संत कबीर के वचन को सुन कर उन्हें वैसे ही लिखने का श्रेय संत धनी धर्मदास जी को है। “धनी धर्मदास जी साहेब और आमिनमाता की शब्दावली “ संत धर्मदास जी की प्रमाणिक रचना मानी जाती है। जिनका सम्पादन आचार्य गृन्धमुनि नाम साहेब ने किया है। धनी धर्मदास जी संत कबीर से आत्मा, परमात्मा, जन्तु और संसार के बारे में प्रश्न पूछते जाते और प्राप्त उत्तर को लिपिबद्ध करके संसार के उद्धार हेतु उपलब्ध कराते थे। जो छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदाबाजार जिला में दामाखेड़ा वंशगद्दी में, सद्गुरु संत कबीर दास के कथन के रूप में आज भी उपलब्ध है।

संत गुरु घासीदास :-

संत गुरु घासीदास जी जन्म हमारे छत्तीसगढ़ प्रदेश में तात्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आवश्यकताओं की फूर्ति थी। उस समय छत्तीसगढ़ की धरती अराजकता, अस्थिरता, अत्याचार, अनाचार, आडंबर, लूट आदि की ज्वाला से धधक रही थी। उनकी जीवन गाथा, पशुता के साथ मानवता, अत्याचार के साथ प्रेम, अन्याय के साथ न्याय और असत्य के साथ सत्य के संघर्ष की कहानी है। मराठा सूबेदारी शासन के नाम पर छत्तीसगढ़ की भोली-भाली जनता पर अत्याचार कर रहे थे। ऐसे स्थितियों में किसी ऐसे युग पुरुष की आवश्यकता थी, जो ऐसी व्यवस्था में सुधार कर जनता को ऐसी व्यस्था से मुक्ति

* शोधार्थी हिन्दी, विश्वविद्यालय शिक्षण विभाग, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, सरगुजा (छ.ग.)

दिला सके। छोटी से छोटी सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक घटना का घासीदास के मन मस्तिष्क पर गहरा असर होता था।

गुरु घासीदास जी का जन्म बिलाईगढ़ जमींदारी के अन्तर्गत पहाड़ियों की गोद में बसे ग्राम गिरौदपुरी में जिला बलौदाबाजार तहसील बलौदाबाजार के महानदी के तट पर 18 दिसम्बर की सुभग रात्रि में 4 बजे की पवित्र बेला में सन् 1756 ई. को पिता महंगुदास एवं माता अमरौतिन के घर में हुआ था। गुरुघासीदास के बचपन का नाम घसिया था। इनका विवाह सफुरा बाई से हुआ था, जो कि सिरपुर के अंजोरी की पुत्री थी। तत्कालीन कमजोर और पिछड़े सामाज्य के जीवन पर संत गुरु घासीदास जी का प्रभाव जितना पड़ा, उतना किसी और संत का नहीं पड़ा। गुरु घासीदास जी को सतनाम धर्म का प्रवर्तक कहा जाता है। जिसे साधारण बोल चाल में सतनामी धर्म भी कहा जाता है। एक बार बलौदाबाजार में भीषण अकाल पड़ा जिसके कारण गुरु घासीदास को अपने परिवार के जीविका के दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी। अंततः गुरु घासीदास सपरिवार भटकते हुए उड़िसा के कटक शहर पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट उड़िसा के सुप्रसिद्ध संत बाबा जगजीवनदास से हुआ। बाबा जगजीवनदास जी से ही संत गुरु घासीदास ने सतनाम की शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने गुरु घासीदास के हृदय को जागृत कर बताया, कि उनका जन्म संसारिक कामों के लिए नहीं बल्कि, मनुष्यों को सही पथ प्रदर्शन के लिए हुआ है। कटक से वापस आकर सोनाखान के जंगलों में तप करने के पश्चात् जोंक नदी के तट पर गुरु घासीदास को सत्य का ज्ञान हुआ और उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। गुरु घासीदास जी जानवरों से प्रेम करने की शिक्षा देते थे। वे जानवरों पर क्रूरता पूर्वक व्यवहार के शक्त विराधी थे। सतनाम पंथ के अनुसार कृषि कार्य के लिए गायों का उपयोग नहीं करना चाहिए। संत गुरु घासीदास जी के वचनों और संदेशों का समाज के निम्न एवं पिछड़े वर्गों पर गहरा प्रभाव पड़ा। गुरु घासीदास के सिद्धांतों, संदेशों और उनकी जीवनी का प्रचार-प्रसार पंथी गीत एवं नृत्यों के द्वारा भी बहुत अधिक हुआ। रायपुर राजपत्र के अनुसार सन् 1820 ई. से 1830 ई. के बीच छत्तीसगढ़ की 12 प्रतिशत जनता गुरुजी के चरणों का चरणामृत पान कर उनकी अनुयायी हो गयी। गुरु घासीदास ने छत्तीसगढ़ के सामाजिक उत्थान के लिए एक संत के रूप में अपना सारा जीवन बलिदान कर दिया।

संत गहिरा गुरु :-

संत गहिरा गुरु का जन्म 1905 ई. में रायगढ़ जिला के अन्तर्गत लैलूंगा विकासखण्ड के वनों के बीचो-बीच में स्थित ग्राम गहिरा में हुआ था। इनके पिता का नाम बुड़कीनंद और माता का नाम सुमित्रा बाई था। इनके बचपन का नाम रामेश्वर कंवर था। गहिरा गुरु कभी विद्यालय नहीं गये। बाल्यावस्था से ही इनके मन में दया, धर्म, ईमान और ईश्वर के प्रति भक्ति पनपने लगा था। बड़े होकर अपनी वचनों और सेवा-भाव से सबको सीख देने लगे। मांस, मदिरा का त्याग कर समाज सेवा करने का उपदेश देने लगे। सभी इन्हें गुरुजी के नाम से जानने लगे।

गहिरा गुरु वनवासियों और आदिवासियों की दयनीय स्थिति से बहुत ही दुःखी तथा परेशान थे। उनकी अज्ञानता को दूर करके और सनातन रीति को बचाने के लिए सत्या, शांति, दया धारण कर साथ-साथ हत्या और झूठ को छोड़ने का उपदेश दिया। गहिरा गुरु टीपाझरन नामक स्थान पर लगातार 8 दिनों तक की साधना के बाद पूर्ण भक्त बन गए। इनके भक्तों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही थी। उनकी इच्छा थी कि लोग एक ब्यक्ति से न जुड़कर संगठन से जुड़ें इसलिये इन्होंने सनातन धर्म संत समाज की स्थापना सन् 1943 ई. में की थी। उनके सभी भक्त इस संगठन के सदस्य बन गये। गहिरा गुरु के अनुयायियों ने जगह-जगह घूम-घूम कर संत समाज के आदर्शों का प्रचार किया। सामरबार, कैलाश गुफा, श्रीकोट, अम्बिकापुर, राजपुर, लैलूंगा, गहिरा में आश्रमों की स्थापना किया गया। सनातन संत समाज संस्था का पंजीयन सन् 1985 ई. को कराया गया था। सामरबार, कैलाश गुफा और श्रीकोट में संस्कृत विद्यालय खोला गया।

आदिवासी समाज के उत्थान के लिए उल्लेखनीय कार्य हेतु संत गहिरा गुरु को 1986-87 ई. में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया। मध्यप्रदेश शासन द्वारा सन् 1996-97 ई. में बिरसा मुण्डा आदिवासी सेवा राज्य पुरस्कार भी दिया गया। समाज कल्याण का कार्य करते-करते 21 नवम्बर 1996 ई. को 92 वर्ष की उम्र में संत गहिरा गुरु हम सब को छोड़कर परलोक सिंघार गये। आज संत गहिरा गुरु हमारे बीच न होते हुए भी उनका समाज सुधार का कार्य, देशप्रेम, ईमानदारी और सेवाभाव हम सबका पथ प्रदर्शन कर रहा है।

माता राजमोहिनी देवी :-

माता राजमोहिनी देवी का जन्म 7 जुलाई 1914 ई. में बलरामपुर जिला के वाङ्गनगर विकासखण्ड के अन्तर्गत सरसेड़ा शरदापुर ग्राम में हुआ था। इनका विवाह जिला सूरजपुर के अन्तर्गत प्रतापपुर विकासखण्ड के ग्राम गोविंदपुर के किसान परिवार में रंजीत गोंड के साथ हुआ था। इनके दो पुत्र और पांच बेटियाँ थीं। राजमोहिनी देवी का जीवन जंगली फल-फूल, कंदमूल आदि पर आधारित था। इसी बीच उनके पति रंजीत सिंह की मृत्यु 1986 ई. को हो गया था।

राजमोहिनी देवी प्रतिदिन की भौंति खुखड़ी, पुटू उठाने के लिए जंगल गई थी। सुबह से शाम हो गया किन्तु उन्हें कुछ नहीं मिला। उस समय वहाँ आकाल की स्थिति आ गई थी। लोग गाँव से पलायन के बारे में सोच रहे थे। माता जी थकान के कारण सतनदी के पास बरगद वृक्ष के नीचे बैठ कर अपने परिवार के जिन्दगी के बारे में सोच के रो रहीं थीं। तभी जंगल की ओर से अचानक एक ब्यक्ति निकलकर माता जी से राने का कारण पूछने लगा। माता जी आकाल की पूरी घटना रोते हुए उस अनजान मनुष्य को बताया। उस मनुष्य ने मांस, मदिरा, अत्याचार और लड़ाई-झगड़ा को इस आकाल का कारण बताया। उस पुरुष की बात सुनते ही माता जी को आत्मज्ञान की प्राप्ति हो गयी। घर पहुँचने के बाद अपनी सभी चीजों को फेंक दीं और एक पत्थर में छः दिन और छः रात हाथ जोड़कर मौन बैठी थी। गाँव के कुछ लोग ईश्वर का ताकत मानकर माता जी के लिए झोपड़ी बनाकर उनके तप में विश्वास करने लगे। सतवाँ दिन अचानक तेज बारिश होने लगी। माता जी अपने उपवास को तोड़कर अपनी सारी जिन्दगी समाज और देश सेवा में लगाने का संकल्प कर ली। उनका कथन था कि धर्म-कर्म करो, सफाई से रहो, मांस, मछली और मदिरा का त्याग करो। गाँव और आसपास के सभी लोग माता जी की बात मान कर मांस, मदिरा छोड़कर सादगी से जीवन यापन करने लगे।

माता राजमोहिनी देवी राष्ट्रपिता महात्मागान्धी को अपना गुरु मानती थी। माताजी विनोवा भावे के शिक्षा से गौ हत्या बंद करने के लिए अपने सहयोगियों के साथ गुवाहवटी में अनशन में बैठी थी। अम्बिकापुर में गौ हत्या बंद कराने के लिए चार दिन तक उपवास रखी थी। माता राजमोहिनी देवी पढ़ी-लिखी नहीं थी, लेकिन शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अपना सारा जीवन त्याग दिया। गोविन्दपुर में एक पाठशाला भी खोली थी। माता जी विधवा विवाह का समर्थन करती थी। माता जी का प्रमुख आन्दोलन मद्यनिषेध था। माता राजमोहिनी देवी 28 मार्च 1953 ई. में भदठी ताड़ो सत्याग्रह शुरू की थी। इस सत्याग्रह का संदेश था, कि मदिरा से तन, मन, और धन तीनों का नुकसान होता है। माता राजमोहिनी देवी वर्ष 1963-64 ई. में अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद के सम्मेलन में शराब बंदी के लिए भाषण दी थी। इनका भाषण से खुश होकर श्री लाल बहादुर शास्त्री और मोरार जी देसाई जी भी इन्हें बधाई दिये थे।

माता राजमोहिनी देवी आचार्य विनोवा भावे द्वारा चलाया गया भू-दान महायज्ञ को सरगुजा सहित आस-पास के क्षेत्र में चलायी। सरगुजा में कई एकड़ जमीन दान में उन्हें मिला था। माता जी ने देवी बापू धर्म सभा आदिवासी सेवा मण्डल का गठन की थी। इनका आश्रम को धार्मिक संस्था की मन्यता 20 मार्च 1954 ई. को मिला। राजमोहिनी देवी जी के वर्ष में तीन बड़े कार्यक्रम चैत्र नवमी, कुंवार नवमी और माघ का पूर्णिमा में होता था।

माता राजमोहिनी देवी को समाज और देश सेवा के लिए अविभाजित मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री पं रविशंकर शुक्ल और भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अम्बिकापुर में बधाई दिये थे। माता राजमोहिनी देवी को 19 अगस्त 1986 ई. में इंदिरा गान्धी राष्ट्रीय पुरस्कार और 25 मार्च 1989 ई. में "पदमश्री" की उपाधि दिया गया।

राजमोहिनी देवी को लोग "माता जी" के नाम से पुकारते थे। राजमोहिनी देवी की जीवन लीला 6 जनवरी 1994 ई. को शाम 7 बजे डूब गया। इस महान् विभूति के निधन से सरगुजा अंचल में धर्म-कर्म, सत्य-अहिंसा का एक पाठ ही समाप्त हो गया।

महाप्रभु वल्लभाचार्य :-

पुष्टी मार्ग के प्रवर्तक तथा हिन्दी साहित्य के सगुण शाखा के कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि संत वल्लभाचार्य का जन्म 1479 ई. में रायपुर जिले के प्रसिद्ध तीर्थ राजिम से 14 किलोमीटर दूर चम्पारन नामक स्थान पर हुआ था। वल्लभाचार्य श्री विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भी हैं इसे दार्शनिक दृष्टिकोण से शुद्धादत्रैतवाद भी कहा जाता है। वल्लभाचार्य अपने समय के प्रसिद्ध एवं प्रतिभा सम्पन्न महात्मा थे। इनसे मुगलकालीन सम्राट अशोक भी बहुत प्रभावित थे।

वल्लभाचार्य भक्ति को भगवान को पोषण और प्राप्ति का साधन मानते थे। शिवरीनाराण, राजिम, चम्पारन से होकर उत्तर भारत से दक्षिण भारत जाने का मार्ग गुजरता है। वल्लभाचार्य के पिता श्री लक्ष्मण भट्ट और माता इल्लमा इसी मार्ग से दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे। तभी लक्ष्मण भट्ट की पत्नी इल्लमा के गर्भ से वल्लभाचार्य का जन्म हुआ। जो मरा हुआ लग रहा था। उनके माता-पिता ने बच्चे को एक वृक्ष के नीचे पत्तों में लेटाकर ईश्वर की उपासना में लीन हो गए। सुबह जब उन्होंने बच्चे को देखा तो वह अंगूठा चुसता हुआ मुस्करा रहा था। यही बालक आगे चलकर महाप्रभु वल्लभाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गोस्वामी मथुरेश्वर द्वारा "श्रीमद् वल्लभाचार्य धर्म संस्कृति शोध अन्वेषण संस्थान" की स्थापना रायपुर जिले के चम्पारन में किया गया है।

वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवाद का समर्थन करते थे। ब्रह्मा को शुद्ध और जीव मुक्त अणु मानते थे। इनके अनुसार मर्यादा और पुष्ट भक्ति ही श्रेष्ठ है। वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के भक्त आज भी कृष्णभूमि में दिखाई देते हैं। इनके पुत्र विट्ठलदास अपने पिता की तरह ही प्रतिभावान थे। इन्होंने अपने चार समर्थक और पिता के चार समर्थकों को मिलाकर अष्टछाप की स्थापना की। जीवमात्र के प्रति प्रेम और अहिंसा इस भक्ति मार्ग का आदर्श है।

प्रमुख ग्रंथ —: सुबोधिनी टीका, श्रृंगार मण्डन, अणु भाष्य ।

शिष्य —: सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास ।

नागार्जुन :-

नागार्जुन का जन्म भगवान बुद्ध के निर्वाण के 400 वर्षों बाद छत्तीसगढ़ में हुआ था। बौद्ध धर्म के महायान शाखा का संस्थापक नागार्जुन को ही माना जाता है। इनको राहुल सांस्कृत्यायन ने 'राहुल यात्रावली' में दक्षिण कोशल का निवासी बताया है। हवेनसांग के यात्रा विवरण 'भारत भ्रमण वृत्तांत' में और डॉ. दिनेश चंद्र सरकार तथा पंडित लोचन प्रसाद पांडेय ने नागार्जुन को छत्तीसगढ़ के सिरपुर के संघाराम का निवासी बताया है।

नागार्जुन ने बस्तर और आंध्र प्रदेश की सीमा पर स्थित श्रीपर्वत पर 12 वर्षों तक वृक्ष यक्षिणी की साधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। प्रचीन काल में यह पर्वत दण्डकारण्य का भाग था। नागार्जुन बस्तर के महामयूरी विद्या के साधक थे। नागार्जुन महान् दार्शनिक और संत होने के साथ-साथ आयुर्वेदाचार्य और रस सिद्धि योगी थे। इनको ज्ञान, विज्ञान, योग और तंत्र विद्या ने महान बना दिया। प्राचीन काल में छत्तीसगढ़ में तंत्रिक का गढ़ वर्तमान धार्मिक स्थल शिवरीनारायण था।

बोधिसत्व नागार्जुन को दार्शनिक के साथ-साथ रसायनशास्त्री व वैज्ञानिक भी माना गया है। इनको सातवाहन वंश और सम्राट कनिष्क के शासन के समकालीन माने जाते हैं। सिरपुर में लंका के राजकुमार आर्यदेव ने नागार्जुन से ही शिक्षा प्राप्त की थी। ये वेदों में परांगत थे। बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त कर उसका प्रचार-प्रसार करने में अपना सारा जीवन त्याग दिया।

बलभद्रदास :-

बलभद्रदास जी का जन्म शंभूदयाल गौड़ के पुत्र के रूप में राजस्थान राज्य के जिला जोधपुर के आनंदपुर में सन् 1524 ई. को हुआ था। इनका वास्तविक नाम बालमुकुंद था। लेकिन इनका कार्यस्थली छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर जिला था। अन्न-जल को त्याग कर केवल दूध का सेवन करने के कारण इनका नाम दूधाधारी महाराज पड़ गया। वे राजस्थान से चमत्कारी यात्रा करते-करते महाराष्ट्र से होते हुए छत्तीसगढ़ आ गए। गरीबदास को अपना गुरु बनाया और उनके द्वारा भंडारा जिले के पावनी में श्रीरामजानकी मंदिर में काफी दिनों तक निवासरत रहे। बलभद्रदास भोंसले शासन के दौरान भंडारा से रायपुर 17 वीं शताब्दी के प्रारंभ में आए। बलभद्रदास जी को 'दूधाधारी मठ' के पहले महंत होने का गौरव भी प्राप्त है। सेठ दीनानाथ अग्रवाल ने इस मठ में श्रीरामजानकी का भव्य मंदिर का निर्माण कराया। श्रीरामजानकी मंदिर छत्तीसगढ़ का एकमात्र ऐसा मंदिर है, जहाँ श्रीरामजानकी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन और हनुमान की भव्य झांकी दिखाया गया है। लोग इनके सम्पर्क में आते गये और शिष्यों की संख्या में वृद्धि होता गया।

बलभद्रदास जी श्री सम्प्रदाय से शिक्षा प्राप्त कर भक्ति का प्रसार करने सरगुजा के रामगढ़ पहाड़ में तपस्या की। तपस्या पश्चात तुरतुरिया के वाल्मीकि आश्रम आ गये। गरीबदास के बड़े भाई रामानंद दास रायपुर में रहते थे, जिनको तत्कालिन हैहयवेशीय राजा ने आश्रम के लिए भूमि दान दी थी। यहीं पर आश्रम बनाकर अपना कार्य करते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. शर्मा, डॉ. निरूपमा-“छत्तीसगढ़ की महिला साहित्यकार” खण्ड-1/विशेष -पृ. 5/जे.एम.डी. पब्लिकेशन/नई दिल्ली/सन् 2014
2. आडिल, डॉ. सत्यभामा-“संत धर्मदास”/पृ. 389/श्रीसदगुरु कबीर धर्मदास साहेब वंशावली प्रतिनिधि सभा, रायपुर/सन् 2002
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र-“हिन्दी साहित्य का इतिहास”/पृ. 66/कमल प्रकाशन, नई दिल्ली/नवीन संस्करण
4. वर्मा, परदेशीराम-“स्मारिका” पत्रिका/पृ. 13/ छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर/2017
5. त्रिपाठी, शिवकुमार-“अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर”/पृ. 12 /छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर/संस्करण द्वितीय/2010
6. त्रिपाठी, शिवकुमार-“अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर”/पृ. 41 /छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर/संस्करण द्वितीय/2010
7. त्रिपाठी, शिवकुमार-“अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर”/पृ. 77 /छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर/संस्करण द्वितीय/2010
8. त्रिपाठी, शिवकुमार-“अभिनव ऋषि गहिरा गुरु रामेश्वर”/पृ. 78 /छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर/संस्करण द्वितीय/2010
9. खुबालकर, डॉ. भारती-“साहनी निबन्ध माला महान् सन्त एंव महात्मा”/पृ. 34 साहनी पब्लिकेशन, रोशन आरा रोड, दिल्ली/2013

पत्रिकाएँ

1. कौशल, मुकुन्द-“स्मारिका” पत्रिका/पृ. 7/छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर/2017



मॉरीशस की लेखिका सुचिता रामदीन के लोकगीतों की संवेदना

डॉ. संजय श्रीरामजी धोटे*

मॉरीशस में भारतीय प्रवासियों की संख्या अधिक है। इस देश में भारत से सन् १८३४ से सन् १६१० तक के बीच अनेक शर्त बंद कुलियों के रूप में भारतीय प्रवासियों की बहुत बड़ी संख्या इस दीप में पहुँची हैं। ये भारतीय प्रवासी उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल आदि राज्यों से हैं। इसमें से अधिकतर लोग उत्तर प्रदेश और बिहार के थे, जो अशिक्षित थे। और अपनी आजीविका की तलाश में मॉरीशस पहुँच गए थे। ये लोग अपने साथ अपनी भाषा भोजपुरी, संस्कृति तथा रीति रिवाज भी साथ ले गए इन लोगों के पास रामचरितमानस और हनुमान चालीसा जैसे धार्मिक ग्रंथ भी थे। इन लोगों में कुछ लोग वहाँ जाकर ईसाई धर्म से आकर्षित होकर और कुछ विभिन्न प्रकार के दबाव के कारण ईसाई भी हो गए। लेकिन समाज के अधिकांश लोगों में विभिन्न प्रकार के अत्याचार सहते हुए भी अपने हिन्दू धर्म तथा भोजपुरी भाषा एवं संस्कारों को छाती से लगाकर रखा और भारतीयता को जीवित रखा हैं।

मॉरीशस में बसे इन हिन्दू भोजपुरी समाज ने गाँवों में बहुवर्गीय समाज की स्थापना की। और अनेक विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी मातृभाषा भोजपुरी को जीवित रखा। मॉरीशस में बसे प्रवासी भारतीय भोजपुरी लोग इस सत्य को जानते थे कि भाषा ही संस्कृति की रक्षक हैं। अतः उन्होंने अपनी भोजपुरी भाषा को जीवित रखकर अपनी भारतीय संस्कृति को जीवित रखा। एक शताब्दी से अधिक हो जाने के बाद भी इन भारतीय भोजपुरी हिन्दू समाज के लोगों ने मॉरीशस में रहकर भी अपनी धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक-सभ्यता, आचार-विचार, वेशभूषा, कला-कौशल आदि को भारत के अनुरूप ही बनाए रखा हैं। यद्यपि भोजपुरी समाज पर वहाँ अंग्रेज, फ्रेंच आदि का भी प्रभाव पड़ा है, किन्तु मॉरीशस में आज भी हिन्दू समाज भाषा और संस्कृति के साथ जीवित है। मॉरीशस में भोजपुरी और हिंदी में विरोध की स्थिति नहीं थी। क्योंकि वहाँ जो हिंदी के लेखक या अध्यापक हैं, वो हिंदी भाषी हैं। वे सभी मूलतः भोजपुरी भाषा-भाषी भी हैं। मॉरीशस के लेखक दिमलाला मोहित का यह विचार ठीक है कि मॉरीशस में भोजपुरी और हिंदी का परस्पर प्रेम और सहयोग बना रहना आवश्यक हैं। अन्यथा भाषा की राजनीति इन दोनों भाषाओं को बिखरा सकती हैं।

भाषा की राजनीति इन दोनों भाषाओं को बिखरा सकती हैं। मॉरीशस में अनेक भारतीय मूल के लेखक हैं। इसमें अभिमन्यु अनंत, रामदेव धुरंधर, पूजानंद नेमा, राजेंद्र अरुण, जागा सिंह, डॉ. चिंतामणि, प्रहलाद रामशरण आदि का उल्लेखनीय स्थान हैं। इसमें से अधिकांश लेखकों की कृतियाँ मॉरीशस में प्रकाशित होती हैं। और वहाँ तक ही सिमित रह जाती है। इसलिए मॉरीशस के लेखकों की श्रेष्ठ पुस्तकों का भारत में लाना और पाठक वर्ग तक पहुँचाना आवश्यक हैं। क्योंकि इन पुस्तकों तथा इनके लेखकों का हिंदी की मुख्यधारा से जुड़ना जरूरी हैं। भारत के पाठकों तथा भारतीय हिंदी साहित्य के अध्येताओं को भी इसका ज्ञान आवश्यक हैं कि भारत के बाहर विदेशों में भी हिंदी लेखन किस रूप में हो रहा है। मैं इस आलेख में मॉरीशस की लोक साहित्य से जुड़ी हुई लेखिका सुचिता रामदीन द्वारा सम्पादित लोकगीत संग्रह 'संस्कार मंजरी' की चर्चा करूंगा। मॉरीशस में अनेक लेखकों द्वारा भोजपुरी लोकगीतों एवं लोक साहित्य पर अनेक लेखकों द्वारा लिखित पुस्तके प्रकाशित हुई हैं। इसमें ब्रजेन्द्र कुमार की 'मधु कलश', और 'मधु बहार', नारायण दत्त की पुस्तक 'लोकसंगीत गीतमाला', रुद्रदत्त पोखन की 'भोजपुरी गीत, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा की पुस्तक 'भोजपुरी कविता', वसंत पत्रिका का 'भोजपुरी विशेषांक अंक-१६', वसंत राय की 'गीता' का भोजपुरी अनुवाद 'सरल गीता' और 'श्रीमद भगवद गीता'

* अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, यशवन्त महाविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र), राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

तथा उनकी 'सत्यनारायण स्वामी की कथा' आदि उल्लेखनीय हैं। 'मॉरीशस में मॉरीशस की भोजपुरी' शीर्षक से रामेश्वर ओरी ने सन् १९७० में महा शोध प्रबंध लिखकर पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके अलावा भी अनेक मॉरीशस के अनेक लेखकों तथा कवियों ने हिंदी के साथ भोजपुरी में भी अपनी रचनाएँ लिखी हैं। इतना ही नहीं मॉरीशस की अनेक संस्थाएँ भी भोजपुरी के विकास के लिए कार्यरत हैं। इसमें महात्मा गाँधी संस्थान, मोका का भोजपुरी एवं लोक संस्कृति विभाग, मॉरीशस भोजपुरी इंस्टिट्यूट, मॉरीशस ब्राण्ड कॉस्टिंग कोपोरेशन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार मॉरीशस में अनेक लेखक और संस्थाएँ भोजपुरी गीत, रूपक, लोकवार्ता, क्रीड़ा-गीत, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, नाटक आदि के द्वारा भोजपुरी लोक संस्कृति को सुरक्षित तथा विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन कभी-कभी भोजपुरी तथा हिंदी को प्रतिद्वंद्वी भाषाओं के रूप में प्रस्तुत करके इनके अटूट रिश्ते को तोड़ने का भी प्रयत्न होता रहा है। ऐसे लोगों के लिए स्पष्ट शब्दों में मॉरीशस के साहित्यकार अभिमन्यु अनंत ने लिखा है- "भोजपुरी हमारी विरासत है। भोजपुरी न होती तो संभवतः मॉरीशसीय हिंदी की सशक्तता इतनी उभरकर नहीं आती। यही नहीं, भोजपुरी के बिना मॉरीशस की हिंदी अपनी वह विशिष्ट अस्मिता भी नहीं बना पाती, जो बनी है। इसलिए भोजपुरी हमें आज भी उतनी ही प्रिय है, जितनी डेढ़ सौ वर्ष पहले थी, लेकिन हम उस षड़यंत्र के लिए तैयार नहीं कि भोजपुरी को हिंदी से अलग भाषा बताकर उसे हिंदी की प्रतिद्वंद्वी के रूप में खड़ा कर दिया जाए। अगर भोजपुरी के बिना हिंदी दमदार नहीं हो पाती तो हिंदी के अभाव में भोजपुरी भी अपने सही स्वरूप को नहीं पहुँच पाती। ये दोनों भाषाएँ एक दूसरे से विलग न होकर एक दूसरे की परक हैं। और इसी परकता में दोनों की अस्मिता और सम्पर्णता है।"¹

में यहाँ पर जिस कृति का परिचय देने वाला हूँ इसका प्रकाशन मॉरीशस से हुआ है। जिससे हमारा हिंदी साहित्य जगत के पाठक सर्वथा अपरिचित हैं। इस कृति का नाम है- 'संस्कार मंजरी' इस कृति की लेखिका सुचिता रामदीन हैं। यह कृति मॉरीशस के हिन्दू समाज के भोजपुरी संस्कार गीतों का संग्रह है। इस कृति में इनकी बहन मीरा रामदीन ने चित्र भी बनाए हैं। एक और चित्र और एक और गीत लिखा हुआ है। इनकी कृति पढ़ते समय हमें हिंदी की सुप्रसिद्ध गीतिकाव्य लेखिका महादेवी वर्मा की याद आती है। महादेवी वर्मा ने भी अपनी प्रसिद्ध कृति 'यामा' में एक ओर गीत और इसके सामने चित्र अंकित किये हैं। सुचिता रामदीन की कृति 'संस्कार मंजरी' में लगभग दो सौ पैंतीस (२३५) भोजपुरी गीत हैं। यह जन्म से लेकर मृत्यु तक के हिन्दू संस्कारों को प्रस्तुत करने वाला गीत संग्रह है। इस संग्रह का सम्पादन तथा व्याख्या करने वाली लेखिका सुचिता रामदीन स्वयं भोजपुरी भाषी हैं। और उन्होंने अनेक गीतों को गाकर केसेट भी तैयार किए हैं। वे मॉरीशस के महात्मा गाँधी संस्थान के लोक संस्कृति विभाग की अध्यक्ष हैं। और लोक साहित्य के अध्ययन अन्वेषण तथा प्रचार-प्रसार के लिए प्रतिबद्ध हैं। सुचिता रामदीन ने स्वयं अपने विभाग में भोजपुरी-अंग्रेजी-हिंदी त्रिभाषी कोश तैयार करके प्रकाशित भी किया है।

सुचिता रामदीन का 'संस्कार मंजरी' गीतसंग्रह दो खंडों में विभक्त किया गया है। इसके प्रथम खंड में लोक साहित्य, लोकगीत, भोजपुरी भाषा, मॉरीशस में भोजपुरी तथा भोजपुरी साहित्य, संस्कार आदि का विवेचन किया गया है। और इसके दूसरे खंड में सोहर, मुंडन, उपनयन, विवाह तथा मृत्यु संस्कार गीतों के चालीस उपखंड हैं। जिनमें सैकड़ों भोजपुरी लोकगीतों के साथ उनकी टीका एवं व्याख्या दी है। तथा प्रत्येक संस्कार का आरम्भ में विवेचन है। आर्य ग्रंथों में यद्यपि सोलह संस्कारों का विधान है, परन्तु मॉरीशस में जनम, विवाह तथा मृत्यु संस्कार ही प्रधान हैं। और आज भी वहाँ का हिन्दू समाज इन्हें आस्था और निष्ठा के साथ अपनाए हुए है। यद्यपि कुछ समय से कई शिक्षित तथा धनी हिन्दू परिवारों में लोक संस्कारों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। परन्तु नई पीढ़ी की जागरूकता एवं आकर्षण से विश्वास पैदा होता है कि मॉरीशस में हिन्दू संस्कृति, लोक विश्वास, रीतिरिवाज आदि सभी भविष्य में भी समाज के लिए अनिवार्य अंग बने रहेंगे। मॉरीशस

में हिन्दू समाज के अस्तित्व, अस्मिता, को एक सक्रिय शक्ति के रूप में बने रहने के लिए इस संस्कृति का जीवंत रहना आवश्यक हैं।

सुचिता रामदीन ने 'संस्कार मंजरी' पुस्तक में जिन भोजपुरी लोकगीतों का संग्रह किया हैं। वे संवेदना की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इस पुस्तक की पहली बात यह हैं कि ये मौखिक लोकगीत लिपिबद्ध होकर सदैव के लिए सुरक्षित हो गए हैं। मॉरीशस में वृद्ध और वृद्धा निरंतर कम हो रहे हैं, और इसलिए आवश्यक था कि इनके पूर्णतः समाप्त होने से पहले इसके द्वारा गाए जाने वाले लोकगीत रिकार्ड कर लिए जाए। भाषा शास्त्र की दृष्टि से मॉरीशस के इन लोकगीतों का और भी अधिक महत्व है। इन लोकगीतों में भोजपुरी भाषा में फ्रेंच, क्रिओल आदि भाषाओं के शब्दों का भी खूब प्रयोग हुआ है, जिसका अध्ययन रोचक और ज्ञानवर्धक होगा। इन लोकगीतों को ग्रामीण या गँवारू लोगों ने सुरक्षित रखा हैं। परन्तु इनमें साहित्यिकता कम नहीं हैं। इन लोकगीतों के अतिरिक्त जीवन, नारी की स्थिति आदि का जीवंत चित्रण हुआ हैं। अतः इतिहास तथा अपनी भारतीय पहचान बनाए रखने के लिए मॉरीशस के भोजपुरी लोकगीतों का महत्व बहुत अधिक हैं, क्योंकि यही लोक साहित्य प्रवासी भारतीय हिन्दुओं का सबसे अधिक प्रमाणिक एवं जीवंत इतिहास हैं। लेखिका सुचिता रामदीन ने यह कार्य करके एक ऐतिहासिक कार्य किया हैं। और मॉरीशस में भोजपुरी साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान की आधारशिला रख दी हैं। भोजपुरी लोकगीत संग्रह 'संस्कार मंजरी' भारत और मॉरीशस के अटूट रिश्तों को प्रस्तुत करता है और भारतीय लोगों को वह आश्चर्य करता हैं कि मॉरीशस के प्रवासी हिन्दू अपनी भोजपुरी भाषा और संस्कृति के द्वारा अपने देश में सदैव भारत को जीवंत रखेंगे। लेखिका सुचिता रामदीन से यह आशा भी हैं कि वे मॉरीशस के अन्य लोक साहित्य को एकत्रित करके इसी प्रकार प्रस्तुत करती रहेंगी। और भोजपुरी को हिंदी के साथ जोड़कर अपने प्रवासी समाज के विकास के लिए कार्य करती रहेंगी।

लोकगीत का आशय हैं, लोक का गीत। अर्थात् लोक द्वारा गाया जाने वाला गीत। लोकगीत वह गेय गीत हैं, जिससे जन मन का अनुरंजन सदा होता रहता हैं। इन गीतों को स्त्री और पुरुष समान रूप से गाते हैं। इन गीतों में कुछ ऐसे गीत उपलब्ध होते हैं जो केवल स्त्रियों द्वारा ही गाये जाते हैं- जैसे संस्कार विषयक गीत। यहाँ हम सुचिता रामदीन के 'संस्कार मंजरी' में संग्रहीत कुछ लोकगीतों को प्रस्तुत करेंगे। इस पुस्तक में संस्कार-गीतों की ही विशेष चर्चा हुई हैं। संस्कार संबंधों गीतों को छ भागों में विभाजित किया जा सकता हैं- १. सोहर २. मुंडन ३. जनेऊ ४. विवाह ५. गवना ६. मृत्यु। हमारे धर्म शास्त्रियों ने षोडश प्रकार के संस्कारों का उल्लेख किया है। 'संस्कार मंजरी' में संग्रहीत खास प्रसिद्ध लोकगीतों में बालक के मुंडन संस्कार का गीत, कुंआरी द्वारा हल्दी की कामना करने का गीत, पति की प्रतीखा में विरहिणी पत्नी के वर्णन का गीत, पुत्री का राम जैसा वर पाने के लिए पिता से निवेदन का गीत आदि के एक एक उदाहरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

बालक के मुंडन संस्कार का गीत बालक जब बड़ा हो जाता हैं, तब उसका मुंडन संस्कार किया जाता हैं। संस्कृत में इसे जातकर्म कहते हैं। महाकवि कालिदास ने राजा रघु के जातकर्म संस्कार की संवेदना का वर्णन किया हैं, जिसे उन्होंने गोदान विधि कहा है। मॉरीशस के हिन्दू समाज के संस्कार गीतों में इसका विशेष उल्लेख हुआ हैं।

जैसे - " केही जे नाउ बोला वेला केकर मुंडन हो।
दादा त नाउ बोला वेला बबुआ के मुंडन हो॥१॥
कोई है जो उस बारी को बुलाता है जिसकी शेविंग है।
बाबा त बारी बोलावेला बबुआ के मुंडन हो..2..
जिसके मुंडन का बुलावा कोई भेजता है.
चाचा ने बबुआ के मुंडन के लिए निमंत्रण भेजा.
केही जे लोचन भेजावेला केकर मुंडन हो

भैया त लोचन भेजा वेला बबुआ के मुंडन हो॥१४॥ "2

अर्थात् कौन नाई को बुला रहा है? आज किसका मुंडन (संस्कार) है? दादा नाई को बुला रहे हैं, आज बालक का मुंडन है। कौन बारी को बुला रहा है ? आज किसका मुंडन है? पिता बारी को बुला रहे हैं? आज बालक का मुंडन है। कौन न्योता भेज रहा है? आज किसका मुंडन है? चाचा न्योता भेज रहे हैं? आज बालक का मुंडन है। कौन संदेश भेज रहा है? आज किसका मुंडन है? भैया संदेश भेज रहे हैं आज बालक का मुंडन है।

कुँआरी द्वारा हल्दी की कामना करने वाला गीत-

"चौका चढ़ी बईसेला नातिन कुँआरी नातिन"

नातिन कुँआरी हो दादा से कहे लागल

हरदी के मन वा हरदिया के मन बाटे हो॥१॥

दादा काहे रखेल कुँआर हरदिया के मनबा

हरदिया के मन बाटे हो॥ २ ॥

नातिन हरदी के बन बड़ी दूर कोइरिनिया सब जुध करे हो॥३॥ " 3

अर्थात् कुँआरी द्वारा हल्दी की कामना करने वाला गीत है। इसमें एक चौके पर बैठी कुँआरी पोती अपने दादा को कह रही है। दादा, मुझे हल्दी की बड़ी अभिलाषा, अभिलाषा है। है दादा विधि सम्पन्न करवाईए। तब दादा उत्तर देता है कि हे पोती हल्दी का वन बड़ी दूर है, तथा वहीं कोइरी जाति की स्त्रियों में युद्ध छिड़ा हुआ है। यहां पर कुँआरी लड़की की संवेदना का चित्रण किया है। पति की प्रतीक्षा में विरहिणी पत्नी का वर्णन निम्न लिखित गीत में संवेदित किया गया है।

" आइल चंदरमा अकास चढ़ी चमके बलम बिनुनीदी ना आवे

आइल चंदरमा अकारा चमके बलम दिनु नीदो ना आवे

सास ससुर सोवे अपन अटरिया भंसुरवा के नीदी ना आवे ॥१॥

गोतिन के भेजीला भंसुरा ओसरवा देवरवा के नीदो ना आवे

आइल चंदरमा अकास चढ़ी चमके बलम बिनु नीदो ना आवे । २॥

देवर के भेजीला दूधवा कटोरवा ननदिया के नीदो ना आवे

आइल चंदरमा अकास चढ़ी चमके बलम बिनु नीदो ना आवे॥३॥" 4

अर्थात् पति की प्रतीक्षा में विरहिणी पत्नी का वर्णन करने वाला गीत में विरहिणी कहती है कि चन्द्रमा आकाश पर चढ़ आया है, तथा अपनी पूरी चमक पर है। परन्तु मुझे पति के बिना नींद नहीं आती। सास-ससुर अपने शयन कक्ष में सो रहे हैं। परन्तु जेठजी अभी तक जाग रहे हैं। मैं अपनी जेठानी को जैसे तैसे जेठ के पास भेजती हूँ। अब देवर ही कि अभी तक जाग रहे हैं। चंद्रमा आकाश पर चढ़ आया है, तथा अपनी चमक पर है। परन्तु मुझे पति के बिना नींद नहीं आती। यहां पर वियोगी स्त्री की संवेदना को उभारा गया है।

एक अन्य स्थान पर पुत्री का राम जैसा वर पाने के लिए पिता से निवेदन करने वाला गीत-

" हमरो बिआह करीह मोरे बाबा जिनही से होईहें निबाह

हमरो बिआह करीह मोरे बाबा जिनही से होईहें निबाह ॥१॥

पुरुब खोजली बेटी पछिम खोजली मतहु ना मिले सीरीराम

पुरुब खोजली बेटी पछिम खोजली कतहु ना मिले सीरीराम ॥२॥

जाहू जाहू बाबा हो अवध नगरिया जाहू राजा दसरत हुआर

दसरतजी के चार पुतरवा चारों में से एक बलवान ॥३॥

खेलत होईहें सरजू के तीरे हाथ धेनुकवा उठाइ

बहिणं मंदरीका हो गले उदर माला उनकर तिलक चढ़ाइ ॥४॥"5

अर्थात् कोई कन्या अपने पिता से कह रही है कि हे बाबा मेरे लिए ऐसा वर ढूँढना, जिसके साथ मेरा निबाह हो सके। पिताजी ने कहा कि हे बेटी । मैंने तुम्हारे लिए पूरब से लेकर पश्चिम तक अनेक स्थानों में वर ढूँढा, पर कहीं श्री राम जैसा वर न मिला। पुत्री ने उत्तर दिया कि हे पिता। आप अयोध्या नगरी में जाइए, जहाँ राजा दसरथ के चार पुत्र हैं। इन चारों में एक अति वीर और वैभवशाली हैं। आप राजा दसरथ जी के द्वार पर जाइए। कन्या आगे कहती हैं कि हे बाबा! उस वर की पहचान यह हैं कि वे सरयू नदी के किनारे हाथों में धनुष उठाकर खेल रहे होंगे। उनकी ऊँगली में मुद्रिका तथा गले में माला होगी। उन्हीं को आप तिलक चढ़ाइए। इस तरह यहां पर लड़की की संवेदना व्यक्त की गई है जो अपने लिए एक अच्छा वर ढूँढने के लिए पिता से निवेदन करती है ताकि उनका भविष्य सुन्दर ढंग से बीते । क्योंकि उचित वर न मिलने पर लड़कियों का जीवन नरक जैसा बन जाता है ।

निष्कर्ष के रूप में इस शोध आलेख में मॉरीशस की लेखिका सुचिता रामदीन के लोकगीतों में स्त्री की संवेदना को चित्रित किया गया है ।

संदर्भ - संकेत :-

1. भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता, भाग, २. डॉ. सुरेश गौतम. पृ.45
2. शोध समालोचन (त्रैमासिक पत्रिका) सं. डॉ. भारतेन्दु मिश्र . पृ.23
3. भारतीय और प्रवासी हिंदी कथा साहित्य का वर्तमान परिदृश्य, सं. मनप्रीत. पृ.90
4. लोक संस्कृति की रूपरेखा. कृष्णदेव उपाध्याय. पृ.78
5. पंचशील शोध समीक्षा त्रैमासिक पत्रिका सं. डॉ. हेतु भारद्वाज . पृ .56



उषा प्रियंवदा की कहानियों में तात्विक विवेचना

डॉ. धर्मशीला कुमारी*

उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसंबर 1930 को कानपुर में हुआ। उनके पिताजी दामोदर सक्सेना और माताजी प्रियंवदा सक्सेना हैं। पिताजी शहर के मशहूर वकील थे, जबकि माताजी संभ्रांत तथा सुसंस्कृत संस्कारवाली सुशील स्वभाव की स्त्री थी। उन्होंने कानपुर की औद्योगिक नगरी से ही शिक्षा शुरू की थी। वह अमरीका में फुलब्राइट स्कॉलरशिप लेकर शोध करने गईं और वहीं पर प्राध्यापन कार्य शुरू किया, साथ में साहित्य सर्जन से जुड़ गईं। उन्होंने उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में तात्विक विवेचन उनकी कहानियों में सामाजिक, पारिवारिक, और मनोवैज्ञानिक पहलुओं का गहरा चित्रण है। उन्होंने मुख्य रूप से आधुनिक भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति, अकेलेपन, और बदलते सामाजिक मूल्यों को अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में तात्विक विवेचन के मुख्य बिंदु:

सामाजिक यथार्थवाद :-

उषा प्रियंवदा की कहानियों में सामाजिक यथार्थवाद का गहरा प्रभाव है। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जाति, वर्ग, और लिंग आधारित भेदभाव को उजागर किया है।

पारिवारिक विघटन :-

उनकी कहानियों में अक्सर पारिवारिक विघटन और रिश्तों में अलगाव की समस्याएँ दिखाई देती हैं।

नारी विमर्श :-

उषा प्रियंवदा ने नारी विमर्श को अपनी कहानियों में प्रमुखता से उठाया है। उन्होंने महिलाओं के संघर्ष, उनकी इच्छाओं, और उनकी सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला है।

मनोवैज्ञानिक चित्रण :-

उनकी कहानियों में पात्रों के मनोविज्ञान का भी गहरा चित्रण है। उन्होंने पात्रों की भावनाओं, विचारों, और मानसिक उलझनों को बहुत ही बारीकी से उभारा है।

अकेलापन :-

उषा प्रियंवदा की कहानियों में अकेलापन एक महत्वपूर्ण विषय है। उन्होंने शहरों में रहने वाले लोगों के अकेलेपन और अलगाव को चित्रित किया है।

बदलते सामाजिक मूल्य :-

उनकी कहानियों में बदलते सामाजिक मूल्यों और पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव को भी देखा जा सकता है।

वापसी :-

इस कहानी में, गजाधर बाबू सेवानिवृत्ति के बाद अपने परिवार के साथ रहने के लिए शहर जाते हैं, लेकिन वहाँ उन्हें उपेक्षा और अलगाव का सामना करना पड़ता है। यह कहानी पारिवारिक विघटन और बदलते सामाजिक मूल्यों का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

"उषा प्रियंवदा की कहानी सरिता पत्रिका के 1952 के फरवरी अंक में 'अपना-अपना भाग्य', मार्च अंक में 'आश्रिता' और जून के अंक में 'अभाव की आंधियों' प्रकाशित हुईं। सरिता पत्रिका के ही 1953 के जनवरी अंक में 'मान हठ', मार्च के अंक में 'दोस्त', अगस्त में 'बिखरे तिनके', 'नया नीड़' और सितंबर के अंक में 'दोराहा'

* हिंदी विभाग, एस.एन. सिन्हा कॉलेज जहानाबाद मगध यूनिवर्सिटी, बोधगया

कहानी प्रकाशित हुई। सरिता पत्रिका में मार्च 1954 के अंक में 'पूर्ति' और जून अंक में 'नष्ट नीड़' कहानी प्रकाशित हुई। 1955 के फरवरी अंक में 'फिर बसंत आया', 1956 के अक्टूबर अंक में 'मुक्ता और शशि', 1957 के मार्च अंक में 'तूफान के बाद', 1959 के अप्रैल अंक में 'अकेली राह' और जुलाई अंक में 'नई कोपल कहानी' प्रकाशित हुई। धर्मयुग पत्रिका में अक्टूबर 1954 में 'मुक्ति' कहानी प्रकाशित हुई। कल्पना पत्रिका में अंक 55 में 'सुनसान खंडहर', अंक 65 में 'जाले', अंक 76 में 'चहारदीवारी', मोहबंध', अंक 85 में 'पूर्ति', अंक 105 में 'दृष्टि दोष' कहानी आई। 1957 में जानोदय में 'बाजे की धुन', 'मन के तार' और 1959 के जानोदय जुलाई अंक में 'दो अंधेरे' कहानी प्रकाशित हुई। 'कृति' पत्रिका के 1960 के अंक में 'कटीली छाँह' प्रकाशित हुई। 1956 के कहानी पत्रिका में 'पेरंबुलेटर', 'जिंदगी और गुलाब के फूल' कहानी प्रकाशित हुई। धर्मयुग के 1960 के अंक में 'अपराजिता', 1961 में हार, 1962 में 'वनवास', 1963 में 'पिघलती हुई बर्फ', 1964 में 'आत्मपरिचय-कथा दशक', मई 1964 में 'मछलियाँ' कहानी आई। कहानी पत्रिका के 1960 के अंक में 'खुले हुए दरवाजे' कहानी और 1961 में 'झूठा दर्पण', 1962 में 'कोई नहीं' कहानी प्रकाशित हुई। नई कहानियाँ पत्रिका में अगस्त 1961 में 'वापसी', मई 1961 में 'एक कोई दूसरा', मई 1963 में 'एक और विदाई', जून 1965 में 'अध्यापक', जनवरी 1966 में 'स्वीकृति' कहानी, अक्टूबर 1967 में 'कितना बड़ा झूठ' कहानी छपी। जानोदय पत्रिका में दिसंबर 1960 में 'नागफनी के फूल', अप्रैल 1962 में 'केवल इतवार को नहीं', जनवरी 1963 में 'सागर पार का संगीत' कहानी प्रकाशित हुई। अणिमा के अक्टूबर अंक में 'ट्रिप' कहानी तथा सारिका के 1969 अंक में 'प्रतिध्वनियाँ', 1971 में 'संबंध', 1984 में 'आधा शहर' और 1989 में 'प्रसंग' कहानी प्रकाशित हुई। नई घाटी पत्रिका में 1966 में 'नदी' कहानी प्रकाशित हुई। बाद में इनके पाँच कहानी संग्रह आए जो उपर्युक्त में वर्णित हैं।¹

इन कहानियों में आर्थिक घरातल पर पारिवारिक संबंधों की स्थितियों- परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण अंकित किया गया है। नारी में आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने पर बहुत परिवर्तन आया है। कभी संयुक्त परिवार की चली आ रही परंपरा और वर्तमान युग में एकल परिवार की अवधारणा में द्वन्द्व भी दिखाई पड़ता है। एकल परिवार, संयुक्त परिवार के सामने बौना साबित होने लगता है। 'वापसी' कहानी इसी का दृष्टांत है, जहाँ गजाधर बाबू को वापस अपनी दुनिया में जाना पड़ता है। उन्हें उनके बच्चे-पत्नी स्वीकार नहीं कर पाते। कभी कुछ कहानियों में निम्न परिवार के भाई बहनों को दोती हुई एक लड़की की भी कहानी है, जो 'कच्चे धागे में कुंतल अपने पड़ोस के संपन्न परिवार में जन्में लड़के के साथ विवाह की आकांक्षी है। उसके लिए वह सपने देखती है, लेकिन यह संभव नहीं हो पाता, क्योंकि लड़के की बहन उस विवाह प्रस्ताव को ही खारिज कर देती है, जिसे कुंतल ने कभी सपने में देखा था। आधुनिक युवा और युवतियों के स्वच्छंद और स्वतंत्र जीवन को लेकर 'जाले' कहानी लिखी है। जिसमें कौमुदी और राजवर अपना स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं। भले ही विवाहित जीवन क्षणिक आनंद दिलाए लेकिन परिवार या समाज से कट कर और स्वच्छंद रूप से दीर्घ आनंद की प्राप्ति नहीं दिला सकता।

कभी-कभी दाम्पत्य जीवन में जो समस्याएं आ खड़ी होती हैं उसके मूल में पति-पत्नी के विचार या सिद्धांत ही होते हैं, जिसे 'नई कॉपल' कहानी में उषा प्रियंवदा ने व्यक्त किया है। यों तो उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में भारतीय प्रवासी महिलाओं की पृष्ठभूमि ज्यादा है, कमोबेश सभी उपन्यास में अमेरिका में रह रहे अप्रवासी भारतीय स्त्रियों का चरित्र और कैंसर के रोगों का जिन्न है; वहीं इनकी कहानियों में प्रवासियों के बजाय भारत में ही रह रहे छोटे मध्यम वर्ग के पात्रों को लेकर नई कथावस्तु की प्रस्तुति भी है। चाहे वह 'मान और हठ' कहानी हो अथवा 'तूफान के बाद', 'पूर्ति' कहानी हो या 'मोहबंध' क्योंकि मोहबंध कहानी में अचला और नीलू आपस में सहेलियाँ हैं। एक स्वतंत्र और स्वच्छंद उदान की आकांक्षी है, दूसरी रुढ़ियों में जकड़े रहने की आकांक्षी। यानी यहाँ पर नारी ही नारी के विरुद्ध दिखाई पड़ती है। तूफान के बाद की कहानियों में आधुनिकता

और प्राचीन सामाजिक रीतियों, रुढ़ियों-परंपराओं आदि का वर्णन है। उषाने मानवीय संबंधों में आ रहे उतार-चढ़ाव जीवन के विविध प्रसंगों और जीवन अनुभवों को अपनी कहानियों में पर्याप्त स्थान दिया है।

हम कह सकते हैं कि उषा जी ने जीवन के हर विषय को लेकर रचनाएँ की हैं। -"पैरम्बुलेटर' ऐसी माँ की कहानी है, जो अपनी पहली संतान की मृत्यु के पश्चात् भी पैरम्बुलेटर संभाल कर रखती है। इसी आशा में कि वह अपनी दूसरी संतान को इसी में घुमाएगी, परंतु आठ साल बाद जब कालिंदी को पुत्र होता है, तब उसे अपने पुत्र को बचाने के लिए वह 'पैरम्बुलेटर' बेचना पड़ता है। इस कहानी में लेखिका ने एक मां के मन की भावनाओं को बड़े ही हृदयात्मक ढंग से उभारा है।"²

निष्कर्ष:

उषा प्रियंवदा की कहानियों में तात्विक विवेचन आधुनिक भारतीय समाज के जटिल पहलुओं को उजागर करता है। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक, पारिवारिक, और मनोवैज्ञानिक मुद्दों को गहराई से चित्रित किया है, जिससे उनकी कहानियाँ आज भी बहुत ही महत्वपूर्ण प्रासंगिक भूमिका निभा रही हैं। मैंने इस शोध आलेख में उनकी कहानियों का तात्विक विवेचन किया है।

संदर्भ - संकेत :-

1. स्त्री विमर्श और उषा प्रियंवदा का कथा साहित्य. डा. लवीना निनामा. शुभम पब्लिकेशन, कानपुर. 2019. पृ.36
2. वही . पृ.23 - 34



श्री. अरविन्द का जीवन दर्शन भाषा कर्म, कर्मफल तथा कला की प्रासंगिकता

डॉ. अमित कुमार गुप्ता*

श्री.अरविन्द असाधारण रूप से गम्भीर व्यक्ति थे। अपने विद्यार्थी- जीवन में बड़े अध्ययनशील रहे। जब वे २१ वर्ष की अवस्था में शिक्षा समाप्त करके इंग्लैंड से लौटे, तब वे ग्रीक और लेटिन के विद्वान् थे, अंग्रेजी साहित्य के अधिकृत पंडित तथा जर्मन, फ्रेंच और इटालियन साहित्यों के अच्छे जानकार प्रवास के कुछ एक अन्तिम वर्षों में वस्तुतः वे अपनी पढ़ाई के विषयों की उपेक्षा करके यूरोपीय सभ्यता, संस्कृति और विकास को समझने के लिए अन्य विषयों को स्वतन्त्र रूप में पढ़ते रहे। भारत में लौटने के बाद उन्हें भारतीय संस्कृति के मर्म को जानने की प्रबल इच्छा हुई और इसके लिए उन्होंने संस्कृत सीखी और संस्कृत-साहित्य पढ़ा। उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय जीवन का आधारभूत सत्य तथा उच्च- तम ध्येय आध्यात्मिक रहा है। संयोगवश उन्हें एक योगी में आध्यात्मिक तत्व की विशेषता तथा उसकी विलक्षण शक्ति देखने का अवसर भी मिला। उन्हें विश्वास हो गया कि आत्म-तत्त्व ही सत्ता का आलोकिक तत्व है, वस्तुओं और घटनाओं का आधार है और इसे जानने, अनुभव करने, इस पर अधिकार प्राप्त करने की उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर प्रबल होती गई। वे शुरू से ही गंभीर, चिंतन मनन शील थे, सार तत्व के जिज्ञासु थे। कर्म-सिद्धांत वास्तव में मानव-जीवन के क्षेत्र में कार्य-कारण के नियम को लागू करता है और यह दिखला देता है कि यदि भौतिक प्रकृति में नियम है तो मानव-जीवन भी उच्छृंखल नहीं, यहां भी नियम काम करता है। परन्तु मानव जीवन में भी यह प्रकृति के क्षेत्र में ही-शरीर, प्राण और मन के व्यवहार में लागू है; अंतरात्मा इनसे उच्चतर अस्तित्व है और वह स्वतन्त्र कर्मों को कर सकती है। साधारणतया हम कर्म-सिद्धांत को संपूर्ण मानवीय व्यक्तित्व पर लागू कर देते हैं। परन्तु यह भूल है। अन्तरात्मा अनुमंता है, यह अपनी अनुमति देकर अथवा उसे रोककर पुराने कर्मों के प्रभाव से व्यक्तित्व को मुक्त कर सकती है तथा नये कर्मों को सृष्ट कर सकती है। श्री.अरविन्द कहते हैं कि सामान्य जीवन साधारणतया मानव के पूर्वकर्मों और उनके संस्कारों से प्रचालित होता है, परन्तु जब वह योगमार्ग में आ जाता है और आत्मानुभव से प्रेरणा प्राप्त करने लगता है तब कर्मों के संस्कार उसके व्यवहार को निर्धारित करने में सफल नहीं हो सकते। तब वह कर्म के चक्कर से बाहर निकल जाता है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र भी, जो कि पूर्वकर्मों के बल पर ही भावी को बतलाता है, यह स्वीकार करता है कि भावी को बदला भी जा सकता है।

कर्म आधारित पुनर्जन्म का प्रश्न लोक-लोकान्तरों के प्रश्न से भी सम्बद्ध है। क्या यह पृथ्वी ही एकमात्र लोक है? अथवा इसके अतिरिक्त कोई और लोक भी है, जहां मानव अपने विकासक्रम में जाकर निवास करता है? प्राचीन धर्मों में स्वर्ग और नरक तथा अन्य लोकों का जिक्र आता है, परन्तु आधुनिक बौद्धिक युग ने उनका खंडन कर उन्हें काल्पनिक बता दिया है। परन्तु सत्ता के जिन स्तरों की हम पहले चर्चा कर चुके हैं, वे यदि सत्य हैं, तब जैसे यह पृथ्वी मुख्य रूप में जड़ तत्व का लोक है, इसी प्रकार प्राण, मन आदि स्तरों के भी अपने-अपने लोक होने चाहिए। इसके अतिरिक्त जब व्यक्ति अपने बहिर्मुख और स्थूल भाव से तटस्थ होकर व्यक्तित्व और सत्ता के सूक्ष्मतर तथ्यों को जानने का यत्न करता है, तो वह प्राण, मन, अंतरात्मा आदि के अपने-अपने स्वतन्त्र लोकों और उनमें बसनेवाले जीवों का अनुभव प्राप्त करता है। ये लोक परस्पर-सम्बद्ध हैं और इसलिए इन सबका प्रभाव यहां पृथ्वी पर अनुभव किया जा सकता है। मृत आत्माओं के लोक की चर्चा

* हिंदी विभाग, अतिथि व्याख्याता, स्व. लाल श्याम शाह शासकीय नवीन महाविद्यालय मोहला, मानपुर, अंबागढ़ चौकी छत्तीसगढ़।

आज पश्चिमी विज्ञान भी करता है। पुराने स्वर्ग और नरक प्राणलोक के विभिन्न क्षेत्र ही प्रतीत होते हैं, जहां या तो अपार इन्द्रिय-सुख हैं या असह्य शारीरिक यातनाएं।

कर्म में दर्शन :-

"कर्म के अन्दर सभी प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं, कर्म है वह कार्य, जो किसी निश्चित उद्देश्य की ओर प्रयुक्त होता है और विधिवत तथा नियमित रूप से किया जाता है।"¹

"कर्म के बिना पुनर्जन्म अर्थहीन है और कर्म यदि अंतरात्मा के अविच्छिन्न अनुभव के सिलसिले के लिए उपकरण न हो तो कर्म के लिए न तो अनिवार्य उत्पत्ति का कोई उत्साह रह जाता है, न नैतिक तथा युक्तिसंगत आधार ही।"²

कर्म केवल कर्म के लिए नहीं है, बल्कि वह निम्नतर व्यक्तित्व और उसकी प्रतिक्रियाओं से छुटकारा पाने तथा भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण साबित करने के लिए साधना का एक क्षेत्र है। "स्वयं कर्म का जहां तक प्रश्न है, वह माताजी द्वारा निश्चित या स्वीकृत व्यवस्था के अनुसार ही किया जाना चाहिए। तुम्हें यह सर्वदा याद रखना चाहिए कि वह माताजी का कार्य है, तुम्हारा व्यक्तिगत कार्य नहीं है।"³

कर्म दो प्रकार का हो सकता है- " एक वह कर्म जो साधना के लिए प्रयोग का क्षेत्र है, जिसमें समस्त सत्ता और उसके कर्म क्रम से अधिकाधिक सामंजस्य को प्राप्त हों और दिव्य वरों, और दूसरा वह कर्म जो भगवान की सिद्ध अभिव्यक्ति है। इस पिछले कर्म का समय तो तभी आ सकता है, जब भगवत्- साक्षात्कार पूर्णतया पार्थिव चैतन्य में आ जाए, तब तक जो भी कर्म होगा, वह प्रयत्न और प्रयोग का ही क्षेत्र होगा।"⁴

कर्म में दर्शन का अनुभव करते हुए श्री अरविंद ने कहा है - "कर्म भी योग का अंग है और यह प्राण तथा उसकी क्रियाओं के अन्दर भागवत उपस्थिति, ज्योति और शक्ति को उतार लाने का सबसे उत्तम सुयोग प्रदान करता है; यह आत्मसमर्पण क्षेत्र और सुअवसर को भी बढ़ाता है।"⁵

कर्म से श्री अरविंद का अभिप्राय वह कर्म नहीं है, जो अहंता और अज्ञानता से, अहंता की तुष्टि के लिए और राजसी कामना के आवेश में किया जाता है। अहंकार रजस और काम अज्ञान की मुहर छाप है, इससे विमुक्त होने की इच्छा के बिना कर्मयोग हो ही नहीं सकता।

कर्म से मेरा अभिप्राय वह कर्म है, जो भगवान के लिए किया जाए, भगवान से अधिकाधिक युक्त होकर किया जाए- एक- मात्र भगवान के लिए किया जाए और किसी चीज के लिए नहीं है। अवश्य ही आरम्भ में यह सहज नहीं है। जैसे गंभीर ध्यान और ज्योतिर्मय ज्ञान या सच्चा प्रेम और भक्ति भी आरम्भ में सहज नहीं हैं। परन्तु ध्यान, ज्ञान, प्रेम, भक्ति की तरह कर्म भी यथाथत् सदभाव और सदवृत्ति तथा यथार्थ संकल्प के साथ आरम्भ होना चाहिए। तब वाकी सब अपने आप होगा। कर्म ही शरीर धारण करता है, कर्म ही सतत परिवर्तनशील मनोवृत्ति और भौतिक शरीरों की सृष्टि करता है, जो हम मान सकते हैं, विचारों और संवेदनों के उस परिवर्तनशील सम्मिश्रण का परिणाम है, जिसे हम 'हम' कहते हैं। काम को छोड़ना कोई समाधान नहीं है- सच पूछो तो कर्म के द्वारा ही मनुष्य यौगिक आदर्श के विरोधी, अहंभाव के अनु- भवों और गतिविधियों को पहचान सकता है और धीरे-धीरे उनसे मुक्त हो सकता है। कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप चित्त में विरोध भावना प्रबल हो जाए।

"जो काम मनुष्य करता है उनमें न तो कोई ऊंचा है, न कोई नीचा, सभी कर्म एक जैसे हैं बशर्त कि वे माताजी को अर्पित हों और उनके लिए तथा उनकी शक्ति के द्वारा किए गए हों।"⁶

निस्संदेह बड़ेपन और छोटेपन की भावना आध्यात्मिक सत्य के लिए एकदम विजातीय है। आध्यात्मिक दृष्टि से न तो कोई चीज बड़ी है और न छोटी। ऐसी भावनाएं साहित्यिक लोगों की भावनाओं की जैसी हैं जो यह समझते हैं कि "कविता लिखना एक उच्च कार्य है और जूता बनाना या भोजन पकाना छोटा और नीच कार्य, परन्तु सब कुछ परमात्मा की दृष्टि में एक जैसा है और वास्तव में केवल उस आंतरिक भावना का ही मूल्य है

जिसके साथ कार्य किया जाता है। यही बात किसी विशेष कर्म के विषय में भी लागू होती है, सच पूछा जाए तो कोई भी चीज बड़ी या छोटी नहीं है।⁷

"मनुष्य के प्रत्येक कार्य और उक्ति का उद्देश्य और कारण पूर्णतया समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि किस अवस्था में वह कार्य किया गया था या वह उक्ति व्यक्त हुई थी।"⁸

वर्तमान कर्म का स्वरूप अपरिमेय महत्व रखता है, क्योंकि यह हमारे निकट भविष्य ही को नहीं बल्कि दूर भविष्य को भी निर्धारित करता है।

कर्मफल -

अभी हम जो कार्य करते हैं। उनका अधिक महत्व होता है। हमारे द्वारा वर्तमान समय में किया गया कार्य हमारा भविष्य बनाता है। हमें अतीत के कार्यों को, प्रसंगों को, घटनाओं को लेकर ज्यादा चिंतित नहीं होना चाहिए। वर्तमान कार्य के दर्शन को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना चाहिए। इस बात को श्री अरविंद ने इस तरह चित्रित किया है - " यह विचार कि हमारे वर्तमान दुःख और कष्ट हमारे अपने अतीत कर्म के ही फल हैं, भारतीय मन को एक ऐसी शांति, सहिष्णुता और नीति प्रदान करता है, जिन्हें समझना या सहन करना चंचल पश्चिमी बुद्धि को कठिन प्रतीत होता है। "⁹

मृत्यु के बाद अंतरात्मा अपने सूक्ष्म शरीर-सहित, जो कि शरीर; प्राण और मन के सूक्ष्म तत्वों का बना होता है, कुछ समय के लिए अंतरात्मा के लोक में विश्राम करती है। यहां वह विगत जीवन के अनुभवों को पचाती और नये व्यक्तित्व की रूपरेखा निर्धारित करती है। इस बीच में वह विशेष आकर्षण के कारण प्राणलोक में भी जा सकती है। कम-से-कम मृत्यु के बाद उसे प्राणलोक में से गुजरना जरूर होता है; और यदि उसकी प्राणिक तृष्णाएं प्रबल हैं तो वह समय उसके लिए काफी भय और संकट का होता है। पुनर्जन्म के विस्तारपूर्ण वर्णन के लिए इन लोकों का विवरण काफी विशद होना चाहिए। परन्तु हमने यहां इस विषय का उल्लेख मात्र ही किया है।

कला -

अपनी प्राचीन कला का सही मूल्य आंकने के लिए हमें विदेशी दृष्टिकोण की समस्त दासता से अपने आपको मुक्त करना होगा और हमें अपनी भास्कर कला एवं चित्रकला को उसके अपने गंभीर उद्देश्य एवं उसके मूलभाव की महानता के प्रकाश में देखना होगा। जब हम उस पर इस प्रकार दृष्टि डालेंगे तब हम यह देख पाएंगे कि प्राचीन और मध्ययुगीन भारत की मूर्तिकला कलात्मक उपलब्धि के अति उच्चतम स्तरों पर स्थान पाने का दावा करती है। प्रत्येक ढंग की कला के अपने आदर्श, अपनी परम्पराएं और स्वीकृत प्रथाएं होती हैं; क्योंकि सर्जनशील आत्मा के विचार और रूप अनेक होते हैं, यद्यपि अंतिम आधार एक ही होता है।

विभिन्न कलाओं में वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला वे तीन महान् कलाएं हैं जो आंख के द्वारा आत्मा को आकर्षित करती हैं, और इस-लिए ये वे चीजें भी हैं जिनमें 'गोचर' और 'अगोचर' अपने ऊपर अधिकतम बल देते हुए भी एक-दूसरे की अत्यधिक आव- श्यकता अनुभव करते हुए परस्पर संयुक्त होते हैं।

कवि :-

कवि से आशा की जाती है कि वह अपनी कला के विषय में पूर्णतया सचेत हो, इसके आवश्यक नियमों तथा स्थिर एवं निश्चित मानदंड और प्रणाली से उतनी ही बारीकी के साथ परिचित हो जितनी बारीकी के साथ चित्रकार और मूर्तिकार होता है और अपनी आलोचक बुद्धि एवं ज्ञान के द्वारा अपनी प्रतिभा की उड़ान को नियंत्रित करे।

कष्ट-

यदि हममें अखंड सत् पुरुष की ज्योतिर्मयी चेतना एवं दिव्य शक्ति संपूर्ण रूप से विद्यमान हो तो कष्ट और वेदना का हममें अस्तित्व नहीं रह जाएगा। विपदा और कष्ट को प्रायः पाप के दंड की अपेक्षा पुण्य का

पुरस्कार माना जा सकता है, क्योंकि अपने प्रस्फुटन के लिए संघर्ष करने वाले अंतरात्मा का वह सबसे बड़ा सहायक और शोधक सिद्ध होता है।

कर्म को गतिशील रखनेवाली चालिका शक्ति है। कामनाएं भी बाहर से आती हैं, अवचेतन प्राण में प्रवेश करती और फिर ऊपरी तल पर आ जाती हैं। जब वे ऊपरी तल पर प्रकट होती हैं और मन उनके विषय में सजान होता है केवल तभी हम कामना के विषय में सचेतन होते हैं। वह हमारी अपनी चीज इसलिए प्रतीत होती है कि हम उसे इस प्रकार प्राण से मन में उठती हुई अनुभव करते हैं और यह नहीं जानते कि वह बाहर से आई है। जो चीज प्राण की, हमारी सत्ता की होती है, जो चीज उसे उत्तरदायी बनाती है वह स्वयं कामना नहीं होती, बल्कि वह है उन लहरों या सुझावों की धारा को प्रत्युत्तर देने की आदत जो उस (प्राण या सत्ता) में वैश्व प्रकृति से आती है।

कामना एक मनोवैज्ञानिक क्रिया है, और यह अपने को 'सच्ची आवश्यकता' के साथ तथा अन्य ऐसी वस्तुओं के साथ जोड़ सकती है, जो वस्तुतः सच्ची आवश्यकताएं न हों। व्यक्ति को उसकी अभीप्सा तथा अनुभूति के प्रति इन्हें वास्तविक तथा अपरिहार्य बना देते हैं।

ऋषि उस व्यक्ति को कहते हैं जो उच्चतर आध्यात्मिक अनुभव और ज्ञान से सम्पन्न होता था और जो चाहे किसी भी वर्ग में क्यों न उत्पन्न हुआ हो पर अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के बल पर सभी लोगों पर प्रभुत्व रखता था। राजा भी उसका सम्मान करता था, उससे परामर्श करता था। कभी-कभी वह राजा का धर्मगुरु भी होता था और सामाजिक विकास की तत्कालीन तरल अवस्था में केवल वही नये आधारभूत विचारों को विकसित करने तथा लोगों की सामाजिक धार्मिक धारणाओं और प्रथाओं में सीधे और तुरन्त परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भाग लेने की सामर्थ्य रखता था।

एकता :-

श्री अरविंद को एकता में भी दर्शन का अनुभव होता है। समाज में धर्म, जाती या संप्रदाय के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। सबको मिल जुलकर रहने का पूरा प्रयास करना चाहिए। यदि विभिन्नता जीवन की शक्ति और विपुलता के लिए आवश्यक है तो एकता भी उसकी व्यवस्था, क्रमबद्धता और सुस्थिरता के लिए जरूरी है! एकता तो हमें उत्पन्न करनी पर एकरूपता उत्पन्न करना उतना आवश्यक नहीं।

समस्वरता या एकता अपने समय में आ सकती है, पर व एक ऐसी मूलगत एकता होनी चाहिए, जिसमें विविधतापू विकास के लिए पूरी स्वाधीनता हो, वह एक का दूसरे के द्वा भक्षण या फिर एक असंगत एवं बेसुरा मिश्रण नहीं होना चाहिए। कर्म, कला तथा कामना में श्री अरविंद ने दर्शन को ढूंढने का प्रयास किया है। जो बहुत ही प्रशंसनीय है।

संदर्भ - सूची :-

1. श्री अरविंद के पत्र . दूसरा भाग .p.174
2. पुनर्जन्म और क्रम विकास .p.102
3. श्री माताजी के विषय में . श्री अरविंद.p.181
4. श्री अरविंद के पत्र .दूसरा भाग .p.29
5. श्री माताजी के विषय में .p.169
6. वही .p.168
7. श्री अरविंद के पत्र दूसरा भाग .p.176
8. बंगला रचनाएं . श्री अरविंद.p.85
9. भारतीय संस्कृति के आधार . श्री अरविंद.97



वैदिक युग में नारी शिक्षा के लिए सामाजिक बाधाएँ और उनके समाधान

डॉ० अशोक कुमार सिंह कुशवाहा*

सारांश

वैदिक युग को हम भारतीय इतिहास का वो दौर कह सकते हैं, जहाँ नारी को केवल सम्मान ही नहीं, बल्कि शिक्षा में भी बराबरी का दर्जा भी मिला था। उस वक्त की कुछ विदुषियां न केवल वेदों की ज्ञाता थीं बल्कि समाज में विचारशील नेतृत्व भी करती थीं लेकिन वक्त के साथ सब कुछ एक जैसा नहीं रहा और समाज में धीरे-धीरे कुछ ऐसी परंपराएँ और विचार स्थापित हो गए जिन्होंने महिलाओं के लिए पढ़ाई-लिखाई को कठिन बना दिया; जैसे कि बाल विवाह, वर्णगत एवं जातिगत भेदभाव, धार्मिक सीमाएँ और पितृसत्ता आदि। इस शोध का उद्देश्य यह जानना है कि इन सामाजिक रुकावटों की असली वजहें क्या थीं और हमारे ऋषि-मुनियों ने किस तरह से कुछ समाधान भी सुझाए थे। इस अध्ययन में शोध विधि के रूप में ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्द : वैदिक युग, नारी शिक्षा, सामाजिक बाधाएँ, बाल विवाह, सामाजिक रीतियाँ।

प्रस्तावना

“नारी तू नारायणी” ये पंक्ति यूँ तो आज भी कहीं-कहीं सुनने को मिलती है, पर अगर हम सच में जानना चाहें कि इतिहास के पन्नों में नारी को समाज में क्या स्थान मिला था, तो हमें वैदिक युग की तरफ़ देखना पड़ेगा। वैदिक काल कोई साधारण समय नहीं था, बल्कि वो समय था जब ज्ञान का मतलब था जीवन की सार्थकता हुआ करती थी और शिक्षा केवल पुरुषों तक सीमित नहीं थी अपितु स्त्रियाँ भी उस मार्ग पर कदम से कदम मिलाकर चल सकती थी और चलती भी थीं। लेकिन हर युग एक जैसा कहाँ रहता है। समय बदला, सोच बदली और समाज में कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ बन गईं जिन्होंने धीरे-धीरे नारी शिक्षा को सीमित करना शुरू कर दिया। बाल विवाह, जात-पाँत का भेदभाव, पर्दा प्रथा और बढ़ती पितृसत्ता जैसी बातें स्त्रियों को घर की चारदीवारी में समेट लाईं। पढ़ाई-लिखाई अब उनके लिए प्राथमिकता में नहीं रही। हम सबको पता है कि ये बदलाव अचानक नहीं आया, ये तो धीरे-धीरे सोच में बैठाया गया कि ‘औरत का काम तो घर देखना है, वेद-वेदांत नहीं।’ हां, ऐसा बिल्कुल नहीं है कि पूरे वैदिक युग में अंधेरा ही रहा हो। कुछ आशाएँ थीं, कुछ रोशनी की किरणें भी। कुछ क्षेत्रों में महिलाएं अब भी शिक्षित होती रहीं, कुछ ऋषियों ने भी इसका समर्थन किया। गुरुकुलों में स्त्रियों का प्रवेश हुआ, और कुछ ऋषिकाएँ समाज में अपनी पहचान बनाए रख सकीं। मतलब ये कि रुकावटों के बावजूद भी कोशिशें होती रहीं।

इस शोध का मकसद उन सामाजिक बाधाओं को समझना है जो नारी शिक्षा के मार्ग में रुकावट बनीं। और साथ ही ये भी जानना कि हमारे पूर्वजों ने, हमारे शास्त्रों ने क्या समाधान सुझाए थे। क्योंकि अगर आज हम लैंगिक समानता की बात कर रहे हैं, शिक्षा को हर एक के लिए अधिकार मानते हैं, तो हमें अपने अतीत को जानना जरूरी है। ये जानना जरूरी है कि हमने कहाँ से शुरुआत की थी और कहाँ आ पहुँचे हैं। दरअसल ये विषय सिर्फ अतीत की बात नहीं करता, ये आज के समाज को भी आइना दिखाता है। सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हम सच में उस ‘समानता’ तक पहुँच पाए हैं, जिसकी झलक ऋग्वैदिक युग में थी? या हम अब भी

* असिस्टेंट प्रोफेसर (बी. एड.), कौशिल्या पी. जी. कॉलेज, दिलावरपुर, मड़ियाहूँ, जौनपुर।

Email: ashok20586@gmail.com

कहीं न कहीं उन पुरानी बाधाओं से घिरे हुए हैं जिन्होंने उत्तरवैदिक काल में समाज को ग्रसित कर लिया था। शोध के ज़रिए यही कोशिश होगी कि हम वैदिक युग की उस तस्वीर को देखें जिसमें नारी शिक्षा बेहतर थी और फिर समझें कि वो तस्वीर धुंधली कैसे हुई। साथ ही इस अध्ययन में यह भी खोजने का प्रयास किया गया है कि उस धुंध को हटाने के लिए किन रास्तों पर चलना शुरू किया गया था? और क्या आज हम उन रास्तों को फिर से अपनाकर आगे बढ़ सकते हैं?

अध्ययन के उद्देश्य

- वैदिक युग में नारी की स्थिति तथा नारी शिक्षा की प्रकृति और स्वरूप का अध्ययन करना।
- नारी शिक्षा के अवरोधों के सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक कारणों का अध्ययन करना।
- वैदिक युग में नारी शिक्षा को सुदृढ़ करने हेतु किए गए प्रयासों का अध्ययन करना।
- वर्तमान समय में वैदिक कालीन नारी शिक्षा की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

वैदिक युग में नारी की स्थिति तथा नारी शिक्षा की प्रकृति और स्वरूप

वैदिक युग में नारी को सिर्फ घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं किया गया था, उस दौर में महिलाएँ सिर्फ भोजन बनाना या मात्र घर सँभालने भर का काम नहीं करती थीं बल्कि ज्ञान और विचारों के क्षेत्र में भी बराबरी से खड़ी होती थीं। सोचिए, जब गार्गी जैसे स्त्रियाँ राजा जनक की सभा में ब्रह्मज्ञान पर शास्त्रार्थ करती थीं, तब समाज में नारी की स्थिति कितनी सशक्त रही होगी। और हाँ, ये कोई एक-दो उदाहरण नहीं हैं, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला आदि ये सभी नाम इस बात का प्रमाण हैं कि वैदिक युग की महिलाएँ शिक्षित थीं, आत्मविश्वासी भी और बहुत कुछ जानने-समझने वाली थीं। हाँ ये बात और है कि बदलती परिस्थितियों ने इस उच्चता एवं समानता को धूमिल करने को कोई कसर नहीं छोड़ा। डॉ. कमलेश के अनुसार, “वेदों में नारी की शिक्षा, शील, गुण, कर्तव्य और अधिकारों का विशद वर्णन है। इस प्रकार का वर्णन संभवतः संसार के किसी भी धर्मग्रंथ में नहीं है। चारों वेदों में सैकड़ों नारी विषयक मंत्र दिए गए हैं। जिनसे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में नारी का समाज में विशेष स्थान था”।¹

तत्कालीन समय में शिक्षा को श्रुति के माध्यम से आगे बढ़ाने की परम्परा थी किन्तु इसके बावजूद भी शिक्षा का मतलब तब सिर्फ रटना या पढ़ लेना नहीं था। असल में, तब शिक्षा का उद्देश्य था आत्मा की पहचान और जीवन का मर्म समझना। उस समय महिलायें भी वेद, उपनिषद, व्याकरण, चिकित्सा, यहां तक कि युद्धकला जैसी की शिक्षा प्राप्त कर सकती थी और करती भी थी, उन्हें गुरुकुलों में जाकर अध्ययन करने का भी अधिकार था यद्यपि कुछ विद्वान यह मानते हैं कि केवल बड़े घर की स्त्रियों को ही ये सम्स्त अधिकार प्राप्त थे अर्थात् एक सच्चाई ये भी है कि समाज के हर वर्ग की स्त्रियाँ इतनी पढ़ी-लिखी हों, ये ज़रूरी नहीं था। ज्यादातर उच्च वर्ग में ही शिक्षा का अधिक चलन था। कुल मिलाकर कहें तो ऋग्वैदिक युग की नारी न सिर्फ शिक्षित थी, बल्कि समाज में उसकी भूमिका सम्मानजनक भी थी, जिसमें उत्तर वैदिक काल में गिरावट दर्ज की गयी। आज जब हम “नारी सशक्तिकरण” की बातें करते हैं, तो लगता है कि असल में हम अपने ही अतीत से प्रेरणा ले रहे हैं। उत्तर वैदिक काल के बाद स्त्री शिक्षा में सतत गिरावट देखने को मिलती है। “मनुस्मृति के युग में, यौवन से पहले विवाह में वृद्धि हुई, महिलाओं पर मातृत्व थोपा गया, विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी, और समाज में सती प्रथा (विधवा को जलाने) का प्रचलन बढ़ गया। सरल शब्दों में इस प्रणाली में मूल रूप से लड़कियों को शादी करने, बच्चे पैदा करने की आवश्यकता होती थी, और यदि उनके पति की मृत्यु हो जाती है तो उनका पृथ्वी पर रहना भी समाप्त हो जाता था। महिलाओं ने अपनी व्यक्तिगत पहचान खो दी। उनकी पहचान केवल पुरुषों के संबंध में निर्धारित होती है। सती प्रथा ने इस विचार को मजबूत किया कि पुरुष नियंत्रण में थे, क्योंकि पुरुषों के लिए ऐसी कोई प्रथा मौजूद नहीं थी। कुछ लोग तर्क देते हैं कि सती “स्वैच्छिक” थी, लेकिन फिर भी हमें महिलाओं के प्रति समाज की शत्रुता पर सवाल उठाना चाहिए”।²

नारी शिक्षा के अवरोधों के सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक कारण

नारी शिक्षा के रास्ते में जो रुकावटें आईं, वो बस एक या दो वजहों से नहीं थीं, बल्कि समाज, धर्म और सोच तीनों ही इसमें जिम्मेदार रहे। सबसे पहले बात करें समाज की, तो हमारे यहाँ बहुत पहले से ही एक पितृसत्तात्मक ढांचा रहा है। मतलब, घर और बाहर दोनों जगह फैसले ज्यादातर पुरुषों के हाथ में रहे। और इसी कारण ये धारणा बनने लगी कि लड़कियाँ पढ़-लिख कर क्या ही करेंगी? उनका काम तो बस रसोई, बच्चे और सास-श्वसुर की सेवा तक ही सीमित होना चाहिए। अब इसमें कोई कितनी पढ़ाई कर भी ले, समाज पूछता था कि "क्या फायदा?" फिर धार्मिक पक्ष भी रहा इसमें। असल में, वैदिक युग में तो स्त्रियाँ पढ़ती थीं, विदुषी होती थीं ये बात ग्रंथों में मिलती है लेकिन जैसे-जैसे समय बीता, कुछ समाज के ठेकेदारों ने धर्म की ऐसी व्याख्याएँ गढ़ीं कि स्त्री को ज्ञान पाने से ही दूर किया जाने लगा। कह दिया गया कि अगर औरत ज्यादा जान जाएगी तो वे मर्यादा से बाहर चली जाएगी या फिर घर टूटेगा। अब इसमें कितनी सच्चाई है? यह विचारणीय प्रश्न है। **गहलौत, कविता रानी** के अनुसार, "दूसरी सदी ई०पू० तक स्त्री का उपनयन व्यवहारतः बन्द हो चुका था तथा विवाह के अवसर पर ही उसका उपनयन संस्कार सम्पन्न कर दिया जाता था। कालांतर से शूद्रों की ही तरह वेदों के पठन-पाठन और यज्ञों में सम्मिलित होने के अधिकार से वह वंचित कर दी गई तथा शिक्षण संस्थानों और गुरुकुलों में जाकर ज्ञान प्राप्त करना कन्या के लिए अतीत की बात हो गई थी"।³ **कुमारी, डॉ. वंदना** के अनुसार, "इस समय नारी शिक्षा अत्यंत सीमित थी तथा केवल समाज के संभ्रात परिवारों की लड़कियाँ ही शिक्षा प्राप्ति के अवसरों का सदुपयोग कर पाती थी"।⁴

वैचारिक रूप से देखा जाए तो लोगों के मन में यह डर बैठ गया कि पढ़ी-लिखी स्त्री जवाब देने लगेगी, सवाल पूछेगी, और शायद 'हुकूमत' को चुनौती भी दे बैठे। यही वजह रही कि बहुत से घरों में बेटियों को स्कूल तक नहीं भेजा गया कहीं-कहीं तो ये भी माना जाता था कि पढ़ाई करने वाली लड़की 'ज्यादा समझदार' हो जाती है, जो कि उनके लिए खतरनाक होता। अब देखिए, सब कुछ नकारात्मक भी नहीं रहा। समाज में कुछ ऐसे भी लोग थे जैसे राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फूले या फिर कुछ वैदिक ऋषि जिन्होंने इन रुकावटों के खिलाफ आवाज़ उठाई। कहना ठीक होगा कि, मुश्किलें तो थीं, पर कुछ रोशनी की किरणें भी थीं। और शायद उसी की वजह से आज हम फिर से नारी शिक्षा की बात खुलकर कर पा रहे हैं। "आँकड़े यह भी बताते हैं कि भारत में अभी भी लगभग 145 मिलियन महिलाएँ हैं, जो पढ़ने या लिखने में असमर्थ हैं"।⁵

वैदिक युग में नारी शिक्षा को सुदृढ़ करने हेतु किए गए प्रयास

वैदिक युग में समाज ने स्त्रियों की शिक्षा को मज़बूत करने के लिए जो प्रयास किए, वो आज सोचने पर थोड़ा हैरान भी करते हैं और गर्व भी होता है। सबसे बड़ी बात ये कि नारी को बस चूल्हा-चौंका समझने की मानसिकता तब ज्यादा नहीं थी बल्कि उन्हें भी वेद, दर्शन, व्याकरण और यहां तक कि खगोलशास्त्र तक पढ़ने की छूट थी। गुरुकुलों में लड़कियाँ ब्रह्मचारिणी बन के शिक्षा लेती थीं। कुछ जगहों पर तो कन्याओं के लिए अलग गुरुकुल की भी व्यवस्था थी ताकि वो बिना किसी रोकटोक के अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें। समाज ने ये मान लिया था कि शिक्षा केवल पुरुषों के लिए नहीं, बल्कि स्त्रियों के लिए भी उतनी ही आवश्यक है, जिससे वे जीवन के निर्णयों में सही समझ रख सकें। **चौधरी, डॉ. विनीता** के अनुसार, "वैदिककालीन धर्मशास्त्रों के अनुसार ईश्वर द्वारा इस संसार के दो भाग करके एक पुरुष तथा दूसरा स्त्री का स्वरूप बनाया जिससे स्पष्ट होता है कि स्त्री और पुरुष को समान स्थान प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त 'अर्धनारीश्वर' की कल्पना भी मानव जीवन के विकास में स्त्री व पुरुष के मध्य समानता का समर्थन करती है। अर्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है"।⁶

हम जब तत्कालीन विदुषियों (जैसे गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा या अपाला आदि) का जिक्र करते हैं तो दिल से लगता है कि वाकई, वो युग कितना जागरूक रहा होगा। ये स्त्रियाँ केवल पढ़ी-लिखी नहीं थीं, बल्कि ज्ञान की दुनिया में खुद ऋषियों को चुनौती देने वाली थीं। ब्रह्मज्ञान पर शास्त्रार्थ में हिस्सा लेना, सोचिए कितना साहस और आत्मविश्वास रहा होगा उनमें। और इसके लिए कितने सकारात्मक प्रयास किये गए होंगे। धार्मिक अनुष्ठानों में भी महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती थी, जिससे वे केवल घर की शोभा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान का भी हिस्सा बनी रहती थीं। उस समय विवाह की उम्र भी कुछ ज्यादा ही रखी जाती थी ताकि बेटियाँ पहले अच्छी तरह पढ़-लिख लें, फिर विवाह करें। अर्थात् वैदिक युग के प्रारंभिक दौर में बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। सच कहें तो वैदिक युग की सोच कुछ सन्दर्भों में आज के दौर से कहीं ज्यादा आगे थी। तब ये माना जाता था कि शिक्षित स्त्री ही समाज को सशक्त बना सकती है। और शायद इसी सोच की वजह से उस समय की स्त्रियाँ सिर्फ परछाई नहीं, बल्कि प्रकाश की ओर बढ़ती एक दिशा थीं। किन्तु यह बात भी सच है कि, ऋग्वैदिक काल के प्रस्थान और उत्तर वैदिक काल के आगमन के साथ ही स्त्री शिक्षा पर ग्रहण लगता चला गया। इस सन्दर्भ में आंबेडकर ने तर्क दिया कि "महिलाओं की स्थिति में कमी मनुस्मृति के कारण आई है जो उन्हें शिक्षा तक पहुंच से वंचित करती है"।⁷

वर्तमान समय में वैदिक कालीन नारी शिक्षा की प्रासंगिकता

आज के दौर में जब हर कोई नारी सशक्तिकरण की बातें करता है, तो मन में एक सवाल भी उठता है क्या हम वाकई उस सोच तक पहुँच पाए हैं, जो कभी वैदिक युग में थी? उस ज़माने में, जब तकनीक नहीं थी, इंटरनेट नहीं था, तब की स्त्रियाँ विदुषी बनकर शास्त्रार्थ करती थीं, और आज भी कई जगहों पर लड़कियों को ठीक से स्कूल तक नहीं भेजा जाता। तो ऐसे में, वैदिक काल की नारी शिक्षा की प्रासंगिकता को नज़रअंदाज़ करना एक बड़ी भूल होगी। वैदिक समय में शिक्षा का मतलब सिर्फ किताबी ज्ञान नहीं था, बल्कि आत्मचिंतन, नैतिकता और जीवन के उद्देश्य को समझने का ज़रिया था। और इसमें महिलाओं को भी बराबरी से शामिल किया गया। सोचिए, एक युग जहाँ स्त्री को केवल पूजा की पात्र नहीं, बल्कि ज्ञान की साधक माना गया वो कितनी आधुनिक सोच रही होगी।

आज भी, जब हम बेटियों को पढ़ाने की बात करते हैं, तो अक्सर लोग कहते हैं "इतना पढ़ा के क्या करना है, आखिर शादी ही तो करनी है।" और यहीं से हम पीछे जाने लगते हैं। वैदिक युग हमें ये सिखाता है कि एक शिक्षित स्त्री केवल एक अच्छी पत्नी या माँ ही नहीं, बल्कि समाज की दिशा बदलने वाली ताकत भी हो सकती है। अब ये बात अलग है कि आज की शिक्षा प्रणाली थोड़ी अलग हो गई है। सब कुछ अंक और ग्रेड पर टिक गया है। लेकिन अगर हम वैदिक युग की तरह शिक्षा को एक मूल्य आधारित प्रक्रिया मानें, तो शायद बहुत कुछ सुधर सकता है। इसलिए आज के समय में वैदिक काल की नारी-शिक्षा न सिर्फ प्रासंगिक है, बल्कि ज़रूरी भी है ताकि हम फिर से एक ऐसा समाज बना सकें जहाँ ज्ञान का हक सिर्फ किसी एक वर्ग का नहीं हो, बल्कि सबका हो, खासकर महिलाओं का भी। और मुझे लगता है कि हम लोग इस दिशा में बढ़ भी रहे हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

वैदिक युग की जो नारी शिक्षा थी, वो सिर्फ पढ़ाई-लिखाई भर नहीं थी, बल्कि उसमें आत्मसम्मान, विचारों की स्वतंत्रता और सामाजिक भागीदारी की पूरी झलक मिलती थी। उस समय स्त्रियाँ सिर्फ सीखने नहीं, बल्कि ज्ञान देने के स्तर तक पहुँच गई थीं। पर फिर वक्त बदला, धीरे-धीरे ऐसी सामाजिक रीतियाँ बनती गईं जिनमें नारी की भूमिका बस रसोई और चारदीवारी तक सीमित होती गई। कुछ चीज़ें तो यँ ही थोपी गईं, जैसे बाल विवाह, पर्दा प्रथा, और "लड़की है, ज्यादा पढ़ के क्या करेगी?" जैसी बातें। अब ज़रा सोचिए, जो समाज कभी स्त्री को वेदों का ज्ञान दे रहा था, वही समाज कुछ सौ सालों बाद उसे अक्षर ज्ञान से भी वंचित कर देता है। यह गिरावट एक सोच की हार है, और इसका इलाज भी सोच के बदलने में ही है।

समाधान कोई बहुत जटिल चीज़ नहीं होती बस नीयत साफ होनी चाहिए। इतिहास गवाह है कि जब-जब किसी ने इन रुढ़ियों को तोड़ने की कोशिश की है, बदलाव जरूर आया है। महात्मा ज्योतिबा फूले, राजा राममोहन राय और विद्यासागर जैसे लोगों ने जो किया, वो बताता है कि अगर हम चाहें तो समाज को फिर से नारी शिक्षा की दिशा में आगे ले जा सकते हैं। आज के दौर में हमें वैदिक सोच को सिर्फ किताबों में नहीं, व्यवहार में लाना होगा। बेटियों को पढ़ाने का मतलब सिर्फ स्कूल भेजना नहीं है, बल्कि उन्हें सोचने, समझने और फैसले लेने लायक बनाना है। और हाँ, यह काम सिर्फ सरकार या स्कूलों का नहीं, बल्कि हर माता-पिता, हर शिक्षक और हर नागरिक का है।

सन्दर्भ

- i. डॉ. कमलेश. (2019). वैदिक युग की नारी व आधुनिक युग की नारी के इक्कीसवीं सदी में पुनः प्रतिष्ठित किया. International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(2): 51-53, <https://www.anantaajournal.com/archives/2019/vol5issue2/PartA/5-2-1-808.pdf>
- ii. https://sadhana-app.translate.google/?p=1510&x_tr_sl=en&x_tr_tl=hi&x_tr_hl=hi&x_tr_pto=tc
- iii. गहलौत, कविता रानी (2015). वैदिक एवं बौद्ध कालीन नारी शिक्षा, शोध मंथन, https://anubooks.com/uploads/session_pdf/16629844285.pdf
- iv. कुमारी, डॉ. वंदना (2017). भारत में नारी शिक्षा की स्थिति. IJSRSET, Volume 3, Issue 5, Print ISSN: 2395-1990, Online ISSN : 2394-4099, International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology, p-768, <https://ijsrset.com/paper/6792.pdf>
- v. <https://www.drishtias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/women-education>
- vi. चौधरी, डॉ. विनीता (2023). भारत में स्त्री शिक्षा का इतिहास एवं विकास, International Journal of Education, <https://www.echetana.com/wp-content/uploads/2023/07/VeenitaChoudhary.pdf>
- vii. <https://hindi.theprint.in/opinion/it-is-narrow-minded-to-see-ambekar-as-a-dalit-icon-understand-his-feminist-approach-towards-indian-women/681992/>



ग्रामीण जीवन को गतिशील बनाने में नगरीकरण का योगदान

डॉ. विभा कुमारी*

सारांश

आधुनिक युग में ग्रामीण समाज को प्रभावित करने की दृष्टि से नगरों का अपना सामाजिक महत्व है। इस प्रभाव ने ग्रामीण समाज में महान् परिवर्तन किये हैं। नगर के समीप के ग्रामीण क्षेत्रों को गतिशील बनाने में नगरों का प्रभाव प्राचीन काल से उल्लेखनीय है। नगरों के प्रभावों की प्रक्रिया चाहे स्वतः विकसित हुई हो या मानवीय प्रयासों के फलस्वरूप और चाहे यह एक प्रक्रियात्मक परिवर्तन के रूप में विकसित हुई हो, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इसने भारतीय ग्रामीण जीवन में अनेक परिवर्तन किये हैं। विशेषरूप से नगरों ने भारत की ग्रामीण, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व्यवस्था को गतिशील बनाया है। नगरीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण व्यावसायिक गतिशीलता को व्यापक आधार प्रदान किया है। शोधपत्र की अध्ययन विधि विश्लेषणात्मक है। इसकी प्रकृति मात्रात्मक है। भारतीय सामाजिक संरचना के अंतर्गत नगरीकरण की प्रक्रिया ने जातिगत व्यवसायों को विभिन्न रूपों में प्रभावित किया है। नगरीकरण की प्रक्रिया ने परिवार के विकास-चक्र को प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार का विकास-विस्तार एकाकी परिवार में हो रहा है। नगर में रहने वाले लोग संयुक्त परिवार में रहने के बावजूद एक साथ एक छत के नीचे हमेशा नहीं रह पाते हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण नातेदारी प्रणाली को गतिशील बनाया है।

कुंजी — आधुनिक युग, नगरीकरण, ग्रामीण समाज, सामाजिकव्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था, नातेदारी प्रणाली।

भूमिका

भारत गांवों का देश है। इसकी आय का प्रमुख स्रोत कृषि रहा है। भारत का ग्रामीण जीवन एक लम्बी अवधि तक उपेक्षित और शोषित रहा। ऐतिहासिक साक्षियों से स्पष्ट होता है कि भारत में छठीं शताब्दी के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं से ग्रस्त रहा। ब्रिटिश शासन काल में भी भारत की सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था जमींदारों के शोषण का शिकार बनी रहे। इसके फलस्वरूप गाँवों में शिक्षा का अभाव, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और भाग्यवादिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। आर्थिक कठिनाईयों इस सीमा तक बढ़ गयीं कि दो समय का भाजन और मोटा कपड़ा प्राप्त कर लेना ग्रामीण जन की सम्पन्नता का प्रतीक समझा जाने लगा, चिकित्सा के अभाव में अकाल मृत्यु की घटनाओं को सामान्य रूप में देखा जाने लगा? अकाल और महामारियों को असहाय बनकर देखने के अतिरिक्त ग्रामीणों के पास कोई चारा नहीं रह गया तथा परिवहन के साधनों के अभाव में सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय एक दूसरे से पृथक लाखों छोटी छोटी इकाइयों में विभाजित हो गया।

ग्रामीण क्षेत्रों को गतिशील बनाने में नगरों का प्रभाव

आधुनिक युग में ग्रामीण समाज को प्रभावित करने की दृष्टि से नगरों का अपना सामाजिक महत्व है। इस प्रभाव ने ग्रामीण समाज में महान् परिवर्तन किये हैं। नगर के समीप के ग्रामीण क्षेत्रों को गतिशील बनाने में नगरों का प्रभाव प्राचीन काल से उल्लेखनीय है। नगरों के प्रभावों की प्रक्रिया चाहे स्वतः विकसित हुई हो या मानवीय प्रयासों के फलस्वरूप और चाहे यह एक प्रक्रियात्मक परिवर्तन के रूप में विकसित हुई हो, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इसने भारतीय ग्रामीण जीवन में अनेक परिवर्तन किये हैं। विशेष रूप से नगरों ने भारत की ग्रामीण, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व्यवस्था को प्रभावित किया है। नगरों के विकास से भारत के ग्रामीण क्षेत्रों पर इसका आधिपत्य विकसित हो गया है। इस आधिपत्य से ग्रामों में भविष्य में होने वाले परिणाम कितने ही आकर्षक क्यों न हों लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में यह आधिपत्य भारत के

* पूर्व शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Email - vibhavns2oct@gmail.com

गाँवों में विघटन के लक्षण विकसित किये हैं। इस प्रकार नगरों के प्रभाव से ग्रामीण जीवन में व्यवस्थापन की समस्या का विकास हो गया है। इस लिए ग्रामीण क्षेत्रों में विघटन के तत्त्व विकसित हो गये हैं।

नगरीकरण प्रक्रिया में ग्रामीण जनसंख्या नगरीय जनसंख्या में परिवर्तित हो जाती है। किसी ग्राम प्रधान समाज के नगरीय प्रधान समाज में रूपान्तरण की प्रक्रिया को नगरीकरण कहते हैं। नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर कुल प्रादेशिक वृद्धि दर से अधिक होती है।¹ **टेलर** ने गाँवों से नगरों को जनसंख्या विस्थापन को नगरीकरण बतलाया है। **ट्रिवार्थ** ने कुल जनसंख्या में नगरीय क्षेत्र में रहने वाले लोगों के अनुपात को नगरीकरण स्तर के रूप में परिभाषित किया है।

नगरीकरण नगरों में निवास करने वाली जनसंख्या का कुल जनसंख्या से अनुपात है। विशेषकर वह जनसंख्या अनुपात, जो नगरीय केन्द्रों में अर्थव्यवस्था के द्वितीयक एवं तृतीयक कार्यों में लगा होता है (**हॉसर 1965**)⁴। जनांकिकीय दृष्टिकोण से निश्चित कालावधि में नगरीय जनसंख्या के कुल जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि को नगरीकरण कहते हैं।

किंग्सले डेविस (1955)⁵ ने माना 'नगरीकरण से आशय कुल जनसंख्या में नगरों में रहने वाली जनसंख्या के अनुपात तथा उसकी वृद्धि से है। अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने यह भी कहा है कि नगरीकरण सामाजिक जीवन को सम्पूर्ण प्रारूप में क्रांतिकारी परिवर्तन की ओर संकेत करता है जो एक बार शुरु हो जाने के बाद गतिमान रहता है।

इस परिभाषा में नगरीकरण और औद्योगिककरण को संयुक्त प्रक्रिया माना गया है।

गेराल्ड ब्रीज⁶ के अनुसार – नगरीकरण एक प्रक्रिया है जिसके कारण लोग नगरीय कहलाने लगते हैं, शहरों में रहने लगते हैं, खेत के स्थान पर अन्य पेशों को अपनाते हैं जो नगर में उपलब्ध हों और अपने व्यवहार प्रतिमान में अपेक्षाकृत परिवर्तन का समावेश करते हैं। इस तरह नगरीकरण ऐसी प्रक्रिया है जो आर्थिक विकास का पथ प्रशस्त करती है क्योंकि इसमें औद्योगिक समाज की स्थापना होती है, भौतिक संस्कृति में वृद्धि होता है तथा सामाजिक सम्बन्ध अप्रत्यक्ष द्वैतीयक और जटिल होते जाते हैं।

ग्रिफिथ टेलर (1957)⁷ के अनुसार "नगरीकरण गाँवों में निवासित जनसंख्या का स्थानान्तरित होकर नगरों में बसने की प्रक्रिया को कहते हैं।"

मिश्रा (1994)⁸ "सभी सामाजिक प्रक्रियाओं में नगरीकरण वह सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसे वर्तमान समाजों में सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख स्रोत कहा जा सकता है।"

नगरीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है। जीविकोपार्जन के लिए, मानव ने जिस तरह अपनी आर्थिक अवस्थाओं में परिवर्तन किया, उसी तरह समाज में नई-नई उत्पादन प्रविधियों ने जन्म लिया। किंग्सले डेविस न नगरीकरण की प्रक्रिया के विकास को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार नगर का उदगम तब हुआ होगा जब देश की प्रौद्योगिक उन्नति हुई होगी ताकि अतिरिक्त उत्पादन को दूसरे स्थानों पर भेजा जा सके। यह प्रक्रिया सात-आठ हजार वर्ष पहले उत्तर पाषाण युग में प्रारम्भ हुई होगी जबकि एक स्थान पर रहकर खेती करने की व्यवस्था शुरु हुई होगी। उपयुक्त जलवायु भूमि की उर्वरता में वृद्धि जिन क्षेत्रों में हुई उन स्थानों में यानि नदी घाटियों के पास पहले नगर विकसित हुए। तब यातायात के साधनों की पर्याप्त व्यवस्था न होने से पालतू जानवरों के द्वारा सामान एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने की व्यवस्था थी। धीरे-धीरे नगर में गहन श्रम विभाजन उत्पन्न हुआ। सैनिक संरक्षण की सुविधायें बढीं। मनोरंजन के साधनों में वृद्धि हुई एवं जनसंख्या का एकत्रीकरण बढ़ा। प्राचीन अभिलेखों से विदित होता है कि इण्डिया में रहने वाली कुजको जाति की जनसंख्या 2 लाख हो गयी थी। मैक्सिको की घाटी में जब स्पेनियाई के आदिवासियों के साठ हजार घर थे, जनसंख्या लगभग तीन लाख थी। इतनी अधिक जनसंख्या की बुनियादी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिये नगरीय जीवन के अनुकूल वातावरण आवश्यक है।

उत्तर पाषाण युग तथा प्रारंभिक कांस्य युग में, कम से कम यूरोप तथा भूमध्यसागरीय प्रदेशों के अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि इनमें क्रमिक रूप से उद्योगों का विकास होता गया विशेषकर धातुओं के क्षेत्र में प्रतीकात्मक आविष्कारों जैसे लेखन कला में वृद्धि हुई। विचारों का आदान-प्रदान सरल हो गया। संस्कृति का एकत्रीकरण होने लगा किन्तु कुछ परिस्थितियों में नगरों का ह्रास हुआ। जैसे एथेंस, कार्थेज, रोम, कुस्तुनतुनिया के विकास के अभिलेख प्राप्त हुए हैं वैसे ही उनके पतन के अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। युद्ध एवं राजनैतिक परिवर्तनों के कारण भी नगरों का ह्रास हुआ।

दसवीं शताब्दी में नगरों का पुनर्जन्म हुआ। नगर का आधार व्यापार-व्यवसाय था और इस कारण नगरीकरण की प्रक्रिया क्रमशः धीमी गति से तेज हुई। सोलहवीं शताब्दी में यूरोप के नगरों का विकास, व्यापार-व्यवसाय एवं नयी-नयी खोजों के कारण हो सका। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सूती वस्त्र उद्योग तथा धातुओं के उद्योगों में यांत्रिक शक्ति के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई। फलस्वरूप नगरीय जनसंख्या बढ़ी और आर्थिक विकास हुआ। धीरे-धीरे कारखानों में मशीनों का प्रयोग बढ़ने लगा। श्रमिकों की आवश्यकता हुई इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों से व्यक्ति रोजगार के लिए नगर की ओर आकर्षित हुए। यातायात के साधनों में वृद्धि होने से उत्पादित माल सरलता से नगरों तक ले जाया जाने लगा। मुद्रण की सुविधा, औद्योगिक शिक्षा, वैज्ञानिक प्रगति एवं अन्य क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान बढ़ने के कारण धीरे-धीरे नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी। संचार के साधनों का विकास होने लगा और नगरों में एक विशिष्ट प्रकार के जीवन प्रतिमानों के विकसित होने से नगरीय मनोवृत्ति युक्त जीवन विधि का प्रसार हुआ।

भारतीय ग्रामीण समुदाय के संदर्भ में वर्तमान समाजशास्त्रियों ने जो अध्ययन किये हैं, उससे यह परिलक्षित होता है कि भारतीय ग्रामीण समुदाय एक स्वचालित लघु गणतंत्र तथा आत्मनिर्भर इकाई नहीं है बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वृहद् भारतीय संस्कृति का ही एक अंग है। इस विषय में एम.एन. श्रीनिवास⁹ की संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण, राबर्ट रेडफील्ड¹⁰ की वृहद् परम्परा और लघु परम्परा तथा मेकिम मैरियट¹¹ की सार्वभौमीकरण और क्षेत्रीयकरण की अवधारणाओं का अपना विशेष महत्व है।

भारतीय ग्रामीण समाज की परिवर्तनशीलता में विशेषरूप से दो प्रकार के कारक—प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष—प्रभवशील हुए हैं। प्रत्यक्ष कारकों में सरकारी तथा गैर सरकारी उन सभी प्रयासों को सम्मिलित किया जा सकता है जो ग्रामीण समाज के उत्थान के लिए लागू किये गये हैं। इनमें विविध कार्यक्रम इसमें संवैधानिक सुरक्षा के साथ बैंकिंग सुविधाओं को सम्मिलित किया जाता है। अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण समाज को प्रभावित करने वाले कारकों में नगरीकरण प्रमुख है।

भारतीय ग्रामीण समाज के सामाजिक-आर्थिक पक्षों में परिवर्तन से सम्बन्धित अध्ययनों में लुईस (1958)¹², ईश्वरन (1966)¹³, दूबे (1975)¹⁴, राव (1970)¹⁵, सिंह (1977)¹⁶, पाण्डेय (2000)¹⁷ ग्रामीण व्यावसायिक जीवन में परिवर्तन की दिशा कृषि व्यवसायों की ओर है, साथ ही उच्च जातियों में अधिकतर व्यवसाय और आर्थिक गतिशीलता समतल प्रकृति की है जैसा कि ब्राह्मण और अन्य उच्च जातियों के लोग सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरियों, वाणिज्य, औद्योगिक नौकरियों तथा कृषि इत्यादि व्यवसायों को अपना रहे हैं अनुसूचित अथवा निम्न जातियों के लोगों की व्यावसायिक गतिशीलता उर्ध्व प्रकृति की है क्योंकि इन जातियों के लोग प्रायः मजदूरी, कृषि-मजदूरी तथा अन्य प्रकार की आधुनिकीकरण से जुड़ी सेवाओं रिकशा, आटो, टैक्सी चालक तथा राजगीरी, मशीन मैकेनिक को अपनाये हैं। गाँव के शिल्पकार जातियों के लोग केवल गाँव में अपनी सेवाएँ उपलब्ध न कराकर बल्कि नगरों की आर्थिक व्यावसायिक संरचना की माँगों की पूर्ति के निमित्त अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहे हैं। फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार हुआ है। अनुसूचित जाति अथवा अस्पृश्य जातियों के लोगों ने अपने परम्परागत मलीन व्यवसायों से विमुक्त होकर नये व्यवसाय अपना रहे हैं।

भारतीय समाज की संरचना जाति और परिवार की संस्थाओं पर आधारित है। ये व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन के प्रत्येक पक्ष का नियमन करती है।

परिवार के अन्तर्गत विवाह संस्था सम्मिलित है। ग्रामीण जीवन में परिवार और विवाह की एक दार्शनिक पृष्ठभूमि है, पुरुषार्थों की पूर्ति व्यक्ति को सामाजिक जीवन से जोड़ती है, जो नगरीकरण से प्रभावित हुई है। काम और अर्थ दो ऐसे महत्वपूर्ण पुरुषार्थ हैं जिनकी पूर्ति विवाह और परिवार की संस्थानिक संरचना से ही सम्भव होती है। इन दो पुरुषार्थों की पूर्ति के बिना न तो व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संभव होता है न तो उसे मोक्ष ही प्राप्त होता है। सामाजिक दार्शनिक दृष्टिकोण से व्यक्ति के कुछ ऋण होते हैं जिनकी पूर्ति वह वैवाहिक जीवन और गृहस्थाश्रम में रहकर करता है, सामान्य व्यक्ति के लिए ऋणों से मुक्त होना संभव नहीं। नगरीकरण के साथ-साथ भारत की परम्परागत सामाजिक संरचना में दरारें पड़ने लगीं। सबसे गहरा आघात परिवार के संयुक्त पक्ष को पहुँचा है। परिवार के परम्परागत आदर्श—पुरुष नहीं रह गया है। संयुक्त परिवार विविध कारणों से एकाकी परिवारों में विभक्त हुआ।

सामाजिक गतिशीलता ने परिवार के सदस्यों में असमानता और क्षेत्रीय दूरी स्थापित कर दी।

राज्य की ओर से कानून द्वारा पारिवारिक जीवन में हस्तक्षेप होने लगे। सम्पत्ति के बंटवारे को लेकर पारिवारिक संस्था एकांकी प्रवृत्ति की ओर बढ़ी।

वर्तमान में संयुक्त परिवार की संस्था निकटतम रक्त सम्बन्धियों के समूह में बदल गयी है। एक ही जगह बसे हुए चाचा और भाई अलग-अलग निवास और व्यवसाय करते हैं। तीज-त्यौहार, जन्म-मृत्यु और विवाह के अवसरों पर अस्थायी रूप से एकत्रित हो जाते हैं, एक समूह के रूप में, उनमें सम्प्रेषण और अन्तर्सम्बन्ध रहता है।

संयुक्त परिवार लोगों का वह समूह है जो एक ही छाजन के नीचे रहता है, एक ही रसोई में भोजन करता है, और समाज पूजन शैली रखता है। रक्त सम्बन्धों से बंधा होता है। रक्त सम्बन्धी प्रायः उत्तराधिकार का अधिकार रखते हैं, या उत्तराधिकारियों पर आश्रित होते हैं।¹⁸

नगरीकरण की प्रक्रिया ने वंचित वर्गों को आशा का एक नया स्रोत प्रदान किया है। भारतीय सामाजिक संरचना के अंतर्गत अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को भारतीय संविधान तथा कल्याणकारी राज्य के अंतर्गत बहुमुखी विकास हेतु अनेक प्रकार के कार्यक्रमों तथा प्रावधानों को स्वीकार किया गया है। उदाहरणस्वरूप सरकारी सेवाओं में आरक्षण तथा शिक्षण संस्थानों में विशेष सुविधाओं का प्रावधान किया गया है। नगर में रहने वाले वंचित वर्ग के लोग संवैधानिक प्रावधानों का लाभ उठा सकने में अधिक सक्षम सिद्ध हो रहे हैं। उनमें जागरूकता भी होती है। उनमें प्रतिशोध की क्षमता भी होती है। उनमें प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित होने हेतु अधिक साधन एवं अवसर प्राप्त करने की अपार संभावना भी होती है। इस प्रकार नगरीकरण की प्रक्रिया दलित तथा वंचित वर्ग को एक नई ऊर्जा तथा ऊष्मा प्रदान कर रही है। मेहता के अनुसार नगरों में ग्रामीण क्षेत्रों के खेतिहर मजदूरों, सीमांत किसानों, भूमिहीन श्रमिकों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को रोजगार के अवसर भी प्राप्त होते हैं। साथ ही वे नगरों में जातिगत भेदभाव तथा अन्य सामाजिक वंचन से अपने को आजाद अनुभव करते हैं।

भारत में नगरीकरण के परिणामों की व्याख्या किसी एक मानदंड के आधार पर संभव नहीं है।

1. नगरीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण व्यावसायिक गतिशीलता को व्यापक आधार प्रदान किया है।
2. भारतीय सामाजिक संरचना के अंतर्गत नगरीकरण की प्रक्रिया ने जातिगत व्यवसायों को विभिन्न रूपों में प्रभावित किया है।
3. नगरीकरण की प्रक्रिया के साथ आधुनिकीकरण भी सम्बन्धित है। नगरीकरण के कारण आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती है।
4. नगरीकरण की प्रक्रिया ने परिवार के विकास-चक्र को प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार का विकास-विस्तार एकाकी परिवार में हो रहा है। नगर में रहने वाले लोग संयुक्त परिवार में रहने के बावजूद एक साथ एक छत के नीचे हमेशा नहीं रह पाते हैं।
5. नगरीकरण की प्रक्रिया ने नातेदारी प्रणाली के बंधन, प्रभाव एवं अनुशासन को शिथिल किया है। विशेष रूप से नगरों में नातेदारी प्रणाली के अंतर्गत परिहार संबंधों में शिथिलता के संकेत मिल रहे हैं। अब दामाद तथा सास एक ही रिश्ते पर बैठकर नगरों में यात्रा करते हैं। एक ही ड्राइंग रूम में जेट का परिवार तथा छोटे भाई का परिवार साथ-साथ मिलकर सचिन तेंदुलकर के छक्के और चौके का आनन्द टेलीविजन से उठाते हैं।
6. नगरीकरण की प्रक्रिया ने यौन-नैतिकता के परंपरागत नियमों को शिथिल किया है। महानगरीय शोच के अंतर्गत सुरक्षित यौन संबंध को विशेष महत्व दिया जा रहा है। विवाह से पहले भी युवक तथा युवती साथ-साथ रहते हैं तथा शारीरिक संबंध भी स्थापित करते हैं।
7. नगरीकरण की प्रक्रिया ने प्राथमिक समूहों के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है। आदमी बंजर होता हुआ जमीन जैसा दिखाई पड़ता है। मानवीय संवेदनाओं तथा वात्सल्य एवं करुणा का अभाव होता जा रहा है।
8. नगरीकरण की प्रक्रिया ने पर्यावरण संकट को खड़ा किया है। नगरों में पर्यावरण असंतुलन की समस्या मौजूद है। यह नगरीकरण की प्रक्रिया का दुष्प्रकार्यात्मक प्रभाव है।
9. नगरीकरण की प्रक्रिया ने झुग्गी-झोंपड़ी तथा गंदी बस्तियों को विकसित कर मानव समाज के समक्ष एक चुनौती खड़ी कर दी है।

नगरीकरण की प्रक्रिया ने वैचारिक मान्यताओं तथा चिंतनों को प्रभावित किया है। नगरों में नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के बोझ को उठाने के लिए तैयार नहीं है।

नेतृत्व एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है जो मनुष्यों एवं पशुओं दोनों के समाज में पाया जाता है। लिण्डग्रेन के अनुसार, समूह के ऐसे सदस्य को नेता कहा जाता है जो अपनी पसन्द के अनुसार अन्य सदस्यों को

व्यवहार करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डालता है। लापीयर तथा फ्रान्सवर्थ के अनुसार, नेतृत्व वह व्यवहार है जो अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि उन सभी व्यक्तियों का व्यवहार नेता को प्रभावित करता है। नेतृत्व एक ऐसी प्रक्रिया है जिनमें अन्तर्व्यक्तिक अन्तःक्रिया होती है क्योंकि नेता अपने अनुयायियों पर प्रभाव डालता है तथा अनुयायी अपने पर प्रभाव डालते हैं। अन्तर सिर्फ इतना होता है कि नेता का प्रभाव अनुयायी के प्रभाव से अधिक होता है। इन दोनों के बीच पारस्परिक प्रभाव की मात्रा में अन्तर होता है। नेता अपने इस तरह के प्रभाव के कारण ही औपचारिक अध्यक्ष होता है।¹⁹

भारत के गाँव हमेशा सामाजिक व आर्थिक जीवन की महत्वपूर्ण इकाई के साथ-साथ अतीत से ही प्रशासन की महत्वपूर्ण संस्था रहे हैं।²⁰ भारत में ग्रामीण स्थानीय शासन का इतिहास बहुत प्राचीन है। स्थानीय शासन प्रक्रिया का विकास ग्राम शासन व्यवस्था के कारण हुआ है। कार्य की दृष्टि से ग्राम पंचायत पर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था।²¹

ग्रामीण राजनीति का स्वरूप दिन-प्रतिदिन नगरीय राजनीति से प्रभावित हो रहा है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि नगर की राजनीति अब गाँवों में पहुँच गयी है। उसमें वे समस्त गुण और अवगुण उत्पन्न हो गये हैं जो नगर की राजनीति में देखे जा सकते हैं। नेतृत्व के परम्परागत स्वरूप और रूढ़िवादी ढाँचे की समाप्ति, राजपूत और ब्राह्मण नेतृत्व के वर्चस्व की समाप्ति, महिलाओं, हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों के नेतृत्व में वृद्धि, महिलाओं, हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों में नेता बनने की होड़ आदि आज के नेतृत्व के परिवर्तित स्वरूप एवं नवीन प्रतिमानों को उद्घाटित करते हैं। भारतीय नेतृत्व का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण नेतृत्व से सम्बद्ध है। नेतृत्व का परम्परागत स्वरूप ग्रामीण समाज में शहरी नेतृत्व की अपेक्षा काफी तेजी से बदला है। गाँव पंचायत से जुड़े हुए व्यक्तियों का ग्रामीण समाज पर काफी दबदबा और प्रभाव रहा है। सवर्णों का प्रभाव इस समाज पर काफी रहा है। इसका मुख्य कारण था कि ये जमींदार भी थे और शिक्षित भी और साथ में ऊँची जाति में जन्म लेने का लाभ इन्हें आरम्भ से प्राप्त था। अस्तु ग्रामीण समाज का नेतृत्व भी यही करते थे। स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण समाज के आर्थिक सामाजिक ढाँचे को सुदृढ़ बनाने के लिए सरकार की अनेक योजनायें मुख्यतः गाँवों के उत्थान के लिए बनायी गईं। इन विविध योजनाओं ने जहाँ गाँव के आर्थिक ढाँचे को सबल बनाया वहीं उनमें जागरूकता और सामयिक चेतना को भी उत्पन्न किया। गाँव में आर्थिक-सामाजिक ढाँचे में प्रगति होने से व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ। व्यक्ति ने अपने को समूह की अपेक्षा अधिक महत्व देना आरम्भ किया। राजनैतिक चेतना ने उसमें नेता बनने के बीज भी रोपे। इसका सहज परिणाम यह हुआ कि आज गाँव में सवर्ण ही नेता नहीं हैं बल्कि हरिजन, पिछड़ी हुई जातियों के व्यक्तियों के साथ ही महिलाएँ भी ग्रामीण समाज का सफलतापूर्वक नेतृत्व कर रही हैं। कई ग्राम प्रधान आज सामान्य के साथ हरिजन और पिछड़ी जाति की महिलाएँ हैं। नगरीकरण से इस तरह परम्परागत जातिगत एवं पुरुष प्रधान नेतृत्व का ढाँचा तीव्रता से टूट रहा है और अब नेतृत्व के नवीन प्रतिमान उभरकर सामने आ रहे हैं।

गाँवों में शिक्षा का प्रसार राजनैतिक पक्ष प्रशासकीय दृष्टिकोण से आवश्यक है। स्वतंत्रता के पूर्व ग्रामीण जीवन को व्यवस्थित करने का कार्य मुख्यतः ग्राम पंचायतों एवं जाति पंचायतों का था। स्वतंत्रता के पश्चात् गाँव की राजनैतिक संरचना तेजी से परिवर्तित होने लगी। एक ओर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के एक साधन के रूप में गाँव पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिलापरिषदों को व्यापक अधिकार दिये गये तथा दूसरी ओर ग्रामीण जीवन अनेक राजनीतिक दलों की गतिविधियों से प्रभावित होने लगा। इन राजनीतिक दलों ने न केवल एक नवीन विचारधारा को प्रोत्साहन दिया बल्कि ग्रामीण जीवन में नेतृत्व के परम्परागत स्वरूप को भी परिवर्तित कर दिया। वर्तमान समय में शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो ग्रामीणों को अपने उत्तरदायित्वों, अधिकारों, कर्तव्यों तथा सामाजिक सहभाग के प्रति जागरूक बनाकर देश की राजनीति को स्वस्थ रूप प्रदान कर सकता है। नगरीकरण ग्रामीण समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता एवं आस्था को बढ़ाने में महत्वपूर्ण कारक है। ग्रामीणों के शैक्षणिक स्तर एवं शैक्षणिक उपलब्धिता को बढ़ाने में योगदान देता है। शिक्षा प्राप्ति के अधिक अवसर प्रदान करके ग्रामीण समाज में शैक्षिक गतिशीलता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण है।

उपसंहार

नगरीकरण के फलस्वरूप ग्रामीणों का जीवन गतिशील हुआ है। रूढ़ियों के प्रभाव में कमी आई है, स्त्रियों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को पहले की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हुए हैं, वैयक्तिक स्वतन्त्रता में वृद्धि हुई है। आवश्यकता है इस बात का ध्यान देने की कि इन परिवर्तनों से गाँवों की मौलिक संरचना

प्रभावित न हो। भारतीय गांवों में नगरीकरण के प्रभाव से एक ऐसी सीमान्त परिवार व्यवस्था का निर्माण हुआ है जिनमें परम्परागत संयुक्त परिवारों तथा नगरों के एकाकी परिवारों की मिली-जुली विशेषताओं का समावेश है। ग्रामीण समाज के आर्थिक ढाँचों का आधार कृषि व्यवसाय है। ध्यान देने योग्य है कि इन एकाकी परिवारों से कृषि व्यवसाय प्रभावित न हो। नगरीकरण के फलस्वरूप नातेदारी सम्बन्धों में परिवर्तन आये हैं। नगरीकरण सम्पूर्ण ग्रामीण समाज में लोगों को प्रजातांत्रिक मूल्यों, जैसे – राजनैतिक मत प्रभाविकता में विश्वास तथा संघर्ष उन्मुखता की ओर अग्रसर करने में महत्वपूर्ण कारक है। ग्रामीण समाज में राजनीतिक जागरूकता तथा तथा बोधगम्यता को नगरीकरण ने बढ़ाया है। ग्रामीण समाज में लोगों की सक्रिय राजनैतिक सहभागिता एवं राजनीतिक अभिरूचियों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ :

- 1 रे, एम. नॉर्थम (1975), अर्बन ज्योग्राफी, पृ. 52.
- 2 टेलर, जी. (1957), अर्बन ज्योग्राफी, लन्दन, 1957, पृ. 52.
- 3 ट्रिवार्था, जी.टी. (1969), जनसंख्या का भूगोल : विश्व पैटर्न, जॉन विले एंड संस, न्यूयॉर्क, पृ. 171.
- 4 हाउजर, पी.एम. और शोनोर, लियो एफ. (संपा.), (1965), द स्टडी ऑफ अर्बनाइजेशन, जॉन विली एंड संस, न्यूयॉर्क.
- 5 डेविस, किंग्सले. (1955), ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ अर्बनाइजेशनल इन द वर्ल्ड, ए.जे.एस. 40, पृ. 429.
- 6 ब्रीज, गेराल्ड, अर्बनाइजेशन इन नेवली डेवलपिंग कण्ट्रीज, पृ 0 3।
- 7 टेलर, जी. (1957), अर्बन ज्योग्राफी, लन्दन, पृ. 52.
- 8 मिश्रा, एस.सी., द सिटी इन इण्डियन हिस्ट्री, 1994, पृ. 12
- 9 एम.एन. श्रीनिवास, 1952, 1962, 1966
- 10 राबर्ट रेडफील्ड, 1955-56, पृ. 13-21.
- 11 मेकिम मैरियट, 1955, पृ. 181-200
- 12 Lewis, Oscar: (1958): Village Life in Northern India, Alfred A. Knopf. Inc, New York.
- 13 Ishwaran, K. (1966): Tradition and Economy in Indian Village, Allied Publishers,, Bombay.
- 14 दुबे, श्यामचरण (1975): एक भारतीय ग्राम, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
- 15 Rao, M.S.A. (1970): Urbanisation and Social Change, Orient Longman Ltd., New Delhi.
- 16 Singh, Yogendra (1977): Social Stratification and Change in India, Manohar Publications, New Delhi.
- 17 पाण्डेय, पी.एन. (2000): ग्रामीण विकास एवं संरचनात्मक परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
- 18 गुडे, वर्ल्ड रिवोल्यूशन इन फैमिली पैटर्न, न्यूयार्क 1963, पृ. 240
- 19 सिंह, अरुण कुमार: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1996, पृ. 308-309.
- 20 महीपाल (2008) : पंचायती राज चुनौतियां एवं संभावनाएं, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृ. 7.
- 21 दूबे, अवध नारायण (1983): ग्रामीण प्रशासन और राजनीति, निर्मल प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 1.



बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के कारण पारिवारिक बिखराव

राजश्री अहिरवार*
डॉ. ओमप्रकाश यादव**

सारांश

पलायन या प्रवास एक सार्वभौमिक तथ्य है। दुनिया के प्रत्येक समाज में किन्हीं न किन्हीं कारणों से प्रवास की प्रवृत्ति आवश्यक रूप से देखा जा सकता है। प्रवास के कारण भी अनेक हो सकते हैं, कभी पलायन का कारण धार्मिक यात्रा या तीर्थाटन होता है तो कभी उच्च शिक्षा, रोजगार युद्ध, अकाल व महामारी जनसंख्या के बड़े पलायन का कारण बनती है। कारण के अनुरूप ही हमें इसका प्रभाव भी समाज में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही रूपों में देखने को मिलता रहा है। जहाँ सकारात्मक प्रवास के प्रभाव भी सकारात्मक होते हैं, वहीं विपत्ति एवं आपदा में किये जाने वाले प्रवास का नकारात्मक प्रभाव भी समाज पर पड़ता है। भारत में प्रवास की प्रकृति को अभी तक मूल रूप से प्राकृतिक आपदा, गरीबी और भूखमरी से जोड़कर देखा जाता रहा है। इसका कारण भी वाजिब है, क्योंकि भारत की जनगणना 2001 के अनुसार देश की कुल आबादी का 26 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करता है और प्रवास का संबंध इस बड़े भाग से रहा है। भारत में जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ आंकलित की गयी है जिसमें 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जबकि 31.16 प्रतिशत की आबादी शहरों में निवास करती है। स्वतंत्र भारत के प्रथम जनगणना 1951 में गाँवों और शहरों की आबादी का अनुपात 83 प्रतिशत एवं 17 प्रतिशत था। आजाद भारत के छः दशक बाद 2011 की जनगणना में गाँवों और शहरों की जनसंख्या का प्रतिशत 70 एवं 30 प्रतिशत थी। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है, कि भारत में गाँव के व्यक्तियों का शहरों की ओर पलायन बढ़ रहा है।

प्रस्तावना

भारत में प्रवास का जो स्वरूप देखने को मिलता है, वह ग्राम में नगर उत्प्रवास मुख्य है, अर्थात् लोग विभिन्न कारणों से गाँव से शहर की ओर पलायन करते हैं। ऐसी स्थिति में इसका सर्वाधिक प्रभाव भी ग्रामीण समुदाय में ही देखा जा सकता है, यदि हम इसके प्रभाव की व्यापकता पर विचार करते हैं तो इससे बच्चे और वृद्ध ही सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं। एक ओर जहाँ पूरा विश्व भारत को 21वीं सदी के महाशक्ति के रूप में देख रहा है, जिसका कारण भारत में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत दुनिया में सर्वाधिक होना है।

पलायन का अर्थ –

सामान्यतः किसी एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में सापेक्षित स्थायी गमन की प्रक्रिया प्रव्रजन के नाम से जानी जाती है। अन्य शब्दों में मनुष्य के निवास स्थान में परिवर्तन की घटना को ही पलायन कहा जाता है। यह घटना है, जिसमें एक मनुष्य या स्वतः प्राणी अपने मूल निवास आ अपनी जन्मस्थल को छोड़कर एक ऐसे स्थान की ओर गमन करता है। जो उसके लिए बिल्कुल नया होता है और वह व्यक्ति उस जगह के लिए अपरिचित होता है। पलायन सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जो सदियों से चली आ रही है एवं आने वाले सदियों में चलती रहेगी तथा विश्व के समस्त राष्ट्रों एवं राज्यों में यह पाई जाती है तथा सदा पाई जायेगी।

पलायन की परिभाषा –

पलायन शब्द अपने आप में अत्यंत ही व्यापक अर्थ समाये हुए है, अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि पलायन के अर्थ को विधिवत परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किया जाय।

“सामान्यतः किसी एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में सापेक्षतः स्थायी गमन की प्रक्रिया प्रव्रजन के नाम से जानी जाती है। अन्य शब्दों में मनुष्य के निवास स्थान में परिवर्तन की घटना को ही पलायन कहा जाता है।”¹

* एम. ए. (समाजशास्त्र), मालवांचल विश्वविद्यालय, इन्दौर, म0प्र0

** विभागाध्यक्ष—समाजशास्त्र विभाग, मालवांचल विश्वविद्यालय, इन्दौर, म0प्र0

“देशान्तरण निवास स्थान को परिवर्तित करते हुए एक भौगोलिक इकाई से दूसरे भौगोलिक इकाई में विचरण का एक प्रकार है।”²

“यदि किसी स्त्री या पुरुष ने उस स्थान पर जन्म नहीं लिया है, जहाँ कि उसकी गणना की जाय रही हो, अर्थात् यदि उसने जनगणना के स्थान से पृथक किसी स्थान पर जन्म लिया है तो उसे पलायनकर्ता माना जाता है।”³

“चेन्ज आफ रेसीडेन्स फ्राम वन ज्योग्राफिकल एरिया टु एनदर फार ए मोर थन सरटेन स्पेसीफाइड पेरियड आफ टाइम(वन ईयर आर मोर)”⁴

ली (1966) ने पलायन की परिभाषा के संबंध में कहा है कि—“ए परमानेंट आर सेमी-परमानेंट चेन्ज आफ रेसिडेन्स नो रेस्ट्रिक्शन इज पलेसेड अपान द डीस्टेन्स आफ द मोव आर अपान द वैलुन्टरी एण्ड इन वैलुन्टरी नेचर आफ द एक्ट एण्ड नो डिस्टिक्शन इज मेड बीटवीन एक्सटरनल एण्ड इन्टरनल माइग्रेशन।”⁵

एम.एस.ए.राव का मत है, कि प्रवास “गाँव एवं परंपरागत शहर के बीच समरूपताओं का एक अतिसरलीकरण है।”⁶ जबकि पोकोक ने कहा है कि शहरीकरण, पश्चिमीकरण के साथ सह-लक्ष्य नहीं है, उसमें गाँव एवं परंपरागत शहर के बीच समरूपता को अतिसरलीकृत किया। यद्यपि गाँव एवं शहरों में धर्म, जाति एवं 9 नातेदारी सामाजिक संगठन के आधार हैं, दोनों संदर्भों में इनकी कारगुजारी में काफी महत्वपूर्ण अंतर है। उदाहरण के लिए, जजमानी (वंशानुगत सेवाएं) संबंध गावों में प्रचलित थी, महाजन अथवा गण संगठन को शहरों में प्रमुखता प्राप्त था। परंपरागत शहरी संदर्भ में, संस्थागत ढांचा एवं प्रतिबन्ध, जिनमें धर्म, जाति एवं नातेदारी संचालित होते हैं, गावों की भाँति नहीं होते हैं।

अधिकांश विद्वान प्रवासन को अनिवार्यतः एक पुरुष-प्रधान दृश्य घटना के रूप में देखते हैं और इसीलिए ऐसे कुछ ही अध्ययन हुए हैं, जो प्रवासन को एक लिंग परिप्रेक्ष्य से देखते हों। मीनाक्षी थापन ने अपनी नवीन पुस्तक “ट्रांसनेशनल माइग्रेशन एंड पॉलिटिक्स ऑफ आइडेंटिटी” में लिखा है कि प्रवासन का कोई भी सिद्धांत एक समग्रतापरक परिप्रेक्ष्य के लिए प्रजाति, धर्म, राष्ट्रीयता के लिहाज से ही स्पष्टीकरण दे और लिंग पर जो कि काफी कुछ प्रवासन विषयक आरंभिक साहित्य संबंधी है, मूक रहता है। उनका कहना है, कि महिलाओं के प्रवासन संबंधी प्राथमिक शाखा-विस्तार स्वयं प्रवासी महिलाओं के जीवन से परे तक चले गए हैं, जिस पर भी, चूंकि ऐसी महिलाओं का श्रम अप्रवासियों एवं उनके आतिथियों, दोनों के समाजों में पाए जाने वाले लिंग संबंधों को रूप प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण कारक होता है, इससे अनेक मुद्दों को जैसे लिंग समानता, श्रम का पारिवारिक विभाजन और कल्याणकारी विचारों से जुड़ी राज्यी नीतियों को समझने के लिए तरीके सामने आते हैं।

अनुसंधान प्रक्रिया में परिकल्पना की रचना के पश्चात् उसके परीक्षण के लिये संकलित किये गये आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या करने की आवश्यकता होती है। प्रदत्तों की प्राप्ति में व्याख्या और विश्लेषण शोध प्रबंध रूपी मंजिल की ऐसी देहरी होती है, जहाँ खड़े होकर हम उसका एक दृष्टि में निरीक्षण करते हैं, जिसकी सहायता से हम अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

इसी अनुसंधान या शोध अध्ययन में अंतिम कार्य प्रदत्तों की व्याख्या एवं विश्लेषण है। यह वह साधन है, जो शोध कार्य को एक निश्चित रूप प्रदान करता है, जिसकी सहायता से अनुसंधानकर्त्री अपने उद्देश्यों की पुष्टि एवं किसी नियम की सत्यता को सार्थक रूप में व्यक्त करता है।

अनुसंधानकर्त्री के लिए यह आवश्यक होता है कि उसे इस बात की सही जानकारी हो कि उसे अपने अनुसंधान से संबंधित आंकड़े कहाँ से एकत्रित करते हैं। प्राप्त आंकड़ों की संख्या कितनी रहेगी,

1. युनाइटेड नेशन अर्गनाइजेशन रिपोर्ट, 1976-77

2. जे.वी. जोसी एण्ड लोबो नारबर्ट : रुरल एण्ड अरबन माइग्रेशन एण्ड अनइमप्लॉई इन इण्डिया, मोहित पब्लिकेशन न्यू देलही, 2003

3. डी. एस. चौहान : ट्रेण्डस आफ अर्गनाइजेशन, न्यू देलही, एलीड पब्लिकेशर, 1966 पृ0 सं0-285

4. ली इरेट, (एस) : ए थियूरी आफ माइग्रेशन डेमोग्राफी, वैल्यू-3, न0-1, 1966 पृ0 सं0-47-57

5. दैनिक भास्कर, हिन्दी दैनिक समाचार पत्र, रायपुर, 26 दिसम्बर 2000

6. राव (एम.एस.ए.) 1981 : “सम एसपेक्टस आफ सोसियोलाजी आफ माइग्रेशन” सोसियोलाजिकल बुलेटिन, वैल्यू 30, 1 मार्च 1981

अनुसंधान से संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण किस विधि से किया जायेगा, जिससे यह ज्ञात हो सके कि प्रस्तुत परिकल्पनायें स्वीकृत होती हैं अथवा नहीं।

अनुसंधान प्रक्रिया के अंतर्गत प्रदत्तों को समूह और उपसमूह में विभाजित करके उसका विश्लेषण इस प्रकार किया जाना है कि दी गई परिकल्पना या तो स्वीकृत होती है अथवा अस्वीकृत होती है, परिकल्पना की अपुष्टि होने पर उसके कारणों का उल्लेख आवश्यक है।

इस कार्य के अंतर्गत तथ्यों का विश्लेषण करते समय अपने अध्ययन के उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर आवश्यकतानुसार सांख्यिकी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। उन्हें तालिकाबद्ध किया जाता है, व्यवस्थित किया जाता है एवं निष्कर्ष प्राप्त किया जाता है। साथ ही निष्कर्षों की शुद्धता की भी जांच की जाती है।

वैज्ञानिक विश्लेषण अध्ययन के तथ्यों, परिणामों तथा वैज्ञानिक ज्ञान के संबंधों की खोज करता है। आंकड़ों का विश्लेषण कर, एक वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचता है तथा परिकल्पना के परीक्षण में सहायक होती है। विश्लेषण के अभाव में प्राप्त सामग्री की कोई भी उपयोगिता नहीं होती, समस्या के संबंध में निश्चित ज्ञान की प्राप्ति हेतु सामग्री का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रदत्तों के प्राप्ति होने के पश्चात् उसका विश्लेषण किया गया है और बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के कारण पारिवारिक बिखराव की जानकारी प्राप्त कर निष्कर्ष निकाला गया है।

पलायन करने के कारण परिवार विखरने के सन्दर्भ में:-

इस सन्दर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया गया कि क्या पलायन करने के कारण परिवार विखर जाता है? तो अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया है कि पलायन करने के कारण परिवार विखर जाता है। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या- 1 से स्पष्ट होता है।

सारिणी संख्या- 1

पलायन करने के कारण परिवार विखरने के सन्दर्भ में

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	250	(83.33)
नहीं	42	(14.00)
ज्ञात नहीं	8	(2.67)
योग	300	(100.00)

उपरोक्त सारिणी संख्या- 1 से स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले 300 उत्तरदाताओं में से 83.33% उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार विखर जाता है जबकि 14% उत्तरदाता इस तथ्य को अस्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार विखर जाता है एवं 2.67% उत्तरदाता इस तथ्य से अनभिज्ञ है।

इस प्रकार सारिणी संख्या- 1 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार विखर जाता है।

पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा-

इस सन्दर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न किया गया कि क्या पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा होती है? तो अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया है कि पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा होती है। यह तथ्य निम्न सारिणी संख्या- 2 से स्पष्ट होता है।

सारिणी संख्या- 2

पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा होने के सन्दर्भ में

उत्तरदाता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	230	(76.67)
नहीं	52	(17.33)
ज्ञात नहीं	18	(6.00)
योग	300	(100.00)

उपरोक्त सारिणी संख्या संख्या- 2 से स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले 300 उत्तरदाताओं में से 76.67% उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा होती है जबकि 17.33% उत्तरदाता इस तथ्य को अस्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा होती है एवं 6% उत्तरदाता इस तथ्य से अनभिज्ञ है।

इस प्रकार सारिणी संख्या- 2 से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा होती है।

निष्कर्ष-

बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 83.33 उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार बिखर जाता है।

बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन करने वाले सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 76.67 उत्तरदाता इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पलायन करने के कारण परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों की उपेक्षा होती है।

उपरोक्त तथ्यगत विश्लेषणोपरान्त यह स्पष्ट होता है कि पलायन के परिणामस्वरूप बुन्देलखण्ड के गाँव में परिवारों का बिखराव हो रहा है। अतः अध्ययन में निर्मित यह मुख्य उपकल्पना कि "बुन्देलखण्ड के गाँव में पलायन के परिणाम, पारिवारिक बिखराव, शिक्षा से दूरी, सामाजिक कुरीति का बढ़ावा : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन" में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं, सत्य प्रमाणित होता है।

सन्दर्भ-

1. युनाइटेड नेशन अर्गनाइजेशन रिपोर्ट, 1976-77
2. जे.वी. जोसी एण्ड लोबो नारबर्ट : रूरल एण्ड अरबन माइग्रेशन एण्ड अनइमप्लॉई इन इण्डिया, मोहित पब्लिकेशन न्यू देलही, 2003
3. डी. एस. चौहान : ट्रेण्ड्स आफ अर्गनाइजेशन, न्यू देलही, एलीड पब्लिकेशन, 1966 पृ0 सं0-285
4. ली इरेट, (एस) : ए थियूरी आफ माइग्रेशन डेमोग्राफी, वैल्यू-3, न0-1, 1966 पृ0 सं0-47-57
5. दैनिक भास्कर, हिन्दी दैनिक समाचार पत्र, रायपुर, 26 दिसम्बर 2000
6. राव (एम.एस.ए.) 1981 : "सम एसपेक्ट्स आफ सोसियोलाजी आफ माइग्रेशन" सोसियोलाजिकल बुलेटिन, वैल्यू 30, 1 मार्च 1981



औचित्य शब्द की व्युत्पत्ति

उचित के भाव को औचित्य कहते हैं - उचितस्य भावः औचित्यम्। उचित शब्द की निष्पत्ति दिवादि गण में पठित उच् समवाये धातु से निष्ठांत क्त प्रत्यय 'ल' लगकर बना है। 'उचित' शब्द से भाववाचक 'ष्यञ्' प्रत्यय लगाकर 'औचित्य' शब्द साधित किया जाता है। 'उचित' शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण के अनुसार दो धातुओं से सिद्ध की जा सकती है: 'वच्' (परिभाषणे), 'उच्' (समवाये)।³ किन्तु 'उचित' का जो अर्थ आज हम अर्थ ग्रहण करते हैं, (योग्य, अनुरूप) वह न तो 'वच्' (परिभाषणे) (बोलना) से प्राप्त होता है और न ही 'उच्' 'समवाये' (एकत्र करना) से।

क्षेमेन्द्र और औचित्य

आचार्य क्षेमेन्द्र के समय तक काव्य-शास्त्र के प्रमुख पाँच संप्रदायों रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि तथा वक्रोक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित हो चुकी थी, तथापि काव्य के प्रधान और आधारभूत तत्त्व सौन्दर्य के उत्स के सम्बन्ध में अभी तक कोई सर्वसम्मत निर्णय प्रतिष्ठित हो सका था। रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि आदि संप्रदायों के विद्वान् अपने-अपने मत को श्रेष्ठ सिद्ध करके स्वकीय सिद्धांत को प्रमुखता प्रदान करके उसका महिमा मंडन करने के साथ ही अन्य सम्प्रदायों को गौण सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

ग्रन्थ के मंगलाचरण में औचित्यान्वित अच्युत (भगवान् विष्णु) को नमस्कार किया है।⁴ (कारिका 1) यहाँ अच्युत से तात्पर्य है - जो कभी च्युत न हुआ हो (अनौचित्य)। इसी के अनन्तर क्षेमेन्द्र दो पद्यों में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचना की औचित्यता को भी व्यक्त किया है।⁵ (कारिका 2,3) औचित्य को सिद्ध करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र काव्य के जीवित तत्त्व औचित्य को काव्य का सर्वातिशयी तत्त्व स्वीकार किया है।

अनौचित्य का अर्थ है औचित्य का अभाव। क्षेमेन्द्र मानते हैं कि उचित का भाव ही औचित्य है। इसकी व्याख्या करते हुए क्षेमेन्द्र ने कहा है कि जिसके सदृश अर्थात् अनुरूप हो उसको प्राचीन आचार्य उचित कहते हैं। इसी कारण औचित्य को संस्कृत काव्यशास्त्र में व्यापक अर्थों में स्वीकार किया गया है और उसे महत्ता प्रदान की गई है। औचित्य सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य क्षेमेन्द्र 'औचित्यविचारचर्चा' नामक ग्रन्थ में औचित्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं-

उचितं प्रादुराचार्याः सदृशं किलं यस्य यत्।

* शोध छात्र, संस्कृत एन0ए0एस0 कॉलेज, मेरठ

** विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, एन0ए0एस0 कॉलेज, मेरठ

¹ निष्ठा 2/3/102 पाणिनि अष्टध्यायी 2/3/102

² वर्ण दृढादिभ्य ष्यञ् सि० कौ०, 5/1/123

गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च, 3/1/124 पाणिनि अष्टध्यायी

³ जय शङ्कर जोशी, हलायुध कोश, पृ० 86, 165 राधाकान्त देव शब्द कल्पद्रुम, पृ० 220, सवाईलाल वीरा शब्द चिन्तामणि, पृ० 175

⁴ औचित्यविचारचर्चा कारिका 1

⁵ औचित्यविचारचर्चा कारिका 2-3

उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते।⁶

अलङ्कार तो अलङ्कार ही है और गुण भी सत्य, शील आदि गुणों के समान काव्य का स्थिर तत्त्व तो है किन्तु अनश्वर जीवित तत्त्व तो औचित्य ही है। उनका आशय यह है कि परस्पर सहयोगी ललित शब्द और अर्थ को, शरीर धारण करने वाले काव्यगत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, प्रभृति अनेक शब्दालंकारों या अर्थालंकारों कटक, कुंडल, हार आदि लौकिक अलङ्कारों की तरह केवल बाहरी शोभा की ही वृद्धि करते हैं। काव्य में गुण और अलङ्कार दोनों के रहने पर भी काव्य निर्जीव या शोभाविहीन हो सकता है। आचार्य क्षेमेन्द्र रस को महनीय स्थान प्रदान करते हुए कहते हैं कि काव्य में रस की स्थिति वही है जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में पारद रसायन और औचित्य ऐसे रस सिद्ध काव्य का स्थायी जीवन है।⁷

औचित्य के प्रकार

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ औचित्यविचार चर्चा में औचित्य के कुल 27 भेद गिनाये हैं।⁸ औचित्यकार का कहना है कि इसका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। यह न केवल काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में अथवा लोक के प्रत्येक क्षेत्र में ही इसका साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। अतएव इसकी गणना करके निश्चित भेद प्रभेद की गणना करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। तथापि दृष्टान्त के रूप में ग्रन्थकार के द्वारा 27 स्थानों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं।

पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽलङ्करणे रसे ।

क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे ॥ ८ ॥

उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते ।

तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे ॥ ९ ॥

प्रतिभायामवस्थायां विचारनान्यथाशिषि ।

काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम् ॥ १० ॥⁹

1. पद 2. वाक्य 3. प्रबन्धार्थ 4. गुण 5. अलङ्कार 6. रस 7. क्रिया 8. कारक 9. लिङ्ग 10. वचन 11. विशेषण 12. उपसर्ग 13. निपात 14. काल 15. देश 16. कुल 17. व्रत 18. तत्त्व 19. सत्त्व 20. अभिप्राय 21. स्वभाव 22. सारसंग्रह 23. प्रतिभा 24. अवस्था 25. विचार 26. नाम 27. आशीर्वाद ।

इन अट्ठाईस तत्त्वों को सुगमता की दृष्टि से निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(क) शब्द- पद, वाक्य, क्रिया, कारक, लिङ्ग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात ।

(ख) काव्यशास्त्रीय तत्त्व - प्रबन्धार्थ, गुण, अलङ्कार, रस, सार संग्रह, तत्त्व, आशीष, काव्य के अन्य अंग ।

(ग) चरित्र सम्बन्धी - व्रत, तत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, प्रतिभा, विचार नाम ।

(घ) परिस्थिति सम्बन्धी काल, देश, कुल, अवस्था ।

वामनावतरणम् महाकाव्य में औचित्य सम्प्रदाय के भेदों का वर्णन

1. स च ह्योत्तमहासंख पुराऽ

सकृदमन्यत यं रणसम्बलम् ।

⁶ औचित्यविचारचर्चा कारिका 7

⁷ औचित्यविचारचर्चा, 4-5

⁸ काव्यात्ममीमांसा - डॉ श्री जयमंत मिश्र पृ 250

⁹ सरस्वतीकण्ठाभरण 2/11

**स्फुटमभासत सोऽपि विहासको
बलिबलोच्चयजातभियोऽधुना।¹⁰**

प्रस्तुत श्लोक में अभिराज जी द्वारा हयश्रेष्ठ उच्चैःश्रवा की हिनहिनाहट को समर का सम्बल न स्वीकारते हुए पराक्रम सम्भार से उत्पन्न भय वाला हिनहिनाहट के रूप में वर्णित करके भय की परिस्थितिजन्य दशा में व्यक्ति विशेष का विशेष पराक्रम भी जब विशेष प्रभाव उत्पन्न करें। तब वह विशेष गुण व्यर्थ ही हो जाता है। इसी प्रकार का स्वभाविक वर्णन होने से यहाँ स्वभावौचित्य का वर्णन दृष्टिगत होता है।

**2. अभिनन्दन नन्दनकाननम्।
ऋतुसमुह सुखोत्सवभाजनम्।
मनसि सौख्यविभूतिविभावके।
प्रतिगते क्व नु बाह्यविनोदनम्।¹¹**

जब काव्य में प्रयुक्त कोई विशेषण उचित प्रयोग के कारण काव्य में उत्कर्ष का साधन बने तो वहाँ विशेषणौचित्य भेद होता है। प्रस्तुत श्लोक में मन के प्रतिमानी होने पर सुख ऐश्वर्य का अनुभूति का विषय न बनने का वर्णन किया गया है। यह विदित है कि विषय इन्द्रिय गत संयोग होने पर भी मन के चैतन्यगत न होने पर ही अपने विषय का ज्ञान कर पाने में समर्थ होते हैं, यदि तत्समय मन व्यक्ति के वश में हो या कही हो तो वह विषयगत ज्ञान सम्भव नहीं होता।

**3. अतो देयमस्मै द्विजत्व प्रतीकं
शुभं यज्ञसूत्र सुसंस्कार पूतम्।
भवेद्येन बालौ न विभ्रष्ट चितो।**

जहाँ पर कवि के द्वारा किसी विशेष वाक्य के प्रयोग से काव्य में औचित्यता का प्रस्फुटन कराते हुए सौन्दर्य का अभिवर्धन कराए। वहाँ वाक्यगत औचित्य होता है। प्रस्तुत उदाहरण में चित की वृत्ति ही सबका प्रमाण है। (यतश्चित्त०) चित्त की महत्ता सिद्ध करते हुए बालक के मन को दुषित होने से पूर्व ही उसका यज्ञोपवीत कराके ही मन की पवित्रता को बनाये रखना ही सम्भव है। इस से यहाँ वाक्यगत अर्थ को बोध्यता सिद्ध होती है। अतः यहाँ वाक्यगत औचित्य दिखता है।

**4. प्रवाहे सरितां यद्वद बुदबुदावर्तवीचयः।
जीव्जेऽपि तथा नृणां सुखदःखादिभावना।¹²**

जहाँ क्रियाओं के प्रयोग में औचित्य का निर्वाह कर काव्य को मनोहारी बनाया जाता है वहाँ क्रिया औचित्य होता है। उपर्युक्त पदांश में नदी के प्रवाह क्रिया के दौरान बनने वाले बुलबुले, जलावर्त तथा तरंग आदि अवस्थाओं के माध्यम से मनुष्य के जीवन में आने वाली सुख एवं दुःख की अवस्थाओं या संवेदनाओं का बोध कराने से यहाँ क्रिया औचित्य दृष्टिगत होता है।

**5. मानार्थिनां सद्यशसां कुले त्वं।
जातोऽसि निश्चप्रचमूर्ध्व कीर्तिः॥
वज्राकरे जायत एव वज्रं।**

¹⁰ वा० अ० ४/४

¹¹ वा० अ० ४/५

¹² वा० अ० ६/४८

लौहागमस्यास्ति न तत्र शङ्का।¹³

जहाँ किसी देश-गत विशेषता या देशगत वर्णन के औचित्यपूर्ण प्रयोग से काव्य के सौंदर्य में वृद्धि होती है, वहाँ देशगत औचित्यता होती है। प्रस्तुत पद में कहा गया है कि मानार्थियों में वंश या कुल में उच्च गुणों वाले व्यक्ति ही उत्पन्न होते हैं, साधारण मनुष्य नहीं। जैसे हीरे की खान से हीरा ही निकलता है लोहा नहीं। अतः यहाँ देशगत औचित्यता है।

6. सुदर्पणः प्रोञ्छितधुलिकल्पो
यथैति बिम्बग्रहणक्षमात्वम्।
तथैव शुक्रोदधतविष्णुतत्वो
यथार्थतो वेद हरि नरेन्द्र।।
यथा च मेधावरणेऽवलुप्ते।
नमोऽङ्गणे साधु चकास्ति सूर्यः।
तथैव मायावरणेऽवलुप्ते
चकासयामास बलौ परेशः।।¹⁴

जहाँ अलङ्कार के प्रयोग द्वारा कोई वस्तु, भाव या विचार विशेष प्रभाव से चमत्कार उत्पन्न हो, वहाँ अलङ्कारौचित्य होता है। क्षेमेन्द्र इस सम्बन्ध में स्वयं लिखते हैं कि अर्थगत औचित्य से परिपूर्ण अलङ्कार योजना से उक्ति उसी प्रकार सुशोभित हो जाती है, जैसे उत्तुंग पयोधर पर स्थित तरल घर से मृगलोचना रमणी।

अर्थाचित्यवता सुक्तिरलंकारेण शोभते।

जीन स्तनस्थितेनेव हारेण हरिणक्षणा। (औचित्यविचारचर्चा)

दोनों पदों के माध्यम से कवि यहाँ यह बोध करना चाहता है कि जब मनुष्य को विवेक हो जाता है तो उसका सत्यार्थ का बोध हो जाता है। उपर्युक्त पदांश में कवि के द्वारा अलङ्कार योजना के औचित्यपूर्ण प्रयोग से यहाँ अलंकारौचित्य है।

7. न वेद किञ्चिद् बलिरन्यदेव।
हरीत रज्जान विवर्त शून्यः।।
निभील्य नेत्र द्वयमन्तरस्थं।
स पद्मनाभं निपर्या प्रकामम्।

रसौचित्य से तात्पर्य - काव्य में रस के औचित्यपूर्ण प्रयोग से है। जब काव्य में किसी रस के औचित्यपूर्ण प्रयोग के कारण काव्य में रमणीयता एवं प्रभावोत्पादकता आती है। वहाँ रसौचित्यता होती है। बलि का दर्प शून्य होने तथा भगवान विष्णु के विराट स्वरूप को देखकर उसके अज्ञान का दूर हो जाने से वह विष्णुमय हो जाता है। अतः शान्तरस के औचित्यपूर्ण प्रयोग के कारण यहाँ रसौचित्य भेद है।



¹³ वा0 अ0 9/3

¹⁴ वा0 अ0 11/41-42

महिलाओं के स्वास्थ्य पर अकेलापन के प्रभाव का अध्ययन

कुमारी ममता*

प्रो० (डॉ०) पूनम सिंह**

शोध-सारांश

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के स्वास्थ्य पर अकेलापन के प्रभाव का अध्ययन करना था। इसके लिए सारण (ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों) से कुल मिलाकर 220 महिलाओं का उद्देश्यात्मक चयन पद्धति के आधार पर उत्तरदाता के रूप में चयनित किया गया। प्रवीण झा द्वारा विकसित अकेलापन मापनी, विग एवं वर्मा द्वारा विकसित स्वास्थ्य मापनी एवं स्वयं शोधार्थी द्वारा विकसित व्यक्तिगत सूचना-प्रपत्र को उत्तरदाताओं के उपर प्रशासित करते हुए प्रदत्त संग्रह का कार्य किया गया। संग्रहित प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर पाया गया कि (i) अकेलापन एवं स्वास्थ्य के बीच नकारात्मक सहसंबंध होता है (ii) उच्च स्तर के अकेलापन वाले उत्तरदाताओं में निम्न स्वास्थ्य स्तर एवं निम्न स्तर के अकेलापन वाले उत्तरदाताओं में बेहतर स्वास्थ्य होता है (iii) ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं में अकेलापन का स्तर भिन्नात्मक रूप में होता है एवं (iv) महिलाओं के अकेलापन पर उसके कार्यरत होने संबंधी कारक का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

शब्द-कुंजी : महिलाओं, अकेलापन, स्वास्थ्य, प्रभाव, अध्ययन

परिचय :

अकेलापन अलगाव के प्रति एक अप्रिय भावनात्मक प्रतिक्रिया है, जो व्यक्ति को नकारात्मक तरीके से प्रभावित करती है। अकेलापन एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति दूसरों के साथ अंतर्व्यक्तिक अनुक्रिया से बचना चाहता है और संबंध एवं अंतरंगता की कमी से जुड़ा होता है। एक व्यक्ति जब अकेले रहता है तो वह अकेलापन का अनुभव करता ही है लेकिन जब व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के बीच रहता है, तब भी वह अकेलेपन का अनुभव करता है।

अकेलापन के संबंध में विभिन्न शोधों का परिणाम बतलाता है कि, अकेलापन 33-55 प्रतिशत तक वंशानुगत होता है। इसके अतिरिक्त कहा गया है कि सभी प्रकार की स्थितियाँ एवं घटनाएँ अकेलापन का कारण बन सकती हैं। सामान्य रूप से अकेलापन से जैसे व्यक्ति भी प्रभावित होते हैं जो अति संवेदनशील अथवा बहिर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्ति हमेशा लोगों के बीच रहकर अनुक्रियात्मक व्यवहार एवं बातचीत करना चाहते हैं। लेकिन जब इन्हें अपने व्यक्तित्व-गुणों के अनुरूप परिस्थिति नहीं मिलती है, तो वह अकेलापन का शिकार हो जाता है।

अकेलापन को रिश्ते में नुकसान के परिणाम के रूप में देखा जाता है। इस संबंध में विशेषज्ञों का परामर्शन है कि, जिस व्यक्ति का उसके परिवार, समाज, समुदाय इत्यादि के साथ संबंधों में किसी कारणवश नुकसान होता है, तो वह अकेलापन महसूस करने लगता है। इसके अलावे घर से दूर नौकरी करना, घर की याद आना, सांस्कृतिक-भाषाई भिन्नता, सामाजिक दायरा में व्यवधान आना, अति सतर्कता इत्यादि को भी अकेलापन का माध्यम माना गया है। मानव जीवन में अकेलापन की इसी अवधारणा एवं स्वरूप की महत्ता को समझते हुए शोध कार्य करने का निर्णय किया गया है।

स्वास्थ्य मानवीय जीवन का महत्वपूर्ण आयाम होता है। यह हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्नायु का संतुलन होता है, जो हमारे जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। स्वास्थ्य का अर्थ सिर्फ बीमार होना नहीं है, बल्कि जीवन की विभिन्न पहलुओं का सम्मिलन होता है, जो हमारे जीवन को सुखमय और सफल बनाता है।

मानवीय स्वास्थ्य की अवधारणा के संबंध में कहा गया है कि "मानवीय स्वास्थ्य सिर्फ बीमारी या दुर्बलता की स्थिति नहीं होती है, बल्कि पूर्ण शारीरिक-मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति होती है।"

* शोध प्रज्ञ (मनोविज्ञान), जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

** विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

मानव का स्वास्थ्य पर्यावरण, भोजन, जीवनशैली एवं मनोवैज्ञानिक कारकों से प्रभावित होता है। इस संदर्भ में शोधात्मक अध्ययन के आधार पर बताया गया है कि मनुष्य का स्वास्थ्य 'अकेलापन' से संबंधित कारक से प्रभावित होता है। व्यक्ति जब किसी कारणवश अकेलापन का अनुभव करता है, तो उसकी प्रतिक्रिया उसके शारीरिक-मानसिक पटल पर पड़ता है और अकेलापन से ग्रसित होता है। इस तरह, इस शोध में स्वास्थ्य को एक स्वतंत्र चर के रूप में सम्मिलित किया गया है।

पूर्व के अध्ययनों की समीक्षा :

प्रस्तुत शोध में सही दिशा में शोध कार्य करने हेतु कुछ पूर्व के अध्ययनों का अवलोकन भी किया गया है। अकेलापन के संबंध में मलहोत्रा इत्यादि (2009) ने अध्ययन किया है और परिणाम के रूप में पाया है कि व्यक्तियों में अकेलापन उसमें मादक द्रव्यों एवं गंभीर जखम एवं यौनिक क्रिया से सार्थक रूप से सहसंबंधित होती है।

वांग इत्यादि (2018) ने अकेलापन, मानसिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक समर्थन आधारित एक माननीकृत अध्ययन में पाया है कि मानसिक स्वास्थ्य का स्तर अकेलापन आधारित कारक से सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है एवं विभिन्न प्रकार की मानसिक स्तर की समस्याएँ उत्पन्न करती है।

एक अन्य अध्ययन में प्रतिमा एवं महानंदा (2021) ने व्यावसायिक पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों में अकेलापन का अध्ययन किया है और पाया है कि परिवार, समाज, प्रत्याशा इत्यादि अप्रत्यक्ष रूप से अकेलापन को प्रभावित करती है। साथ ही, इन्होंने युवाओं के अकेलापन में इन कारकों का सार्थक प्रभाव पाया है।

बोलेन इत्यादि (2022) ने वृद्धजनों के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर अकेलापन के प्रभाव का अध्ययन किया है और परामर्शन किया है कि वृद्धावस्था में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य अकेलापन संबंधी कारक से नकारात्मक एवं सार्थक रूप से प्रभावित होता है।

विलकोज इत्यादि (2023) ने कोविड-19 के बाद की अवधि में डर, अकेलापन, खुशी और मानसिक स्वास्थ्य का सांस्कृतिक अध्ययन किया है और परिणाम के आधार पर बताया है कि, कोविड-19 के डर के साथ मानसिक स्वास्थ्य नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। इसके अलावे खुशी, सामाजिक स्वास्थ्य इत्यादि का स्तर भी नकारात्मक रूप से अकेलापन के साथ सहसंबंधित पाया गया।

शोध का उद्देश्य :

वर्तमान शोध का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर पर अकेलापन के प्रभाव का अध्ययन करना था।

परिकल्पनाएँ :

- अकेलापन एवं स्वास्थ्य के बीच नकारात्मक सहसंबंध होगा,
- अकेलापन के भिन्नात्मक स्तर का महिलाओं के स्वास्थ्य पर भिन्नात्मक प्रभाव होगा,
- ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं में अकेलापन के स्तर में भिन्नता होगी,
- महिलाओं में अकेलापन का स्तर उसके कार्यशील होने संबंधी कारक से प्रभावित होगा।

प्रविधि :

(i) प्रतिदर्श :

प्रस्तुत शोध में सारण जिला के ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों से मिलाकर कुल 220 महिलाओं को प्रतिदर्श के रूप में चयनित किया गया। चयनित प्रतिदर्शों की उम्र 25 वर्ष से लेकर 35 वर्ष (औसत उम्र 30 वर्ष) थी।

(ii) **प्रतिदर्शन की विधि :** प्रतिदर्शों के चयन में उद्देश्यात्मक प्रतिदर्शन विधि का पालन किया गया।

(iii) मापनियाँ :

- प्रवीण झा द्वारा विकसित अकेलापन मापनी
- विग एवं वर्मा द्वारा विकसित स्वास्थ्य मापनी एवं
- स्वयं शोधार्थी द्वारा विकसित व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र

प्रदत्त संग्रह की प्रक्रिया :

प्रस्तुत शोध में उत्तरदाताओं से प्रदत्त संग्रह के लिए शोधार्थी द्वारा योजना बनाया गया। इसके बाद चयनित उत्तरदाताओं से अध्ययन क्षेत्र का भ्रमण करते हुए उत्तरदाताओं से उनसे मिलने का प्रयोजन बताया गया और उन्हें प्रदत्त संग्रह की गोपनीयता रखने के लिए आश्वस्त किया गया। शोधार्थी द्वारा निर्धारित तिथि, समय एवं स्थान पर चयनित मापनियों को प्रशासित करते हुए प्रदत्त संग्रह का कार्य किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण :

संग्रहित किए गए प्रदत्तों का सहसंबंधात्मक एवं तुलनात्मक सांख्यिकीय पद्धति के आधार पर विश्लेषित करते हुए समसामयिक संदर्भ में परिणाम तैयार किया गया।

परिणाम :**सारणी संख्या-(i)****अकेलापन एवं स्वास्थ्य के बीच सहसंबंधात्मक परिणाम**

मापनी	स्वास्थ्य स्तर	सार्थकता स्तर
अकेलापन आंकड़ा (उच्चतम स्तर) .84	0.49	<.01

सारणी संख्या-(ii)**महिलाओं के स्वास्थ्य पर अकेलापन का भिन्नात्मक स्वरूप का प्रभाव संबंधी परिणाम**

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी-मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
उच्च स्तर के अकेलापन वाले महिलाएँ	106	18.97	2.69	4.39	<.01	206
निम्न स्तर के अकेलापन वाले महिलाएँ	102	21.43	4.77			

सारणी संख्या-(iii)**महिलाओं के अकेलापन पर आवास संबंधी कारक का प्रभाव आधारित परिणाम**

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी-मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
शहरी उत्तरदाताएँ	110	21.43	3.17	4.98	<.01	218
ग्रामीण उत्तरदाताएँ	110	24.12	4.69			

सारणी संख्या-(iv)**उत्तरदाताओं के अकेलापन स्तर पर कार्यशील होने संबंधी कारक के प्रभाव का अध्ययन संबंधी परिणाम**

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी-मूल्य	सार्थकता का स्तर	स्वतंत्रता का अंश
कार्यरत उत्तरदाताएँ	102	23.76	4.14	5.01	<.01	190
गैर कार्यरत उत्तरदाताएँ	90	27.57	6.22			

व्याख्या :

सारणी संख्या (i) में वर्णित परिणाम के अवलोकन से स्पष्ट है कि, जब उत्तरदाताओं में अकेलापन का स्तर बढ़ता है तो उसका स्वास्थ्य स्तर नीचे गिरता है, अर्थात् अकेलापन का बढ़ा हुआ स्तर स्वास्थ्य स्तर को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इस परिणाम के संबंध में कहा जा सकता है कि, अकेलापन महिलाओं को मानसिक एवं शारीरिक दोनों रूप से कमजोर बनाती है और उसे अस्वस्थ करती है जिससे उसका सम्पूर्ण स्वास्थ्य स्तर नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। अतः इस संबंध में पूर्व में बनाई गई परिकल्पना संख्या (i) कि "अकेलापन एवं स्वास्थ्य के बीच नकारात्मक सह संबंध होगा" प्रमाणित होती है।

सारणी संख्या (ii) में प्रस्तुत किए गए परिणाम के अवलोकन से स्पष्ट है कि जहाँ उच्च स्तर के अकेलापन स्तर वाले उत्तरदाताओं ने स्वास्थ्य मापनी पर निम्न माध्य (18.97) एवं मानक विचलन (2.69) प्राप्त किया है, वहीं निम्न अकेलापन वाले उत्तरदाताओं ने स्वास्थ्य मापनी पर अधिकतम माध्य (21.43) एवं माध्य (4.77) प्राप्त किया है। साथ ही, परिकल्पित टी-मूल्य (4.39) विश्वास के <.01 स्तर पर सार्थक पाया गया है। इस परिणाम के आधार पर स्पष्टतः कहा जा सकता है, कि अकेलापन का स्तर बढ़ने से महिलाओं में स्वास्थ्य स्तर गिरता है, एवं अकेलापन का स्तर अपेक्षाकृत कम होने पर स्वास्थ्य स्तर अपेक्षाकृत ठीक रहता है। अतः यह परिणाम पूर्व में बनाई गई परिकल्पना संख्या (ii) कि "अकेलापन के भिन्नात्मक स्तर का महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर पर भिन्नात्मक प्रभाव होगा" प्रमाणित होती है।

सारणी संख्या—(iii) में उपस्थापित किये गये परिणाम के अवलोकन के आधार पर कहा जा सकता है कि, महिलाओं के अकेलापन के स्तर को उसकी आवास संबंधी कारक का सार्थक प्रभाव होता है, क्योंकि शहरी उत्तरदाताओं ने जहाँ अकेलापन मापनी पर कम माध्य (21.43) एवं मानक विचलन (3.17) प्राप्त किया है, वहीं ग्रामीण उत्तरदाताओं ने अपेक्षाकृत अधिक माध्य (24.12) एवं मानक विचलन (4.69) प्राप्त किया है। साथ ही, इन दोनों समूहों के द्वारा प्राप्त माध्य एवं मानक विचलनों के आधार पर परिकलित टी मूल्य (4.98) विश्वास के $<.01$ स्तर पर सार्थक पाया गया है। इस परिणाम के आधार पर स्पष्ट है कि आवास संबंधी (ग्रामीण एवं शहरी) कारक महिलाओं के अकेलापन स्तर को सार्थक रूप से प्रभावित करती है। अतः इस संदर्भ में पूर्व में बनाई गई परिकल्पना संख्या (iii) कि “ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं के अकेलापन स्तर में सार्थक भिन्नता होगी” प्रमाणित होती है।

सारणी संख्या (iv) में वर्णित परिणाम के अध्ययन से स्पष्ट है कि महिलाओं के कार्यशील होने अथवा कार्यशील नहीं होने संबंधी कारक से अकेलापन का स्तर सार्थक रूप से प्रभावित होता है, क्योंकि कार्यरत महिलाओं ने गैर कार्यरत महिलाओं की अपेक्षा अकेलापन मापनी पर कम माध्य एवं मानक—विचलन महिलाओं की अपेक्षा अकेलापन मापनी पर कम माध्य एवं मानक—विचलन (क्रमशः 23.76 एवं 4.14) प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त परिकलित टी—मूल्य (5.01) विश्वास के $<.01$ स्तर पर सार्थक भी पाया गया है। इस तरह, इस संदर्भ में पूर्व में बनाई गई परिकल्पना संख्या iv कि “महिलाओं में अकेलापन का स्तर उसके कार्यशील होने संबंधी कारक से प्रभावित होगा” प्रमाणित होती है।

शोध का सारांश :

- (i) अकेलापन एवं मानवीय स्वास्थ्य के बीच नकारात्मक सहसंबंध होता है अर्थात् अकेलापन बढ़ने पर मानवीय स्वास्थ्य घटता है एवं अकेलापन घटने पर मानवीय स्वास्थ्य बेहतर होता है।
- (ii) महिलाओं के मानवीय स्वास्थ्य पर अकेलापन का भिन्नात्मक प्रभाव पड़ता है अर्थात् उच्च स्तर के अकेलापन वाले महिलाओं का स्वास्थ्य स्तर निम्न स्तर के अकेलापन वाले महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर की अपेक्षा निम्न होता है,
- (iii) ग्रामीण उत्तरदाताओं में अकेलापन का स्तर अधिक होता है, जबकि शहरी उत्तरदाताओं में अकेलापन का स्तर अपेक्षाकृत कम होता है एवं
- (iv) महिलाओं में अकेलापन का स्तर उसके कार्यरत होने अथवा नहीं होने संबंधी कारक से सार्थक रूप से प्रभावित होता है। इस संदर्भ में गैर कार्यरत महिलाओं में अकेलापन का स्तर अधिक एवं कार्यरत महिलाओं में अकेलापन का स्तर अपेक्षाकृत कम होता है।

परामर्शन :

प्रस्तुत शोध में परामर्शन के रूप में कहा जा सकता है कि अकेलापन का भिन्न—भिन्न स्तर मानवीय स्वास्थ्य को सार्थक रूप से प्रभावित करती है एवं आवास संबंधी कारक एवं कार्यरत होने अथवा नहीं होने संबंधी कारक से सार्थक रूप से प्रभावित होती है। अतः महिलाओं के संदर्भ में अकेलापन एक महत्वपूर्ण संदर्भ है जिससे उसका स्वास्थ्य (शारीरिक एवं मानसिक दोनों) निश्चित रूप से प्रभावित होती है। अतः महिलाओं के उत्तर स्वास्थ्य एवं अकेलापन के न्यूनीकरण के लिए व्यापक स्तर पर शोध कार्य करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :

क्लिनकोज, वी०, त्रजेपिस्का, जी०, स्टाईक वो० एवं इस्क्रा, जे० (2023) : कोविड-19 के बाद की अवधि में डर, अकेलापन, खुशी और मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन, मनोवैज्ञानिक अनुसंधान और व्यवहार प्रबंधन, वॉल्युम-16, अंक-1
 प्रतिमा, के०एम० एवं महानंदा, एम० (2021) : व्यावसायिक पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों में अकेलापन के स्तर का शोधात्मक अध्ययन, सामाजिक अध्ययन से संबंधित दक्षिण एशियाई पत्रिका, वॉल्युम-2, न०-2
 मलहोत्रा, एस०, कांत, एस०, अहमद, एफ०, रथ, आर०, कलादीवानी, एम० (2012) : स्वास्थ्य व्यवहार उसका परिणाम और युवा व्यक्ति के साथ संबंध, वॉल्युम-14
 वांग, जे०, लॉयड—इवास बी०, आर०, जॉनसन, एस० (2018) : अकेलेपन और कथित सामाजिक समर्थन और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के परिणामों के बीच संबंध : एक व्यवस्थित समीक्षा, 18(1) : 156
 वोलन, एफ०एच०, माटुक, आई०, वाइल्ड वी (2022) : वृद्धजनों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर जीवन, गुणवत्ता पर अकेलापन के प्रभाव का अध्ययन, जीवन गुणवत्ता आधारित शोध पत्रिका, वॉल्युम-31

प्राचीन भारत में विवाह : अवधारणा एवं प्रकार

रोहित बाजपेयी*

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विवाह को एक महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य के रूप में देखा जाता था, जिसका लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से महत्व था। विवाह संस्था के विकास तथा इसके सुचारु संचालन के लिए संस्थागत रूप में इसकी उपादेयता को ऐतिहासिक काल से देखा जा सकता है। विवाह से ही परिवार का प्रारम्भ होता है। विवाह के बाद ही पुरुष एवं स्त्री के जीवन से कामाचार समाप्त होकर विधि एवं परम्परा द्वारा एक मर्यादित नवीन जीवन प्रारम्भ होता है। इस नवीन जीवन में वे एक दूसरे का तथा अपनी संतानों के प्रति अधिकारों एवं कर्तव्यों का पालन करते हैं। विवाह केवल शारीरिक आवश्यकता ही नहीं वरन एक आध्यात्मिक व्यवस्था भी है, क्योंकि शारीरिक सम्बन्ध आध्यात्मिक सम्बन्ध के बिना अपूर्ण माने जाते हैं। विवाह जैसी संस्था के उदय के पूर्व के समाज में स्वेच्छाचारिता व्याप्त थी। इस स्वच्छंदता को समाप्त करने के लिए उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने विवाह संस्था की स्थापना की। ऋग्वेद में विवाह संस्था पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित दिखाया गया है। यद्यपि यह संभव है कि विवाह जैसी संस्था को महत्व देने के उद्देश्य से इसे धार्मिक स्वरूप प्रदान किया गया हो, क्योंकि विवाह संस्था की वैधता स्वेच्छाचारिता की सीमाओं के संकुचन की ही परिणाम है तथा इसे अधिक वैधानिक एवं सामाजिक बनाने के उद्देश्य से इस प्रकार की परिकल्पना की गई।

प्राचीन भारतीय समाज में विवाह संस्कार को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के रूप में देखा जाता था। बिना धार्मिक संस्कारों को सम्पन्न किए विवाह को एक बन्धन के रूप में माना जाता था। विभिन्न धर्मग्रंथों में आठ प्रकार के विवाह का उल्लेख किया गया है, जो कि अनेक देवताओं एवं अलौकिक प्राणियों के नाम पर रखे गए हैं। ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, गन्धर्व, असुर, राक्षस तथा पैशाच विवाह का प्रचलन प्राचीन भारतीय समाज में देखने को मिलता है। इनमें से कुछ विवाहों का मूल वैदिक ग्रंथों में मिलता है तथा कुछ का उल्लेख परवर्ती कालीन ग्रंथों में। प्रारम्भिक गृह्यसूत्रों में केवल एक प्रकार के विवाह का उल्लेख मिलता है, जिसका कोई नाम नहीं था। मानव गृह्यसूत्र में ब्रह्म एवं शौल्क विवाह का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम आश्वलायन गृह्यसूत्र में विवाह के आठों प्रकार का उल्लेख मिलता है।¹ इन आठ प्रकार के विवाहों में ब्रह्म, दैव, आर्ष तथा प्रजापत्य को सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता था तथा इन्हें प्रशस्त श्रेणी में रखा गया था। इन विवाहों में पिता का कन्या पर पूर्ण नियंत्रण होता था। गन्धर्व, असुर, राक्षस एवं पैशाच विवाह को अप्रस्त विवाह की श्रेणी में रखा जाता था। महाभारत में भी इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया गया है। विभिन्न धर्मशास्त्रकारों ने आठों प्रकार के विवाह का इसलिए उल्लेख किया है, क्योंकि इन सभी का समाज में प्रचलन था तथा किसी न किसी रूप में यह व्यवहृत किए जाते थे।

ब्राह्म विवाह : भारतीय समाज में प्रचलित विभिन्न विवाह प्रकारों में ब्रह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। मनुस्मृति के अनुसार वर एवं कन्या को वस्त्रालंकार देकर वर को बुलाकर कुछ उपहारों के साथ कन्यादान करता था, तो वह ब्रह्म विवाह कहलाता था। ऋग्वेद में सोम एवं सूर्या का विवाह इसी प्रकार से हुआ था। महाभारत में भीष्म भी कन्या को यथाशक्ति वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर वर को अपने घर बुलाकर उसे धन देने के साथ ही कन्यादान करने को उत्तम विवाह मानते हैं।² इस प्रकार के विवाह में कन्या को दान की वस्तु समझा जाता था। इस प्रकार के विवाह में वर को यह प्रतिज्ञा लेनी होती थी कि वह अपनी पत्नी के साथ जीवन पर्यन्त रहेगा। इस प्रकार के विवाह में आवश्यक था जिस व्यक्ति को कन्या का दान किया जा रहा है, वह सभी गुणों से परिपूर्ण हो। पिता अपनी पुत्री के हितों का ध्यान रखते हुए उसके लिए सर्वश्रेष्ठ वर का चुनाव करता था।

दैव विवाह : जब कोई गृहस्थ अपनी कन्या का विवाह यज्ञकर्ता पुरोहित के साथ उसकी दक्षिणा के भागस्वरूप कर देता था, तो उसे दैव विवाह कहा जाता था। इसका नामकरण इस कारण से पड़ा कि देवों के यज्ञ के अवसर पर यह विवाह निश्चित होता था। इस प्रकार के विवाह में कन्या यज्ञ में पौरिहृत्य करने वाले ऋत्विज को प्रदान की जाती थी। यदि यज्ञ करने वालों में अनेक पुरोहित हो तो कन्या उस पुरोहित को प्रदान की जाती थी, जो सर्वश्रेष्ठ विधि से यज्ञ का सम्पादन करवाता था।³ चौथी शताब्दी ई० पू० तक वैदिक यज्ञों का प्रचलन अधिक मिलता है तथा कई सप्ताहों तक चलने वाले यज्ञों का आयोजन किया जाता था। इतने लम्बे समय में वधु का पिता वर के चरित्र तथा योग्यता की दृष्टि से अपनी वयस्क पुत्री के लिए वर का चयन कर लेता था। यह विवाह पद्धति ब्रह्म विवाह की अपेक्षा निम्न मानी जाती थी।

* शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

आर्ष विवाह : इस प्रकार के विवाह में वधु का पिता वर से धार्मिक यज्ञों का सम्पादित करने के लिए एक गाय एवं एक बैल प्राप्त करता था।⁴ यह उपहार जो कि वर द्वारा वधु के पिता को प्रदान किया जाता था, वह एक प्रकार से वधु के मूल्य का चिन्ह माना जाता था, जिसके कारण समाजिक रूप से बहुत अधिक प्रशंसनीय नहीं माना जाता था। इस विवाह के सम्बन्ध में जैमिनी ने कहा है कि वर द्वारा धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कराने के दान को वधु मूल्य के रूप में नहीं देखा जा सकता है। मनुस्मृति में इस प्रकार के विवाह की निन्दा की गई है। इसमें कहा गया है कि कन्या का कुछ भी मूल्य ग्रहण करने वाला कन्या का विक्रय करने वाला कहलाता है। याज्ञवल्क्य ने भी इस प्रकार के विवाह का विरोध किया है। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में विवाह के अवसर पर एक गाय और एक बैल दान में दिए जाते थे।⁵ इससे यह स्पष्ट होता है कि चौथी शताब्दी ई० पू० में इस प्रकार के विवाह का प्रचलन था।

प्रजापत्य विवाह : इस प्रकार के विवाह में कन्या का पिता न तो दहेज के रूप में कुछ देता था तथा न ही कन्या के मूल्य के रूप में कुछ स्वीकार करता था। इसमें मात्र यह आदेश दिया जाता था कि तुम दोनों साथ – साथ धर्म का पालन करो। मनुस्मृति में इस प्रकार के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब कन्या का पिता सुयोग्य वर को कन्या का दान इस उद्देश्य से करता है कि वर एवं कन्या सहचर्य का पालन करते हुए प्रजात्पादन करे, तो वह प्रजापत्य विवाह कहलाता था।⁶ जनक द्वारा सीता को सहधर्मिणी के रूप में राम को अर्पित करना इसी प्रकार के विवाह की श्रेणी में आता है। याज्ञवल्क्य का मत है कि इस प्रकार के विवाह का उद्देश्य यह होता है कि पति एवं पत्नी दोनों अपने नागरिक एवं धार्मिक कर्तव्यों का साथ – साथ पालन करें। कालिदास ने इस विवाह पद्धति को सर्वश्रेष्ठ माना है। रघुवंश में अज एवं इन्दुमती का विवाह इसी पद्धति से ही दिखाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में इस प्रकार के विवाह को विशेष रूप से प्रशंसनीय माना जाता था।

गान्धर्व विवाह : इस प्रकार के विवाह में वर एवं कन्या एक दूसरे पर आसक्त होकर विवाह कर लेते हैं। यह विवाह केवल विश्वास के आधार पर ही सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के विवाह सामान्य रूप से गुप्त रीति से किया जाता था। इस प्रकार के विवाह को प्रणय विवाह भी कहा जा सकता है। वैदिक काल में गान्धर्व विवाह का प्रचलन मिलता है, क्योंकि इस काल में युवको एवं युवतियों का विवाह पूर्ण यौवन की स्थिति में होता था। ऋग्वेद में वह वधु भद्रा कहलाती थी जो सुन्दर वेश भूषा से अलंकृत होकर पुरुषों के मध्य स्वयं अपन वर चुनती थी।⁷ ऋग्वेद में अनेक उत्सवों एवं समारोहों का उल्लेख मिलता है, जिसमें कन्याएँ अपना पति स्वयं ढूँढ लेती थीं। बौद्ध साहित्य एवं जैन साहित्य में गान्धर्व विवाह के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि जब वर एवं कन्या परस्पर स्वेच्छापूर्वक संयोग करते हैं, तो वह गान्धर्व विवाह कहलाता है।⁸ रामायण में इस प्रकार के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि अनेक कामाशक्त रमणीया स्वेच्छा से आकर रावण की पत्नी बन जाती थी। सूर्यपुत्र का वन में राम एवं लक्ष्मण से प्रणय निवेदन इसी श्रेणी में आता है। महाभारत में इस प्रकार के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि जो स्त्री एवं पुरुष एक दूसरे से प्रेम करते हैं तथा दोनों एकान्त में मंत्रहीन सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, उसे गान्धर्व विवाह कहा जाता है।⁹ दुष्यन्त एवं शकुन्तला का विवाह गान्धर्व विवाह की श्रेणी में आता था।

गान्धर्व विवाह के धर्मसम्मत होने अथवा न होने के सम्बन्ध में प्राचीन धर्मशास्त्रकारों में मतभेद देखने को मिलते हैं। बौधायन धर्मसूत्र में इस विवाह का समर्थन किया गया है। वात्स्यायन के कामसूत्र में इसे आदर्श विवाह के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। महाभारत में एक स्थान पर इसे प्रशस्त विवाह की श्रेणी में रखा गया है। यद्यपि मनु इसके विषय में मौन है।

असुर विवाह : जब वधु को उसके पिता से मूल्य देकर विवाह किया जाता था, तो वह असुर विवाह की श्रेणी में आता था। सभी धर्मग्रंथों में इस प्रकार के विवाह को निकृष्ट कोटि में रखा गया है। अर्थशास्त्र में इस प्रकार के विवाह को अनुमति प्रदान की गई है। यह इस बात का प्रमाण है कि कय द्वारा तथा दहेज सहित रुढ़िवादी विवाह वैदिक काल में भी विद्यमान थे। यद्यपि इसे आर्य संस्कृति की वास्तविक परम्परा के रूप में नहीं देखा जाता था। इसकी अनुमति केवल मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों को शान्त रखने के लिए दिया जाता था। महाभारत में कहा गया है कि कन्या के बंधु बांधवों को लोभ में डालकर बहुत सा धन देकर कन्या को खरीद लेना असुरों का धर्म कहा गया है।¹⁰ इस प्रकार के विवाह को वैश्यों एवं शूद्रों के लिए उपयुक्त माना गया है। यद्यपि इस प्रकार के विवाह को सामाजिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता था। शल्य की बहन माद्री से पाण्डु का विवाह तथा ऋषिक मुनि से सत्यवती का विवाह असुर विवाह की श्रेणी में आता था।

बौद्ध एवं जैन आगम ग्रंथों में भी कन्या का मूल्य देकर विवाह करने का वर्णन मिलता है। ऋषिदासी का दो बार विवाह हुआ था तथा दोनों बार उसके पिता ने उसका मूल्य प्राप्त किया था। अनुपमा की सुन्दरता से

प्रभावित होकर राजपुत्रों के द्वारा अपने पिता से उसकों अधिक मूल्य देकर क्रय करने की इच्छा व्यक्त की थी। यद्यपि इस प्रकार के विवाह का समाज में प्रचलन बहुत ही कम मिलता है, तथा इसे अधर्म श्रेणी में रखकर सामाजिक स्तर पर इसकों धीरे धीरे समाप्त किए जाने का वर्णन मिलता है।

राक्षस विवाह : राक्षस विवाह अथवा अपहरण विवाह विशेष रूप से क्षत्रिय वर्ग से सम्बन्धित था। इस प्रकार के विवाह में बलपूर्वक अथवा कन्या की इच्छा से उसका अपहरण कर उसके साथ विवाह कर लिया जाता है।¹¹ ऋग्वैदिक काल से ही इस प्रकार के विवाह का प्रचलन मिलता है। ऋग्वेद में विमद द्वारा पुरुमित्र की पुत्री कमुद्यं का अपहरण कर विवाह करने का उल्लेख मिलता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र एवं वशिष्ठ धर्मसूत्र में इस प्रकार के विवाह को क्षात्र विवाह कहा गया है। मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में इस प्रकार के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि रोती पुकारती हुई कन्या को मारपीट कर बलात् घर से अपहरण करना राक्षस विवाह कहलाता है। मनुस्मृति में भी राक्षस विवाह को धर्म के उपयुक्त नहीं माना है, परन्तु क्षत्रियों के लिए इस प्रकार के विवाह की स्वीकृति प्रदान की है। विवाह की यह परम्परा उस प्राचीन प्रथा की द्योतक है, जब स्त्री युद्ध का उपहार समझी जाती थी। राक्षस विवाह का प्रचलन आदिम जातियों में देखने को मिलता है, क्योंकि असभ्य समाज में बल के नियम का प्रचलन मिलता है।

पैशाच विवाह : इस प्रकार के विवाह पद्धति की सभी धर्मग्रंथों में कुत्सित कार्य के रूप में देखा गया है तथा किसी भी स्थिति में इसे विवाह की श्रेणी रखा जाता है। इस प्रकार के विवाह में किसी सोती हुई, विक्षिप्त अवस्था अथवा नशे की स्थिति में किसी बालिका को फुसलाकर उसके साथ बलात् विवाह कर लिया जाता है। मनुस्मृति के अनुसार सोती हुई, धन व भोग मद से मस्त, रोगिणी स्त्री से एकान्त में सहवास करना पिशाच विवाह की श्रेणी में आता है।¹² मनु ने पैशाच विवाह को सभी रूपों में अधर्म माना है। इस प्रकार के विवाह का प्रचलन का प्रमुख उद्देश्य ऐसे दुराचारी व्यक्ति को जिसने किसी कन्या के साथ बलात्कार किया हो, उस कन्या के साथ विवाह करने के लिए बाध्य करना प्रतीत होता है।

विवाह के इन विभिन्न प्रकारों का सामाजिक जीवन में प्रभाव भिन्न-भिन्न स्वरूपों में देखने को मिलता है। धर्मसम्मत एवं अधर्म्य विवाहों का प्रभाव आर्थिक एवं पारिवारिक स्तर पर भी देखने को मिलता है। इस प्रकार के विवाहों का प्रभाव स्त्री धन पर भी पड़ता था। याज्ञवल्क्य का मत है कि यदि किसी कन्या का धर्म्य विवाह हुआ हो और उसकी कोई संतान न हो तो उसकी सम्पत्ति उसके पति को मिलनी चाहिए, परन्तु यदि अधर्म्य विवाह हुआ हो तो वह सम्पत्ति उसके पिता को प्राप्त होनी चाहिए। इसी प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित है कि धर्मसम्मत विवाह में विशेष परिस्थितियों में पति के द्वारा पत्नी के स्त्रीधन का उपयोग किया जा सकता था, परन्तु अधर्म्य विवाह की स्थिति में पति को पत्नी का धन व्याज सहित वापस लौटाना होगा। धर्मसम्मत विवाह में प्रत्येक धार्मिक दृष्टि से विवाह बन्धन पूर्ण माना जाता है, क्योंकि सप्तपदी की धार्मिक क्रिया के पश्चात वधू के गोत्र में परिवर्तन हो जाता है और वह पति के गोत्र को स्वीकार कर लेती है। अप्रशस्त विवाहों में वधू अपने गोत्र को छोड़कर पति के गोत्र को नहीं अपनाती है।

सन्दर्भ सूची

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1/6
2. महाभारत, 12/36/24
3. जैन, कैलाश चन्द्र, प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी ग्रंथ, भोपाल, 1987, पृ0 स0 82
4. मनुस्मृति, 3/28
5. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 स0 272
6. मनुस्मृति, 3/29
7. जैन, कैलाश चन्द्र, प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी ग्रंथ, भोपाल, 1987, पृ0 स0 86
8. बाशम, ए0एल0, अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ0 स0 120
9. महाभारत, 13/44/5
10. वही, 13/44/8
11. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ0 स0 286
12. मनुस्मृति, 3/34



उषा प्रियम्बदा के कथा साहित्य में नारी संवेदना

डॉ. प्रिया जोशी*

उषा जी की कहानियों में चित्रित नारियों के स्वरूप में एक नयापन हमें दिखाई देता है। उन पात्रों में एक प्रकार का आत्मविश्वास हमें दिखाई देता है। वे मानवीय संवेदना से ओतप्रोत हैं। उन पात्रों को स्वाभाविक अस्मिता के बदले और कुछ नहीं चाहिए। आत्मनिर्भरता को बनाए रखते हुए अपनी विशिष्ट पहचान बनाती हैं। उनकी कहानियों में नारियां सामाजिक दायित्व को निभाने वाली होती हैं। हर चुनौती को स्वीकार करने वाली साहसी नारी हैं। उषा जी ने नारी संघर्ष, आकांक्षा को संभावनाओं को अपनी रचनाओं में व्यापक स्वर देने की कोशिश की है। वस्तु स्थिति को उजागर किया है। इसमें उनकी गहरी सोच, जांच पड़ताल भी दिखाई देती है। स्वतंत्र्योत्तर काल में नारी चेतना को गति मिली है, नारी की अस्मिता को बचाने के लिए जिन महिला रचनाकारों ने योगदान दिया है, उनमें शिवानी, मृणाल पांडे, नमिता सिन्हा, प्रभा खेतान, मैत्रेई पुष्पा, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, मानसी जोशी, मृदुला गर्ग, मेहरुन्निसा परवेज, निरुपमा सोबती, राजी सेठ, उषा प्रियम्बदा आदि हैं। एक जगह उषा जी ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि-" मेरा जीवन एक पुस्तक है, जिसमें एकदम कुछ खुला है और कुछ गोप्य है जो मेरा प्राप्य और संचित पूंजी है। जो मेरी प्रेरणा का स्रोत है और उत्स है। पर जब यह कहानी या उपन्यास के माध्यम से पृष्ठों पर निखरता हैं तब इतना बदला हुआ है कि उसमें मेरा कुछ भी अंश नहीं होता। शायद आत्मकथा और कल्प में यही अंतर होता है। जीवंत अनुभवों, भावनाओं, विचारों अनुभूतियों के एक पतले से तंतुओं को लेकर एकदम नया संसार गढ़ सकना उसी तरह-तरह के चरित्रों से आबाद करना, इसी में मेरी वास्तविकता है, प्रेरणा और कल्पना का मिश्रण है।"¹

उषा जी ने नारी को सचेत करते हुए वास्तविक जीवन मूल्यों की खोज का मार्ग प्रशस्त किया है। उन्होंने नारी के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास को राह में उपयोगी एवं बाधक तत्वों को परख करते हुए नारी अस्मिता के संभावित सृजनात्मक आयामों की प्रखरता से तलाश की है। लेखिका नए मूल्यों एवं संदर्भों को अपनी नायिकाओं के माध्यम से समाज के सामने लाना चाहती है। जिंदगी और गुलाब के फूल में 'नारी पुरुष संबंधों की जटिलताओं और कुंठाओं की उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्ति हुई है। उषा जी की नायिकाएं प्रेम को जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अनुभव मानती हैं। अनेकों कहानियों में नारी शिक्षित तो हैं ही उनमें समाज की रुढ़ियों से हटकर काम करने की लालसा है। यह लालसा सामाजिक वर्जनाओं के बीच दम तोड़ देती है।

संवादों की सुंदर व्यंजना उषा जी की विशेषता रही है। भाषा अत्यंत सीधी, सरल, नाट्यपूर्ण, पात्रानुकूल स्वाभाविक दिखाई देती है। सारे तत्वों के होते हुए भी देश काल तथा वातावरण का चित्रण उनकी कहानियों का उद्देश्य है। सार्थक शीर्षक होते हैं, सभी तत्वों की कसौटी पर उनकी सफलता दिखाई देती है। नारी जीवन उनके कथा साहित्य का केंद्र बिंदु रहा है, आज की बदलती हुई परिस्थितियों में स्त्रियों की बदलते हुए अनुभवों को कहानी की केंद्रीय समस्या बनाकर उन्होंने लिखा है। उषा जी की कहानियां एक अलग प्रकार का जीवन हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। आरंभ से अंत तक एक नारी छाई रहती है। सभ्य एवं सुशिक्षित, नौकरीपेशा, विवाहिता होने के नाते उन्होंने इस प्रकार की स्त्रियों की समस्याओं का चित्रण किया है। साथ ही साथ समाज में प्रचलित समस्याओं का चित्रण किया है। उषा जी ने उनके प्रति मनुष्य को सचेत करने का प्रयास किया है। कहानियों के कथानक अत्यंत छोटे हैं। विषय घरेलू है। पारिवारिक समस्याएं, आर्थिक समस्याएं, नारी विषयक समस्याएं अधिक रूप में चित्रित हैं। हर स्थिति को मनोविश्लेषण द्वारा उन्होंने सफलतापूर्वक रचनाओं को उजागर किया

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, लक्ष्मण सिंह महर परिसर पिथौरागढ़ उत्तराखंड।

है। उषा प्रियंवदा ने मुख्य रूप से शहरी जीवन को देखा परखा और चित्रित किया है। 1930 में कानपुर के मध्यवर्गीय परिवार में जन्मी इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. किया, पीएचडी किया दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज में 3 वर्षों तक अध्यापन किया। उपरांत अमरीका में प्रोफेसर बन गई। कोई स्त्री पिता और पति का मूल नाम क्यों जोड़े ? मां का नाम क्यों नहीं जोड़े? उषा जी ने जोड़ा। दुनिया बदलने का अपना-अपना तरीका होता है। एक तरीका यह भी होता है, देखने में यह छोटी-सी बात लगती है। लेकिन नहीं इसके पीछे एक दृष्टिकोण, यही दृष्टिकोण पूछा कि लेखन का वैचारिक आधार है। उनका पहला उपन्यास पचपन खंभे लाल दीवारें 1961 में आया यह निम्नवर्गीय परिवार में संबंध सुषमा नाम की एक ऐसी लड़की की कहानी है जो अपने ही अंदाज में संघर्ष कर रही है। शहरी मध्यमवर्गीय परिवारों में स्त्री की नियति विवाह, पति, दीवार बच्चों और पहनावे दिखावे तक सिमटी होती थी। लेकिन सुषमा अलग है परिवार की बड़ी बेटी का दायित्व बोलती नहीं है दूसरा उपन्यास रुकोगी नहीं राधिका पिता की इच्छा बेटी अपने पास रहे, बेटी का मन कहीं नहीं लग रहा। वह सीधे फैसला सुनाती है -" नहीं पापा, मैं जाना चाहती हूँ, मनीष मेरे एक बंधु ।"² बाज बीच में छोड़कर वह रुक जाती है। और पिता कुछ और हताश महसूस करने लगे, वह कुशन की टेक लगा कर बैठ जाते हैं । इसी के साथ उपन्यास की समाप्ति है, तीसरा उपन्यास 'शेष यात्रा' में अनु नामक लड़की जो माता-पिता विहीन है। प्रवासी भारतीयों का अपना एक संसार है। भारतीय समाज में स्त्री अपनी समग्रता में पहली बार बांग्ला लेखक शरतचंद्र के उपन्यासों में आती है। उनकी स्त्री पात्रों ने हिंदी भाषी समाज को खूब प्रभावित किया। ध्यान से देखिए तो शरद बाबू की समस्या भी वही थी, जो उषा प्रियंवदा की है।

प्रवासी जीवन के प्रभाव को स्त्री जीवन में देखना उषा जी के कथा साहित्य की दूसरी खासियत है उषा जी ने अपनी कहानियों में समाज की समसामयिक समस्याओं की गहराई में उतरकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उनकी नब्ज टटोलते हुए व्यक्ति के जीवन से जुड़ी समस्याओं को उजागर किया है। उन्होंने नारी जीवन में आने वाले परिवर्तनों को बखूबी से परखा है। इनकी कहानियों में स्त्री स्वतंत्रता के मानदंड विभिन्न रूपों में परिलक्षित होते हैं। उषा प्रियंवदा की उत्कृष्ट कहानी वापसी में परिजनों की आधुनिक भौतिकवादी स्वच्छंद जीवन दृष्टि तथा घोर व्यक्तिवादी जीवन दर्शन के कारण गजाधर बाबू का सपना दिवास्वप्न प्रतीत होता है। पत्नी की उपेक्षा सह नहीं पाते, पत्नी का साथ चाहने वाले व्यक्ति पर जब ऐसा होता है तो मानवीय संवेदनार्थ चूर-चूर होकर बिखर जाते हैं। उषा प्रियंवदा ने स्त्री की इच्छा कामना और तुरंत निर्णय लेने के प्रश्नों को विभिन्न दृष्टिकोण से अपनी कहानियों में चित्रित करने का प्रयास किया है।

आधुनिक हिंदी कहानी में स्त्री की भूमिकाएं दो स्तर पर चल रही थी। बाहरी लड़ाई थी विदेशी सत्ता के विरुद्ध, जिसमें स्त्री पुरुष का साथ ही नहीं दे रही थी ऐसा नहीं, लेकिन उसे स्फूर्ति, प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देकर उसका मार्गदर्शन भी कर रही थी। इसी के समानांतर चल रही थी स्वतंत्रता की आंतरिक लड़ाई। इस लड़ाई का क्षेत्र था, जिससे लड़ रहा था देश का सुधारक वर्ग। इस क्षेत्र में स्त्री ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों स्तर पर अपनी भूमिकाएं निभाईं। डा. सूत देव ने स्त्री का समर्थन करते हुए कहा है - " मानव जीवन का सच्चा सौंदर्य इसी नारी नाम में निहित है ।"³ एक तरफ तो स्त्री को लेकर सुधारवादी आंदोलन हुए। इनसे प्रेरित हिंदी कथाकार ने विधवा विवाह, अनमेल विवाह, बाल विवाह, अशिक्षा, नारी - शोषण इत्यादि कई समस्याओं पर आधारित रचनाओं के द्वारा भारतीय स्त्री की स्थिति से समाज को परिचित कराया और उसे बदलाव के लिए कदम उठाए। भारत में अंग्रेजी सत्ता से स्वतंत्रता दिलाने में सबसे प्रथम स्वतंत्रता का बिगुल रानी लक्ष्मी बाई ने बजाया था। किन्तु आज़ादी के बाद वही स्त्री आज स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न कर रही है। आधुनिक काल में नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रगति के पथ पर अग्रसर है, किन्तु पुरुष नारी की स्वतंत्रता का नाश करने की कोशिश कर रहा है। उषा प्रियंवदा ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से संवेदना व्यक्त की है।

भारतीय जीवनशैली में नारी को हमेशा से ही एक अबला और कमजोर स्वीकार किया गया है। यानी नारी के स्वरूप और उसकी शारीरिक क्षमता को हमेशा कम आंका गया है, लेकिन नारी की यह स्थिति पुरुषों के प्रभाव के कारण ही बनी है। नारी प्राचीन समय से ही अबला समझी जाती रही है और यही स्थिति आधुनिक युग में भी देखी जा सकती है। अबला जीवन तुम्हारी यही कहानी आंचल में दूध आंखों में पानी, महाकवि निराला की इस पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी को अबला ही समझा जाता रहा है तथा उसको प्रत्येक कार्य में नारी अपने जीवन में अनेक प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करती है तथा प्रत्येक स्थिति में वह दूसरों के प्रति अपने आप को समर्पित कर देती है, लेकिन फिर भी उसका शोषण ही किया जाता है। चाहे उसका पति हो या उसके घर का कोई अन्य सदस्य।

"माया ने हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, पर चंदन हाथ पकड़े-पकड़े ही अंदर तक ले गए और जोर से पुकारकर कहा, 'सुनो, एक मेहमान आए हैं। भाभी चौंके से बाहर आई और देखा, फिर कहा, मैंने तो पहले ही रुकने को कहा था, फिर माया के मुख की ओर देखकर बोली, 'हाथ तो छोड़ दो बेचारी का। उसके कहने का ढंग ऐसा था कि चंदन ने तुरंत उसका हाथ छोड़ दिया, फिर कुछ अपराधियों की तरह कहा, 'खाने का इंतजाम करो।'

हो रहा है। रुखाई से कहकर वह वापस चली गई। चंदन और माया ने स्पष्ट रूप से महसूस किया कि उसे प्रसन्नता नहीं है। माया ने फिर कहा, 'भाई साहब, बेकार झंझट होगा, मेरी नौकरानी इंतजार कर रही होगी।'

झंझट क्या? खाना अभी बना जा रहा है।' स्वर ऊंचा कर उन्होंने पत्नी को पुकारा, 'सुनो, जरा जल्दी कर दो। अंदर से उत्तर आया, कर रही हूँ। पहले जरा मुन्ने को नहला दूँ।"⁴

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि नारी विभिन्न प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था को सभ्य और एकजुट बनाने का प्रयास करती है, लेकिन स्वयं उसका पति उसका अनादर करता है।

उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं होता है वह किस प्रकार की परिस्थिति में कार्य कर रही है। वह केवल अपने आदर्शों का पालन करने के लिए बाधित करता है। उसका सहयोग नहीं।

"सुबोध को अपने पर आश्चर्य हुआ कि वह इतनी सी बात पहले ही क्यों न समझ गया? उसकी सारी चीजें वृंदा के कमरे में जा चुकी थीं, सबसे पहले पढ़ने की मेज, फिर घड़ी, आराम कुर्सी और अब कालीन और छोटी मेज भी। पहले अपनी चीज वृंदा के कमरे में सजी देख उसे कुछ अटपटा लगता था, पर अब वह अभ्यस्त हो गया था यद्यपि उसका पुरुष हृदय घर में वृंदा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था।"⁵

नारी चाहे पुरुष की कितनी ही तन-मन से सेवा करें, लेकिन पुरुष नारी के बढ़ते प्रभाव से हमेशा चिंतित ही रहता है। उसे नारी का आधिपत्य स्वीकार नहीं होता, क्योंकि उसका हृदय नारी जैसा कोमल नहीं होता और यही कारण है कि वह अपने प्रभुत्व की खातिर नारी को उसका पूर्ण अधिकार नहीं देता। यही बात उपर्युक्त पंक्तियों में दृष्टि गोचर होती है। स्त्री अपने जीवन की परिस्थितियों से लड़ते - लड़ते इतनी थक जाती है कि कभी - कभी उसे अपने जीवन में एक साथी की आवश्यकता महसूस होने लगती है। यही स्त्री अपने जीवन में एक अकेलापन महसूस करती है कि कहीं पर कोई उसकी बात सुने तथा उसका प्रोत्साहन करें ताकि उसके जीवन में मधुरता और सरसता आ सके। नारी के जीवन की यह स्थिति उसे सोचने पर मजबूर कर देती है कि वह इतनी कमजोर तो नहीं थी कि उसे किसी का सहारा ढूँढने की जरूरत पड़े लेकिन दूसरों को देखकर कभी-कभी ऐसा मन में आ जाता है। -"अचला को लगता है कि जीवन ऐसे ही बीत जाएगा और एक दिन मौत भी द्वार पर आ खड़ी होगी। उस अंतिम क्षण अपनी जिंदगी पर दृष्टि डालकर उसे लगेगा कि वह जैसे रोती रोती आई थी, वैसे ही जा रही है। सूखे फूलों सी, पुराने प्रेम पत्रों के पीले पड़े कागज सी कुछ स्मृतियां लिए हुए चली जाएगी। अचला के देखते-देखते ही सुजाता की शादी हुई, दो बच्चे हुए और वह अचला से कहती रहती है- जिंदगी बहुत छोटी है, बहुत मूल्यवान है.... भविष्य की ओर देखो, नारी की सृष्टि इसलिए नहीं हुई कि वह पुरुषों की समानता कर, लड़कियों को अर्थशास्त्र पढ़ाते-पढ़ाते काट दी जाए। सुजाता ने अचला के लिए एक

सुयोग्य पात्र भी दूढ़ रखा था, पर अचला को लगता है कि उसके दिल में जो कुछ भी था. चुक गया है- अब वह कुछ महसूस नहीं कर पाती-सांसें आती हैं, दिल धड़कता है, जिंदगी समाप्त हो गई है।⁶

नारी की यह स्थिति मानसिक स्थिति कभी-कभी उसे अबला का रूप प्रदान कर देती है। नारी अपनी मानसिक स्थिति के कारण भी अबला बन जाती है, क्योंकि दूसरों की खुशियों को देखकर मन में एक आस जगती है कि उसका जीवन भी भरा-पूरा हो। ऐसी ही परिस्थितियां उसे समझौता करने के लिए भी विवश कर देती है और यही स्थिति उसकी कमजोरी भी बन जाती है।

नारी अपने जीवन में अनेक ऐसे निर्णय ले लेती है, जिसके लिए उसे बाद में पछताना नहीं पड़ता है, क्योंकि पुरुष नारी की कमजोरियों का फायदा उठाना अच्छी तरह जानता है और यही स्थिति नारी को अपनी ही नजरों में अबला और कमजोर बना देती है। ऐसी स्थिति में वह अपने को कोसती है, छटपटाती है. लेकिन कुछ भी नहीं कर सकती। यही अचला के साथ भी हुआ। "दोनों हाथों की उंगलियों को एक-दूसरे में फंसाकर, तीक्ष्ण दृष्टि से अचला को देखते हुए उसने कहा, 'मुझे सब मालूम है और उसके लिए मैं नीलू को दोषी ठहराता हूं। 'शायद नीलू का दोष इतना न था, जितना अचला नाम लेने से पहले एक पल रुकी, कि देवेन का।'⁷

पर अचला। इस वक्त कह ही दूंगा क्योंकि यह बहुत दिनों से सोचता आया हूं वह यह कि तुम क्यों डिफेंस की पात्री मिस हैविशम की तरह जिंदगी नष्ट कर रही हो। उसी अतीत में रहकर स्मृतियों के घेरे में भटकती हुई देवेन से दुर्बल मनुष्य के लिए इतना सब क्यों?"⁸

कभी-कभी स्त्री की पारिवारिक परिस्थितियां उसके आने वाले भविष्य को गर्त में पहुंचा देती हैं। परिवार के सदस्य अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते हैं, लेकिन उस मुक्ति में नारी का बंधन ऐसी बेड़ियों से बांध दिया जाता है जिसके पाश में वह बंधती ही चली जाती है और उसके जीवन से खुशियों और कल्पनाओं का संसार खत्म हो जाता है।

साब ने कहा, ' मुझे तो अपने नाम पर बड़ा गर्व था। मुझे यह नहीं मालूम था कि तुम्हें मेरा नाम तक नहीं पसंद है। फिर कुछ देर बाद, 'मुझे शादी करके तुम्हारा कोई भी अरमान पूरा नहीं हुआ। चंद्रा बेचारी लड़की, मुझे तुम्हारे लिए अफसोस है। ' वह चंद्रा का हाथ देर से पकड़ा हुआ था , बड़ी सावधानी से पलंग पर रखकर वह बाहर चला गया। रात को आई तो वो बहुत कुछ बेचैन थी। चंद्रा को उन्होंने बताया था कि बेयरा ने सांब की मां से कुछ बे - अदबी की थी, अस्पताल से लौटकर जब सांब को पता चला कि वह उसी क्षण कार में अपने मां - बाप को लेकर चला गया। "डार्लिंग हम लोगों से बड़ी भूल हो गई। शादी से पहले अच्छी तरह देख-भाल लेते। ऐसे जाहिल गंवार लोगों से तुम्हारी कैसे पट सकती है।"⁹

' चंद्रा का मन रोने को होने लगता। मम्मी की बात के उत्तर में वह कुछ कह भी न सकी।'

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से नारी के अबला स्वरूप को स्पष्ट देखा जा सकता है कि किस प्रकार किसी दूसरे के द्वारा किए गए कार्यों का भुगतान किसी ओर को करना पड़ता है। नारी दूसरों की खुशियों के लिए अपने जीवन की अभिलाषाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं का त्याग कर देती है तथा अपने जीवन की किसी भी प्रकार की परिस्थिति को भोगने के लिए तैयार रहती है।

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में नारी के अबला रूप का चित्रण बड़ी ही सजीवता से किया है कि किस प्रकार विभिन्न प्रकार के कष्ट, दुख तकलीफ सहकर भी पुरुष के आगे हमेशा नारी नतमस्तक रहती है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की इच्छाओं और योग्यता का आंकलन नहीं किया जाता केवल उसका शोषण किया जाता है और उसकी जिंदगी को बोझिल बना दिया जाता है।

नारी का एक स्वरूप सबला भी है, जिसके आधार पर नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। प्रेमचंद जी ने नारी को प्रेम, त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति स्वीकार किया है, वहीं अन्य साहित्यकारों ने भी नारी को सशक्त एवं सुदृढ़ मानसिकता की धनी के रूप में स्वीकार करते आए हैं।

स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आधुनिक युग तक नारी के वर्चस्व का बोलबाला है। पुरुष चाहे कितना ही नारी अस्तित्व को उसके गुणों को दबाने का प्रयास करें, नारी की प्रतिभा अपने आप निखर उठती है। नारी के इसी प्रारूप को सभी साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों ने स्वीकार किया है कि नारी अबला नहीं सबला है। उसमें परिवर्तन की शक्ति निहित है। वह न केवल अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है, बल्कि अपने भविष्य का चुनाव करने के लिए भी स्वतंत्र है वह जिस मार्ग को चाहे उसका चुनाव कर सकती है। वह कठिन से कठिन कार्य को पुरुषों की तरह कर सकती है। आधुनिक युग में हम नारी के बढ़ते वर्चस्व को देख सकते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र में नारी का दबदबा है। चाहे वह विज्ञान का क्षेत्र हो, चाहे राजनीति या पारिवारिक व्यवस्था उसके त्याग और बलिदान को सभी नमन करते हैं और करते रहेंगे।

उषा प्रियंवदा ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से नारी के सबला रूप को एक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्र में प्राप्त नारी की उपलब्धियों को दर्शाया है तथा नारी की शक्ति को उजागर किया है।

"जब सोचता हूँ कि लौटकर इसी अकेल घर में आना पड़ेगा तो कहीं जाने का मन नहीं होता। फिर कुछ रुककर पूछा, अचला क्या नीलू को मैंने बहुत स्वतंत्रता दे रखी है?"

उस प्रश्न पर अचला ने कुछ मुस्कराकर कहा, नीलू को अगर आप बांधकर रखेंगे तो वह नीलू नहीं रहेगी। नहीं दोष मेरा ही है। मैंने शुरू से ही उसे बहुत बिगाड़ दिया। जो उसने चाहा, दिया। कभी राह में नहीं आया। पर अब सोचता हूँ कि मैंने ठीक नहीं किया। फिर अपने को ही समझाते हुए बोला, मगर नीलू की इच्छाओं की अवज्ञा करता भी तो कैसे? मैं सबल, समर्थ होने के मद में रहा और वह अवश बनती हुई, जो चाहती करती गई।"¹⁰

इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि किस प्रकार नारी की संवेदना, शक्ति और पुरुष की शक्ति मिलने से नारी को ज्यादा सामर्थ्य मिलता है।

संक्षेप में उषा प्रियम्बदा के साहित्य में नारी संवेदना एक महत्वपूर्ण विषय है। उन्होंने नारी जीवन के विभिन्न हिस्सों को जैसे कि पारिवारिक और सामाजिक जीवन में संघर्ष, आत्मनिर्भरता तथा पहचान को चित्रित किया है। उन्होंने नारी की पीड़ा, संघर्ष और अपेक्षाओं को संवेदन शीलता से चित्रित किया है। नारी मुक्ति का स्वर, नारी के अंतर्द्वंद्व इत्यादि का भी चित्रण किया है।

संदर्भ - संकेत :-

1. मेरी कहानियाँ उषा प्रियंवदा-स.डॉ. निर्मला जैन पृ.61
2. रुकोगी नहीं राधिका .उषा प्रियम्बदा. पृ 90
1. चतुर शास्त्री के उपन्यासों में नारी का चित्रण. डा. सुतदेव हंस .पृ.3
2. मेरी कहानियाँ. उषा प्रियंवदा . पृ.37
3. वही. पृ.51
4. वही. पृ.66 -67
5. जिंदगी और गुलाब. उषा प्रियंवदा. पृ.56
6. वही. पृ. 91
7. वही. पृ. 45
8. वही. पृ. 24
9. वही. पृ. 45
10. वही. पृ. 24



स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस पत्रिका का योगदान : एक अध्ययन

डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह*

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस पत्रिका का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हंस पत्रिका का प्रकाशन हिन्दू मास के प्रत्येक पूर्णिमा को प्रकाशित होती थी। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हंस पत्रिका अपने साहित्य और व्यंग्य लेखों के माध्यम से सदैव चोट किया करता था। हंस पत्रिका के तथ्य मानवता और राष्ट्रीयता की भावना को मजबूती देने वाली पत्रिका थी। इसके प्रकाशन का मात्र एक उद्देश्य जनमानस में स्वाधीनता के भाव को विकसित करना था। हंस पत्रिका के प्रथम संपादकीय में प्रेमचंद ने गुलामी की बेड़ियों से निकलने की बात लिख, हंस पत्रिका के उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया था। हंस पत्रिका का प्रथम प्रकाशन मार्च 1930 में हुआ था। इस पत्रिका में लेखन करने वाले प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, जैनेंद्र कुमार, विनोद शंकर व्यास, भूपेंद्र भगवती शरण वर्मा और शिवरानी देवी आदि साहित्यकार करते थे। इस पत्रिका के लेख सदैव राष्ट्रीयता के भावों से भरे होते थे। बिना शस्त्र के जनआवाज बनने वाली यह एक एकलौती पत्रिका बनी जो स्वाधीनता के आंदोलन में एक अग्रणी भूमिका अदा की। वर्तमान में हंस पत्रिका का प्रकाशन अक्षर प्रेस दरिया गंज से हो रहा है।

मुख्य शब्द : स्वतंत्रता आन्दोलन, राष्ट्र, राष्ट्रीयता, साहित्य, राननीति, समाज, साहित्य, संस्कृति, शोषण, अंग्रेज, अंग्रेजियत और प्रेस।

हंस पत्रिका स्वतंत्रता आन्दोलन की एक आवाज थी जिसने मां भारती के वीर सपुतों को स्वर शक्ति प्रदान करती थी। अंग्रेज के दमनकारी नीतियों के खिलाफ एक शस्त्र थी जो उनके शासन को नींव को हिला देती थी। हंस एक साहित्यिक शब्द का मंच ही नहीं बल्कि आजादी के स्वर शब्द की अस्त्र-शस्त्र थी। हंस स्वाधीनता आन्दोलन की एक मुखर पत्रिका थी। पत्रिकारिता के दृष्टि से यह युवाओं को स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए उत्प्रेरित करती थी। युवाओं को मातृ भूमि के प्रति प्रेम जगाने की सबसे सशक्त माध्यम हंस पत्रिका थी। हंस पत्रिका के तथ्य से शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं :-

- ❖ स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए यह पत्रिका निशस्त्र एक हथियार थी।
- ❖ ब्रिटिश शासन के खिलाफ युवाओं को जागृत करने की एक सशक्त माध्यम थी।
- ❖ यह एक साहित्यिक पत्रिका थी, परन्तु स्वाधीनता के लिए कार्य करती थी।
- ❖ हंस पत्रिका स्वतंत्रता आन्दोलन के सभी विचार नायकों के लिए एक सर्वसुलभ मंच थी।
- ❖ यह एक विचार मंच नहीं थी बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन के नायकों की शब्द शक्ति थी।

शोध अध्ययन के उद्देश्य ही शोध उपकल्पना के मार्ग को प्रशस्त करते हैं और उपकल्पना ही शोध के निष्कर्ष को एक निश्चित लक्ष्य की ओर अंग्रेशित करती है। शोध पत्र की उपकल्पना निम्न हैं :

- ❖ हंस पत्रिका स्वाधीनता आन्दोल के प्रति जनमानस को जागृत किया।
- ❖ हंस पत्रिका अंग्रेजी शासन के विरुद्ध शब्द के माध्यम से आन्दोलन किया।
- ❖ हंस पत्रिका क्रांतिकारियों के विचारों के लिए एक मंच प्रदान किया था।
- ❖ हंस महिलाओं, युवाओं और मजदूरों को स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़ने के लिए उत्प्रेरित किया।
- ❖ हंस एक साहित्यिक मंच के साथ स्वतंत्रता आन्दोलन के नायकों का एक विचार मंच था।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में अन्वेषणात्मक और विश्लेषणात्मक अभिकल्प का प्रयोग हुआ है। अन्वेषणात्मक

* निदेशक, म.मो.मा. हिन्दी पत्रकारिता संस्थान

विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

जनसम्पर्क अधिकारी, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र. एवं

संस्थापक विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इ. गां. रा. जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश-484887

मो. न. : 09407047751, 07772999893

ई-मेल : snkmediavns@gmail.com

अभिकल्प शोध विषय के ऐतिहासिक पक्षों के तथ्यों को प्रकट करने में सहायक हुआ है तो विश्लेषणात्मक अभिकल्प शोध विषय के तथ्य संदर्भों को परिभाषित किया है। शोध अध्ययन में आगनात्मक, ऐतिहासिक, अवलोकन, सर्वेक्षण और तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग हुआ है। तथ्य संकलन के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में हंस पत्रिका के संदर्भ में लोगों से बात-चीत कर तथ्य संकलन किया जबकि द्वितीयक स्रोत के रूप में हंस पत्रिका के प्रतियों का अध्ययन और प्रेमचंद के जीवन से जुड़ी पुस्तकों का अध्ययन किया गया है।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन देश की आन-बान और स्वाभिमान की लड़ाई थी। स्वतंत्रता आन्दोलन में जहां देश के स्वतंत्रता नायकों ने आहूतियां दे रहीं थे वही समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने शब्द संचार से स्वतंत्रता आन्दोलन का अलख जगा रहे थे। 1930 में कांग्रेस कमेटी की बैठक से जन आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। इस आन्दोलन को धार देने के लिए प्रेमचंद ने एक पत्रिका निकाला जिसका नाम जयशंकर ने हंस दिया। हंस पत्रिका सरस्वती प्रेस से प्रकाशित होने लगा जिसका पहला अंक मार्च 1930 में प्रकाशित हुआ।¹

प्रेमचंद ने हंस पत्रिक में अपने समकालीन विद्वानों के राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय मुद्दों के लेख, क्रांतिकारी कविताएं, कहानियां और राजनीतिक मुद्दों संबंधित तथ्य प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया था।² हंस पत्रिका ने अंग्रेजी शासन के दमनकारी नीतियों को उजागर करने लगा और अपने पाठकों को स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़ने के लिए प्रेरित करने का कार्य करने लगा था। इसके लेखनी ने जनमानस के मस्तिष्क को स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए उत्प्रेरित किया। स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस पत्रिका का एक महत्वपूर्ण भूमिका थी।

हंस पत्रिका के स्वरूप पर डॉ वशिष्ठ नारायण सिंह लिखते हैं कि हंस सचित्र एवं सुन्दर कवर युक्त पत्रिका थी, साज-सज्जा की दृष्टि से हंस पत्रिका तत्कालीन समय में प्रकाशित सभी साहित्यिक पत्रिकाओं से अच्छी थी।³ हंस पत्रिका ऐसे समय आयी थी जब देश ने अपनी नयी इबादत लिखने के लिए उठ खड़ा हुआ था। असहयोग आन्दोलन के बाद नये स्वाधीनता आन्दोलन का विगुल बज चुका था। हंस ने अपने प्रथम अंक से ही अपने उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया था। प्रेमचंद ने अपने संपादकीय में लिखते हैं कि हंस के लिए परम सौभाग्य की बात है, कि उसका जन्म ऐसे सुअवसर पर हुआ है जब भारत में एक नए युग का आगमन हो रहा है, जब भारत पराधिनता की बेड़ियों से निकलने के लिए तड़पने लगा है। इस तीथि की यादगार एक दिन देश में कोई विशाल रूप धारण करेगी... हंस भी मानसरोवर की शांति छोड़कर अपनी नन्ही सी सोच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए समुद्र पाटने आजादी की जंग में योगदान देने चला है।⁴

स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस एक क्रांतिकारी भूमिका में थी। स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस की भूमिका को लेकर डॉ राम विलास शर्मा लिखते हैं कि प्रेमचंद ने हंस को स्वाधिनता संग्राम का एक सबल सैनिक बना दिया था।⁵ हंस के प्रथम अंक में मुंशी प्रेमचंद ने ब्रिटीश सरकार द्वारा प्रस्तावित, भारत को ब्रिटिश अधिराज्य (डोमिनियन स्टेट) बनाने के संदर्भ में लिखा था कि न अधिराज्य मांगे से मिलेगा ना स्वराज्य, जो शक्ति अधिराज्य छिनकर ले सकती है, वह स्वराज्य भी ले सकती है, इंग्लैंड के लिए दोनों समान है। डोमिनियन स्टेट्स में गोलमेज कांफ्रेस का उलझावा है इसलिए वह भारत को उलझावे में डालकर भारत में बहुत दिनों तक राज कर सकती है, फिर उसमें किस्तों की गुंजाइस है और किस्तों की अवधि 1000 वर्षों तक बढ़ाई जा सकती है, जो दब सकती है परन्तु बुझ नहीं सकती है। स्वराज्य देश की आमजन की आवाज है जो स्वाधीनता के लिए जाग खड़ी होने वाली है।⁶

हंस के प्रथम अंक में छपे क्रांतिकारी विचार से तत्कालीन युवा, मजदूर और किसान में स्वराज्य की इच्छा प्रबल हुई और हंस अघोषित रूप से क्रांतिकारी पत्र बन गया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना से ओत-प्रोत हंस प्रकाशित होने लगा। स्वाधिनता आन्दोलन जैसे-जैसे प्रबल हो रहा था वैसे ही ब्रिटिश हुकमत का दमन बढ़ने लगा था जिसका प्रभाव प्रेस ऑर्डिनैस के रूप में पत्रकारों और पत्रकारिता पर भी पड़ने लगा। हंस के चार अंक प्रकाशित के बाद संयुक्त प्रांत के सचिव जगदीश प्रसाद ने इंडियन प्रेस ऑर्डिनैस 1930 के उपखंड 3 के अन्तर्गत सरस्वती प्रेस बनारस से 1000 रूपया जमानत के रूप में मांग लिया जिसके उत्तर में हंस पत्रिका के सम्पादक प्रेमचंद ने लिखा कि प्रेस ऑर्डिनैस की अवधि समाप्त होने पर उस अवधि में घटित अपराध के लिए बाद में जमानत मांगना उचित नहीं है और वैसे भी हंस कालमों से राजनीति को दूर रखने का निर्णय किया गया है इसके बाद अंग्रेजी कलेक्टर ने प्रकाशन की अनुमति दे दी।⁷

अक्टूबर 1930 में हंस पत्रिका भारतीय साहित्य परिषद के अधीन हो गया था जिसमें अलग-अलग भाषाओं के विद्वान शामिल हो गये। हिन्दी भाषा के लिए मैथिलीशरणगुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य काका साहब कालेलकर, सरदार नर्मदा सिंह और युद्ध बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन शामिल थे। ऊर्दू के लिए प्रोफेसर मुहम्मद आकिल एम. ए., सैयद सज्जाद जहीर, बगला के लिए डॉ. कालीदास नाग, आसामी के लिए एन. सी.

वारदोलाई, उड़िया के लिए पंडित नीलकंठ दास, गुजराती के लिए दीवान बहादुर के. एम. झावरी, आचार्य आनंद शंकर बापू भाई धूर्व, मराठी के लिए सरदार मा. वि. किने एम. ए., प्रोफेसर दत्तोवामन पोद्दार, कन्नड़ के लिए डी. आर. पेण्ड्रे, आर. आर. दीवाकर आदि भाषाओं के विद्वान शामिल थे।⁸

हंस के नये स्वरूप से प्रेमचंद जी संतुष्ट नहीं थे। 27 फरवरी 1936 को उन्होंने अख्तर हुसैन रायपुर को पत्र लिखा कि अब मेरा किस्सा सुनो मैं करीब एक माह से बिमार हूँ मेदे में गैस्ट्रिक अल्सर है मुँह से खून आ जाता है इसलिए काम कुछ नहीं करता दवा कर रहा हूँ मगर अभी तक कोई आराम नहीं अगर बच गया तो 20 वीं सदी नाम का रिसाला अपने लोगों के ख्यालात की इशाअत के लिए जरूर निकलूंगा। हंस से तो मेरा ताल्लुक टुट गया मुक्त की सरमगजी, बनियों के साथ काम करके शुकिया की जगह यह शिला मिला कि तुमने हंस में ज्यादा रूपया सर्फ कर दिया। इसके जिए मैंने दिलो जान से काम किया बिल्कुल एकेला अपने वक्त और मेहनत का इतना खून किया इसका किसी ने लिहाजा न किया.... मैं भी खुश हूँ हंस जिस लिटरेचर की इरशाद कर रहा था, वह लिटरेचर नहीं है, वह तो वही भक्ति वाला महाजनी लिटरेचर है जो हिन्दी जवान में काफी है।⁹

इस पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट है की प्रेमचंद हंस का संपादन इसलिए कर रहे थे हंस का अपने लेखन का कार्य देश की आजादी के लिए करे। देश की स्वतंत्रता में ही हंस की भूमिका को सुनिश्चित करना चाहते थे। प्रेमचंद ने अगस्त 1936 में भदन्त आनंद कौसत्यायन को पत्र में यही बात लिखी कि हंस सितंबर से सत्ता साहित्य, दिल्ली से प्रकाशित होगा। मैंने उसके संपादक से इस्तीफा दे दिया है। मैं इधर एक माह से बिमार हूँ। अगर अच्छा हो गया तो यहां से अपना एक नया पत्र प्रागतिक लेख संघ की विचारधारा के अनुसार निकालूंगा।

इधर प्रेमचंद हंस से दूर थे स्वयं बिमार थे उधर हंस से सेठ गोविन्ददास के नाटक स्वतंत्र्य सिद्धांत को आपत्तिजनक करार देकर सरकार ने जमानत मांगी। भारतीय साहित्य परिषद ने जमानत मांगने पर इसे बंद करने का ऐलान कर दिया। हंस से जमानत.. एक हजार रुपये नगद ... प्रकाशन बंद.. प्रेमचंद को यह बात पसंद नहीं आई उन्होंने पत्र लिखकर परिषद को अपनी नाराजगी जाहिर की। गांधी जी ने कहा यदि प्रेमचंद हंस को वापस लेना चाहते है तो दे दो, प्रेमचंद ने स्वयं जमानत जमा करवायी और उसे प्रकाशित करवाने का प्रबंध किया। बिमारी के बावजूद प्रेमचंद ने बड़े बेटे श्रीपत राय को जमानत जमा करवाने के लिए भेजा। निगम और जैनंद्र कुमार से बातचीत की और अपनी पत्नी से बोले रानी तुम हंस की जमानत जमा करा दो, चाहे मैं रहूँ या ना रहूँ हंस चलेगा।¹⁰

हंस चला और चला रहा भारत की स्वतंत्रता के बाद भी हंस प्रकाशित होता रहा। मुंशी प्रेमचंद के बाद उनकी पत्नी शिवरानी देवी और जैनंद्र कुमार ने हंस का संयुक्त रूप से संपादन किया। इसके बाद शिवदान सिंह चौहान, प्रेमचंद के पुत्र श्रीपत राय, अमृत राय, नरोत्तम नागर, बालकृष्ण राव और अमृत राय ने अपने-अपने कार्यक्रम के अनुसार हंस पत्रिका का संपादन किया। हंस कुछ वर्षों के लिए 1959 के बाद बंद कर दिया गया था लेकिन 1986 में राजेन्द्र यादव ने हंस का पुनः प्रकाशन प्रारम्भ किया और 2013 तक इसका संपादन किया। वर्तमान में संजय सहाय इसके संपादक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

हंस पत्रिका ने स्वतंत्रता आन्दोलन में राष्ट्रीय भावना को जागृत करने का कार्य किया था। ब्रिटिश शासन की आलोचना करने में हंस पत्रिका की अग्रणी भूमिका थी। उसके शासन व्यवस्था की आलोचना करने में हंस की अग्रणी पत्रिका थी। जनमानस को ब्रिटिश शासन के खिलाफ जागरूक करने का कार्य किया था। स्वाधिनता आन्दोलन ही नहीं भारतीय सामाजिक व्यवस्था की ख़ाईयों पर भी हंस पत्रिका ने अपनी लेखनी किया था। महिला अधिकार और उनकी स्थिति में सुधार पर भी कार्य किया था। स्वाधिनता आन्दोलन में हंस ने कई कहानियों का प्रकाशन किया जिससे जनमानस स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए प्रेरित हुए।

हंस पत्रिका ने अपने साहित्यिक उद्देश्यों को जितने बखूबी से पूर्ण किया ठिक उसी प्रकार सांस्कृतिक मूल्यों को भी संरक्षित करने के लिए भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। भारतीय सांस्कृतियों के जागरूकता के लिए निरन्तर नवीन प्रयोग किया और लोगों को जागरूक भी किया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। हंस राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नयन भी सार्थक भूमिका अदा की थी। हंस ने अपने कथा कहानियों के माध्यम से जनमानस में राष्ट्र भक्ति की भावना को उत्प्रेरित किया जिसका परिणाम स्वरूप देश स्वतंत्रता की राह की ओर अग्रसर हो चला।

प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका में स्वतंत्रता आंदोलन में जनता की भागीदारी और साहित्य की भूमिका पर जोर दिया। उन्होंने 'हंस' को एक ऐसे मंच के रूप में इस्तेमाल किया जो जनता को जागरूक करे और स्वतंत्रता संग्राम में योगदान दे। प्रेमचंद ने 'हंस' के माध्यम से न केवल स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन किया, बल्कि साहित्य

और पत्रकारिता के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक चेतना जगाने का भी प्रयास किया। 'हंस' के संपादकीय लेखन में प्रेमचंद ने प्रेमचंद ने कहा कि स्वतंत्रता प्रत्येक नागरिक का अधिकार है जिसमें उन्होंने जनता की सक्रिय भागीदारी का आह्वान करते हुए उन्हें इस लड़ाई में शामिल होने के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने साहित्य को स्वतंत्रता आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हथियार बताया और साहित्यकारों से इस दिशा में सक्रिय योगदान देने का आग्रह किया था। प्रेमचंद ने सामाजिक न्याय और समानता पर भी जोर दिया, और कहा कि स्वतंत्रता का अर्थ केवल राजनीतिक आजादी नहीं है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक न्याय भी है। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध किया और इसे भारत की प्रगति में बाधा बताया। उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन किया और कहा कि एक स्वतंत्र प्रेस ही जनता को जागरूक कर सकती है। 'हंस' के संपादकीय में प्रेमचंद की निर्भीकता, स्पष्टवादिता और राष्ट्रीय चेतना स्पष्ट रूप से झलकती है। उन्होंने 'हंस' को एक ऐसा मंच बनाया जो न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर भी जनता को जागरूक करता था।

स्वतंत्रता आन्दोलन में हंस पत्रिका की भूमिका को लेकर प्रेमचंद ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "स्वाधीनता केवल मन की एक वृत्ति है। इस स्वाधीनता पर आजाद भारत में कम खतरे नहीं हैं। हंस लोकतंत्र और खास करके विचारों के लोकतंत्र पर आने वाले इन खतरों की पहचान करता है और इनका पुरजोर विरोध करता है। यकीनन हंस आंदोलन-धर्म है।"¹¹ प्रेमचंद अपने सम्पादकीय हंसवाणी से जनमानस को निर्भीकता, स्पष्टोक्ति, राष्ट्रीय ऊर्जस्विता और राष्ट्रीय ओजस्विता की अभिव्यक्ति की प्रेरणा से अभिभूत किया करते थे। राष्ट्र निर्माण में स्वराज आन्दोलन को तेज करने का कार्य हंस पत्रिका ने किया था। भारतीय समाज की संस्कृति, उसके नैतिक और मानसिक विकास के साथ ही आर्थिक एवं राजनैतिक स्तर पर एक सशक्त राष्ट्र बनाने कि जो भावभूमि प्रेमचंद ने खींची उसका परिणाम यह हुआ कि हासिए पर खड़ा समाज का हर वर्ग खड़ा हो गया। किसान हो, मजदूर हो या अन्य वर्ग सभी राष्ट्र के स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी-अपनी भूमिका सूनशिचित कर ली। हंस पत्रिका ने स्वतंत्रता आन्दोलन में जन चेतना को जागृत करने का कार्य किया है। प्रेमचंद देश की आजादी के लिए कटिबद्ध थे। उनका मानना था कि अंग्रेजों के विदाई तक ही यह आन्दोलन नहीं है, इस आन्दोलन का लक्ष्य तब पूर्ण होगा जब इसे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक रूप से समरूप किया जाय तभी देश की सच्ची आजादी होगी।

प्रेमचंद की हंस स्वाधीनता आन्दोलन की एक स्वतंत्र आवाज थी जो आमजन के लिए एक ऐसा माध्यम थी जो निरन्तर मां भारती की सेवा के लिए प्रेरणा देती थी। प्रेमचंद की पत्रिका हंस राष्ट्रवादी विचारधारा की साहित्यिक पत्रिका थी। स्वतंत्रता आन्दोलन में स्वराज की पक्षधर पत्रिका थी। स्वराज, स्वाभिमान और सशक्त भारत की विचार को साहित्य के माध्यम से प्रकाशित करती थी। हंस अनेक क्रांतिकारियों के विचारों को पत्रिका के माध्यम से आमजन तक पहुंचती थी, जिसके कारण आमजन में स्वराज की भावना को विकसित करती थी। हंस पत्रिका स्वाधीनता के लिए एक विचार मंच थी। यह ब्रिटिश शासन पर बिना शस्त्र के शस्त्र चोट करती थी। देश की स्वतंत्रता के लिए अपने विचारों से ओत-प्रोत होने के कारण हंस पत्रिका को अंग्रेजी शासन का कोपभाजन होना पड़ा था। हंस की संघर्ष गाथा यह स्पष्ट है कि यह एक क्रांतिकारी पत्र था, जो अपने जीवनकाल में सदैव स्वतंत्रता संग्राम के लिए संघर्ष करता रहा था।

संदर्भ :

1. डॉ रामवक्ष, प्रेमचंद, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, पृ. सं. : 73
2. वही, पृ. सं. : 74
3. सिंह डॉ. वशिष्ठ नारायण, काशी की हिंदी पत्रकारिता(1921-30),पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, दुर्गाकुंड, वाराणसी, पृ.सं: 104
4. प्रेमचंद, हांसवाणी (हंस का जन्म और उसकी नीति), हंस, अंक-1 मार्च 1930, सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ. सं. :63
5. शर्मा डॉ. रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, पटना।
6. प्रेमचंद, हांसवाणी (डोमिनियन और स्वराज), हंस, अंक-1 पृ. सं. : 64
7. सिंह डॉ. वशिष्ठ नारायण, काशी की हिंदी पत्रकारिता (1921-30), उक्त, पृ. सं. : 107
8. वही, पृ. सं. : 107
9. डॉ रामवक्ष, प्रेमचंद, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, पृ. सं. : 75
10. डॉ रामवक्ष, प्रेमचंद, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, पृ. सं. : 76
11. <https://hanshindimagazine.in>



युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर मादक पदार्थों का प्रभाव (नालन्दा जिला के बिहार शरीफ नगर के विशेष संदर्भ में)

मो. गयास सरवर*

सारांश:

कोई भी पदार्थ जिसका उपयोग किसी बीमारी या असमान्य स्थिति के लक्षणों के विराम, उपचार या राहत को रोकने के लिए किया जाता है उसे मादक पदार्थ कहते हैं। मादक पदार्थ यह भी प्रभावित कर सकती है कि मस्तिष्क और शरीर के बाकी हिस्से कैसे काम कर सकते हैं और मनोदशा, जागरूकता, विचार भावनाओं या व्यवहार में परिवर्तन का कारण बनते हैं, कुछ प्रकार के मादक पदार्थ का दुरुपयोग किया जा सकता है।

किशोरों के आराम करने और अपने अवरोध को कम करने के लिए सामाजिक समारोहों में मादक पदार्थ और अल्कोहल का उपयोग करते हैं। किशोरों में मादक पदार्थों की लत अक्सर विकसित होती है, क्योंकि उनके पार्टी समारोहों में मादक पदार्थों का उपयोग स्वाभाविक होता है। कुछ लोग शुरू में साथियों के दबाव के कारण उपयोग कर सकते हैं ताकि वे अपनी समस्याओं को कुछ समय भूल सकें। जबकि कई किशोर मादक पदार्थों का सेवन लगातार करते हैं और वे कई समस्याओं का सामना करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उनमें अकेदमिक अक्षमताएँ आ जाती हैं। मांसिक स्वास्थ्य सहित अनेक स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। उसमें ग्रेड का घटना, स्कूल और अन्य गतिविधियों से अनुपस्थिति होना और स्कूल छोड़ने की बढ़ती संभावना किशोरों के मादक पदार्थों के सेवन से जुड़ी एक समस्या है। मादक पदार्थों के सेवन के कारण कार दुर्घटना, शारीरिक विकलांगता, और अनेक बीमारी की संभावना बढ़ जाती है। शराब और अन्य नशीले पदार्थों से जुड़े युवाओं की अनुपातहीन संख्या, आत्महत्या, हत्या, दुर्घटना और बीमारी के माध्यम से मृत्यु के बढ़ते जोखिम का सामना करती है। मांसिक स्वास्थ्य समस्याएँ और अवसाद, विकासात्मक अन्तराल, उदासीनता और अन्य मनोवैज्ञानिक शिथिलता अक्सर किशोरों के बीच मादक पदार्थों के सेवन से जुड़ी होती है। नशीले पदार्थों के सम्पर्क में आने वाले बच्चों को शारीरिक और यौन शोषण के साथ-साथ उपेक्षा का खतरा काफी बढ़ जाता है। अक्सर युवाओं में चिंता, अवसाद, भ्रम और शैक्षिक एवं ध्यान की समस्या का दर अधिक बढ़ जाता है।

स्वास्थ्य स्वस्थ परिवार और समाज का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। यह कहा जाता है कि किसी व्यक्ति का उसके शरीर में सबसे करीबी दोस्त होता है। नशे का सेवन करने वाले शारीरिक और मांसिक बीमारी से पीड़ित होते हैं। नशीले पदार्थों का व्यवहार लोगों को स्वीकार्य नहीं होते हैं। किसी भी नशीले पदार्थ के लगातार उपयोग करने से मस्तिष्क की कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं और अन्य शारीरिक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।

शराब, भांग और विभिन्न उत्तेजक पदार्थ साइको एक्टिव ड्रग्स हैं। उनका व्यक्ति के मस्तिष्क के कार्य और संरचना पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मादक पदार्थों के उपयोग करने वाले को आर्थिक अभाव का सामना करना पड़ता है। नशीले पदार्थ के महंगे होने के कारण आर्थिक अभाव उत्पन्न हो जाता है जिसकी पूर्ति के लिए चोरी, हत्या या अन्य अपराध करते हैं। नशीले पदार्थ का उपयोग करने वाले सामान्यतः श्रम नहीं कर पाते हैं जिससे आर्थिक कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

शब्दकुँजी : मादक पदार्थ, अल्कोहल, स्वास्थ्य समस्या, आत्म हत्या, अवसाद, विकासात्मक अन्तराल, उदासीनता, मनोवैज्ञानिक शिथिलता।

परिचय : मादक पदार्थों का दुरुपयोग एक सामाजिक घटना के रूप में, वर्तमान युग की स्वास्थ्य समस्याओं में से एक है। अन्य सामाजिक घटनाओं की तरह नशीले पदार्थों के दुरुपयोग की प्रवृत्ति जटिल और बहुकारक

* शोधार्थी, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

Email Id : gayassarwar786@gmail.com, Mob No :- 9334682177

पता— सकूनत खुर्द, बिहार शरीफ, नालन्दा :-803101 (बिहार)

है। वर्तमान युग में स्वास्थ्य समस्याओं में से यह एक है जिससे लगभग सभी देश ग्रसित है। युवा लोगों का मस्तिष्क 20 वर्ष की आयु तक बढ़ने और विकसित होने लगता है। इस अवस्था में उपयोग का निर्णय लिया जाता है। युवावस्था में नशीले पदार्थों का सेवन मस्तिष्क में होने वाली विकासात्मक प्रक्रियाओं में बाधा उत्पन्न कर सकता है। उनमें जोखिम भरे काम करने की अधिक संभावना हो सकती है। नशीले पदार्थों के सेवन से युवाओं के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। **जेसर (1987)** ने व्यवहार की समस्या को एक ऐसे व्यवहार के रूप में परिभाषित किया है जो अनुपयुक्त, अवांछनीय, कानूनी और सामाजिक नियंत्रण की प्रतिक्रियाओं से विचलित है। नशीले पदार्थों के दुरुपयोग से सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और आर्थिक गहरे प्रभाव पड़ते हैं। नशीले पदार्थों के दुरुपयोग की दर अलग-अलग देशों और जातियों में अलग-अलग रही है। जितनी जल्दी युवा लोग नशीले पदार्थों का उपयोग करना शुरू करते हैं, उनके उपयोग रखने और जीवन में बाद में आदि होने की संभावना उतनी ही अधिक होती है। नशीले पदार्थों के सेवन का चलन युवाओं में स्थानांतरित होता रहता है। युवा लोगों द्वारा सबसे अधिक उपयोग की जाने वाले पदार्थों में शराब, तम्बाकू और मारिजुआना है। मानसिक विकारों का मादक पदार्थों से गहरा सम्बंध है जिसकी ओर युवाओं का बहुत अधिक झुकाव है। अवसाद विकारों को नशीले पदार्थों के दुरुपयोग से सम्बंधित महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कारकों में से एक माना जा सकता है। जब युवा भावनात्मक समस्याओं का सामना कर रहा होता है तो वे दर्दनाक या कठिन भावनाओं को रोकने या उस पर काबू पाने के लिए अक्सर शराब या नशीले पदार्थों के उपयोग करने का प्रयत्न करता है। मादक पदार्थों के उपयोग से युवा मस्तिष्क में होने वाले विकासात्मक प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न होता है। यह उन्हें किसी भी निर्णय लेने को भी प्रभावित कर सकता है। नशीले पदार्थ और शराब की समस्याओं वाले अधिकांश युवा सहवर्ती मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से पीड़ित होते हैं, जिन्हें सहवर्ती विकार को सहस्रगुणता कहा जाता है। इसके अतिरिक्त आचरण विकार और ध्यान में कमी जैसे बाहरी विकार हैं। अति सक्रिय विकार सबसे अधिक आम मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ प्रतीत होती हैं, लेकिन आन्तरिक विकार जैसे अवसाद एवं चिंता भी आमतौर से विकसित हो जाती हैं। मादक पदार्थों के सेवन से युवाओं में आर्थिक असंतुलन पैदा हो जाती है, जिसकी पूर्ति के लिए युवा असमाजिक कार्यों में संलग्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त मादक पदार्थों के सेवन से युवाओं में हृदय रोग, उच्च रक्तचाप एवं नींद सम्बंधी विकारों की संभावना बढ़ जाती है। उसका असर शैक्षणिक प्रदर्शन पर भी पड़ता है।

लम्बे समय से मादक पदार्थों के अनुचित सेवन से मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत ज्यादा असर पड़ सकता है। मादक पदार्थों का अनुचित सेवन न केवल शरीर के लिए बल्कि मस्तिष्क के क्रियाकलापों के लिए भी विषाक्त होता है और इस तरह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति पर भी अनुचित सेवन के लम्बे समय तक रहने वाले प्रभाव से प्रतिकूल असर पड़ सकता है। मादक पदार्थों का सेवन वालों में मनोरोग विकार, विशेष रूप से चिंता और अवसाद विकार आम हैं, और साथ ही साथ ज्यादा से ज्यादा 25 प्रतिशत शराबियों में गंभीर मनोरोग गड़बड़ी की शिकायत होती है। मनोविकृति, भ्रम और कार्बनिक मस्तिष्क सिंड्रोम लम्बे समय तक होने वाले शराब के सेवन से प्रेरित हो सकते हैं जिसकी वजह से प्रमुख मानसिक स्वास्थ्य विकारों जैसे—मनोभाजन में गलत रोग पहचान की समस्या हो सकती है। मस्तिष्क में तंत्रिका-रासायनिक तंत्र की विकृति के कारण लम्बे समय तक शराब के अनुचित सेवन के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में पहली बार आतंक विकार विकसित हो सकती है। आतंक विकार शराब वापसी सिंड्रोम के भाग के रूप में भी विकसित हो सकती है। **मुनीश कुमार (2019)** ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "युवा पीढ़ी में नशीली दवाओं के दुरुपयोग की समस्या ने भारत में खतरनाक आयाम पैदा कर दिया है। उन्होंने कहा कि सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव, बढ़ते आर्थिक तनाव और कमजोर परिवार के सहायक बंधनों के कारण नशीली पदार्थों के दुरुपयोग की शुरुआत हो गयी है। भारत में बड़ी संख्या में युवक मादक द्रव्यों के सेवन में फंस गये हैं। नशीली द्रव्यों के सेवन से सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिसमें पारिवारिक परेशानी और आपराधिक व्यवहार शामिल है।"

आज हमारा समाज बहुत व्यस्तता के कारण एक अजनबी दौर से गुजर रहा है। माता-पिता अपने-अपने व्यवसाय में इतने व्यस्त हैं कि जो समय अपने बच्चों को देना चाहिए वह नहीं दे पा रहे हैं। इससे हमारी नौवजवान पीढ़ी मानसिक तनाव एवं सही मार्गदर्शन के अभाव में मुख्य लक्ष्य से भटक रही है और क्षणिक आनन्द प्राप्ति के लिए मादक पदार्थों की तरफ आकर्षित हो रही है। यह एक सामाजिक बिडम्बना है एवं मादक पदार्थों के सेवन से होने वाले दुष्परिणामों से युवा वर्ग को अवगत करवाना ताकि वे इस बुराई में लिप्त न हों। खाली दिमाग शैतान का घर होता है। इसलिए युवा वर्ग को अपने खाली समय का सदुपयोग सृजनात्मक व रचनात्मक कार्य करने में लगाकर अपने अन्दर छिपी कला में निखार लाने का प्रयास करना

चाहिए। अगर हम सभी अब भी इसके प्रति सजग न हुये तो ये हमारी भावी पीढ़ी को नष्ट कर देगी। पाश्चात्यकरण का अनुसरण करते हुए व मीडिया के प्रभाव से एवं माता-पिता द्वारा अपेक्षित सफलता न मिलने पर किशोर वर्ग मादक पदार्थों के संरक्षण में आ जाते हैं। आज की युवा पीढ़ी मादक पदार्थों के सेवन की वजह से अपने लक्ष्य को भूल रही है और अपने जीवन को बर्बाद करके अपने माता-पिता को भी दुःख दे रही है।

अध्ययन का उद्देश्य : वर्तमान अध्ययन के सम्बंध में कुछ उद्देश्य है जो निम्नलिखित है

1. युवाओं में मादक पदार्थों के उपयोग करने की प्रवृत्ति का अध्ययन।
2. युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर मादक पदार्थों के प्रभाव का अध्ययन।
3. मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव से होने वाली आर्थिक हानि का अध्ययन।
4. मादक पदार्थों के सेवन से अपराध, भ्रष्टाचार एवं कदाचार को प्रोत्साहन देने वाले कारण का अध्ययन।
5. मादक पदार्थों के सेवन से होने वाले पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन का अध्ययन।

अनुसंधान उपकरण : यह अध्ययन बिहार शरीफ नगर के 150 युवाओं के साथ अनुसूची के आधार पर संरचित साक्षात्कार पर आधारित है। तथ्यों की आवृत्ति और औसत गणना के माध्यम से विश्लेषण किया गया है।

तथ्यों के विश्लेषण की विधि : अध्ययन में तथ्यों के विश्लेषण के लिए मात्रात्मक विधि का उपयोग किया गया है, क्योंकि अध्ययन के आंकड़े संख्यात्मक रूप से जुड़े हुए हैं।

तथ्यों का विश्लेषण : अध्ययन में इकाई के तौर पर 150 मादक पदार्थों के सेवनकर्ता तथा 207 लोग नॉन ड्रग्स यूजर्स को शामिल किया गया है। नशीले पदार्थों के दुरुपयोग करने वालों की औसत आयु 25.9 ± 2.96 वर्ष है और तुलना समूह की आयु 24.2 ± 3.36 वर्ष है। 150 मादक पदार्थों के सेवन करने वालों में 49 (32.7%) विवाहित थे, 93 (62.0%) अविवाहित थे और 8 (5.3%) अलग हो गये थे। दूसरी ओर 199: मादक पदार्थ के सेवन नहीं करने वाले तलाकशुदा थे। तालिका 2 में दो समूहों में उत्तरदाताओं के शिक्षा के स्तर को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि मादक पदार्थों के सेवन करने वालों में से 39% निरक्षर थे या प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की थी और 6% उत्तरदाताओं के पास उच्च डिग्री थी जबकि 27.2% नशीले पदार्थ के उपयोग नहीं करने वाले उत्तरदाताओं के पास अकादमिक डिग्री थी। शिक्षा स्तर और मादक पदार्थों के दुरुपयोग के व्यवहार के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बंध देखा गया। मादक पदार्थों के सेवन करने वालों में अवसाद, तनाव और चिंता का स्कोर मादक पदार्थ का सेवन नहीं करने वालों की तुलना में अधिक था।

मादक पदार्थों के उपयोगकर्ताओं में 113 (75.3%) मेथमफेटामाइन के नशेड़ी थे, 91 (60.6%) क्रोक एब्यूजर्स थे, 39 (26.2%) ने गजब का सेवन करते हैं तथा 49 (32.6%) शराब का उपयोग करते हैं। तालिका 3 के आकड़ों के अनुसार नशीले पदार्थों के दुरुपयोग करने वाले समूह में गैर नशीले पदार्थों के उपयोगकर्ताओं के बीच के सम्बंध में अधिक मनोवैज्ञानिक समस्याएँ थी, जिससे की नशीले पदार्थों के दुरुपयोग करने वालों में अवसाद, चिंता और तनाव का औसत स्कोर (9.08 ± 5.40) , (7.93 ± 5.64) तथा (8.74 ± 4.40) क्रमशः था जबकि गैर मादक पदार्थ धारक में (5.72 ± 4.96) , (4.55 ± 4.34) तथा (4.36 ± 4.06) क्रमशः था। इससे स्पष्ट होता है मनोवैज्ञानिक विकारों के अवसाद के लिए मादक पदार्थ धारकों में उच्चतम स्कोर पाया गया है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : वर्तमान अध्ययन के विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि लोगों की शिक्षा स्तर और नशीले पदार्थों के दुरुपयोग के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बंध है। परिणामों से पता चलता है कि सामान्य आबादी की तुलना में जो युवा मादक पदार्थ पर निर्भर है, उनमें मनोवैज्ञानिक विकृति और मानसिक विकारों के लक्षण पाए जाते हैं तथा वे मादक पदार्थों के सेवन नहीं करने वालों की तुलना में अवसाद, चिंता और तनाव का सामना अधिक करते हैं उन्हें जब आर्थिक कठिनाई का सामना होता है तो वे असमाजिक कार्यों को करने के लिए विवश हो जाते हैं। नशीले पदार्थों पर निर्भरता और मनोवैज्ञानिक के सह-जोखिम के अनुसार, यह अनुशंसा की जाती है कि उपरोक्त समस्याओं के निवारण के लिए शैक्षिक हस्तक्षेप और निवारक सामाजिक योजनाओं और मानसिक विकारों के उपचार का उपयोग किया जाए। साथ ही निम्न आयु समूहों में मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण पर आधारित सामान्य भविष्यवाणी के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों का विस्तार भी नशीले पदार्थों के दुरुपयोग को कम करने में प्रभावी हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. जेसर.आर (1987) "प्रॉब्लम-बिहेवियर दि साईकोलॉजिकल डेवलेपमेंट एंड एडोल्सेन्ट प्रॉब्लम ड्रिंकिंग, अकादमिक प्रेस, न्यूयार्क, ब्रिटिश जर्नल ऑफ एडिक्सन, पृष्ठ 331-342
2. कुओं, सी.जे. (2011) "रिस्क एंड प्रोटीक्टिव फैक्टर्स फॉर सुसाइड अमंग पेशेन्ट विथ मेथामफेटामिन डिपेंडेंस : ए नेस्टेड केस कन्ट्रोल, क्लिनिकल साइकोएटरी, न्यूयार्क, दि जर्नल ऑफ क्लिनिकल साइकोएटरी, 72(4), पृष्ठ 487-493
3. डंकन, बी.सी, क्रिस्टोफर, एस.एम. (2008) "एडोल्सेन्ट - आनसेट सब्सटान्स यूज डिपेंडेंस प्रीडिक्ट यंग एडल्ट मोरसालिटी, जनरल ऑफ एडोल्सेन्ट हेल्थ, 42(6), पृष्ठ 637-639
4. ब्रीयर, एम.एल (2007) सब्सटेंस यूज पाथबेज टू मेथामफेटामिन यूज एमंग ट्रीटेड यूजर्स, जर्नल ऑफ एडिक्शन बिहेवियर, 32(5), पृष्ठ 395-402
5. आगा बख्शी, एच (2009) "फैक्टस अफेइरिंग ट्रेंडस इन युथ ड्रग एब्यूज इंडास्ट्रियल, जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च, 36(5), पृष्ठ 264-269
6. महबूब, एच (2008) पैटर्न एंड इंकलनेशन ऑफ एडोल्सेन्टस टुवर्डस सब्सटेंस एब्यूज, जर्नल ऑफ शाहिद सदौली यूनिवर्सिटी ऑफ मेडिकल साइंसेस एण्ड हेल्थ सर्विसेज, 15(4), पृष्ठ 35-42
7. सेर्रास, ए0एच (2009) सब्सटेंस यूज बिहेवियर, मेन्टल हेल्थ-प्रॉब्लम्स, एण्ड यूज ऑफ मेन्टल हेल्थ सर्विसेज इन ए प्रोबविलिटी सैपल ऑफ कॉलेज स्टूडेंटस, जर्नल ऑफ एडिक्शन बिहेवियर, पृष्ठ 325-329
8. सजालाचा, एल.ए (2009) सब्सटेंस एब्यूज एंड मेंटल हेल्थ डिस्चैरिटीज : कम्परिजन्स एक्रॉस सेम्सुअल सैपल ऑफ यंग इंडियन वोमेन, जर्नल ऑफ सोशल साइंस मेडिसिन, पृष्ठ 336-339
9. अमीन शोकरावी, एफ (2010) हेल्थ प्रॉब्लम बिहेवियर्स इन इरानीयन अडॉलसेन्टस: ए स्टडी ऑफ क्रॉस कल्चरल एडोपटेशन, रिलाबिलिटी एंड वेलिडिटी, जर्नल ऑफ रिसर्च मेडिसिन साइंस, पृष्ठ 272-276
10. बेकर, एस0 जे (2011) "फैक्टर्स डैट इन्फ्लुन्स ट्रांजेक्टरीज चेंज इन फ्रिक्वेंसी ऑफ सब्सटेंस यूज एण्ड क्वालिटी ऑफ लाइफ अमंग एडोल्सेन्टस रिसिविंग ए ब्रीफ इंटरवेंशन जर्नल ऑफ पब्लिक मेडिसिन, पृष्ठ 275-280



गोरखपुर जनपद के शहरी तथा ग्रामीण उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

आनन्द प्रताप निषाद*
प्रो. किरन सिंह**

प्रस्तावना—

मानव के समग्र विकास तथा प्रगति में शिक्षा के महत्व को संपूर्ण विश्व में स्वीकार किया गया है। इसी कारण आज के विश्व में शिक्षा से बहुत बड़ी अपेक्षाएं की जाने लगी हैं। कोई भी राष्ट्र तब तक प्रगति के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता जब तक उस राष्ट्र के प्रत्येक मानव को अपना विकास करने के लिए सर्वोत्तम शिक्षा नहीं मिलती है। शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा ही मानव को सभ्य व सुसंस्कृत बनाया जा सकता है। शिक्षा ही वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रत्येक मानव की अंतर्निहित शक्तियों को सर्वोत्तम रूप से विकसित किया जा सकता है। शिक्षा ज्ञान का वह अमूल्य अस्त्र है, जो अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जिससे सभ्यताएं बनती हैं, संस्कृतियां परवान चढ़ती हैं, व इतिहास लिखे जाते हैं। इसीलिए शिक्षा को विकास के एक मानदंड के रूप में पहचाना जाने लगा है। जो राष्ट्र पढ़ता है, वही आगे बढ़ता है। किसी भी समाज को प्रगति के पथ पर अग्रसर होना है, तो शिक्षा को ही माध्यम बनाना पड़ेगा। शिक्षा ही मात्र ऐसा साधन है जिसके सहारे व्यक्ति और समाज में चेतना जागृत कर उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सकती है।

शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है। शिक्षा के प्रमुख तीन अंग हैं— अध्यापक, विद्यार्थी और पाठ्यक्रम। इन तीनों में शिक्षक का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षण का कार्य समस्त कार्यों में पवित्रम और परम आवश्यक माना जाता है क्योंकि ज्ञान दान के समान कोई भी पर हिताय निर्दिष्ट कार्य नहीं है। शिक्षण की प्रक्रिया निश्चित रूप से अध्यापक शिक्षा पर निर्भर है। शिक्षण को एक उदात्त व्यवसाय माना गया है। मानव इतिहास की श्रेष्ठतम विभूतियों ने इस व्यवसाय को अपनाया है। समस्त युगों के समस्त धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों ने इस व्यवसाय को अंगीकार करके इसके गौरव में और वृद्धि की है। बुद्ध, ईसा, गांधी, सुकरात, मोहम्मद, कन्फ्यूशियस ये सभी सच्चे अर्थों में मानव जाति के शिक्षक थे। इन्होंने अपने समय के सामान्य व्यक्तियों द्वारा जीवन में स्वीकार किये जाने वाले मानदंडों का साहस और ईमानदारी से विश्लेषण किया और उनको उच्चतर जीवन के आदर्श एवं कल्पना से परिचित कराया। उनकी महानता इस बात में है कि वह अपनी इस कल्पना को साकार बनाने में तन मन से जुटे रहे और उन्होंने इस कार्य में विलीन होकर स्वयं अपने व्यक्तित्व की गहराइयों में लोकोत्तर शक्तियां खोज निकाले।

प्राचीन काल से ही समाज में भावी नागरिकों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा अन्य सभी प्रकार के विकास करने का कार्य अध्यापकों को सौंपने की परंपरा रही है। अध्यापक का कार्य ज्ञान व संस्कृति के संरक्षण तथा हस्तांतरण तक सीमित नहीं है बल्कि परिस्थितियों के अनुरूप आवश्यक सामाजिक परिवर्तन भी लाना है। राष्ट्रीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विभिन्न क्षेत्रों के लिए सृजनशील नेतृत्व को विकसित करना तथा समानता स्वायत्तता व न्याय पर आधारित नवीन सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का लक्ष्य प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना भी अध्यापक समुदाय का उत्तरदायित्व है।

पारिभाषिक शब्दावली—

योग शिक्षा—

एक प्राचीनतम कला या अभ्यास जिसकी उत्पत्ति हिंदू धर्म से भी बहुत पहले हुई थी और जिसे आज वैश्विक पटल पर सर्वोच्च सर्वोत्तम स्थान प्राप्त है, उसे योग के नाम से जाना जाता है। योग शब्द संस्कृत के श्युजश् शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है जुड़ना या मिलना। दो या दो से अधिक पदार्थों के मेल को ही योग कहते हैं। योग विद्या का उल्लेख हमें भारतीय प्राचीन काल के ग्रंथों में मिलता है। वेदों में जैन

* शोधार्थी, शोध केन्द्र— लालबहादुर शास्त्री स्मारक पी.जी. कॉलेज आनन्दनगर, महाराजगंज (उ.प्र.)

सम्बद्ध— सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

** शोध निर्देशक, शोध केन्द्र— लालबहादुर शास्त्री स्मारक पी.जी. कॉलेज आनन्दनगर, महाराजगंज (उ.प्र.)

सम्बद्ध— सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

ग्रंथों में हम इसे वर्णित पाते हैं। इस विधा की प्राचीनता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि इसका ज्ञान भारतीय परंपरा में तब से विद्यमान था जब शिष्यों की शिक्षा दीक्षा के लिए गुरुमुख ही एकमात्र साधन था।

योग का शाब्दिक अर्थ संयोग है परंतु यह शब्द अत्यंत व्यापक अर्थ लिए हुए हैं। योग की विभिन्न परिभाषाएं अनेक ग्रंथों से मिलती हैं। महात्मा याज्ञवल्क्य, योग वशिष्ठ, आदि ने योग को विभिन्न अर्थों में परिभाषित किया है। महाकाव्य में, कालिदास के रघुवंश से भी हमें योग के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। मूलतरु या जनमानस में इसका प्रचलित अर्थ मस्तिष्क और तन के संयोग से है।

योग विद्या के गुरु के रूप में हिंदू धर्म के भगवान शिव का नाम अग्रणी है। योग के वास्तविक निरूपक महर्षि पतंजलि है। भारतीय परंपरा में अनेक योगियों ने इस इस विद्या को बढ़ावा देने हेतु अपना योगदान दिया है। इनमें से प्रमुख है गुरु गोरक्षनाथ जो नाथ संप्रदाय से जुड़ाव रखते हैं। गोरखनाथ के नाम पर ही एक शहर का नामकरण होना योग विद्या की महत्ता को दर्शाता है। योग एक ऐसा अभ्यास है जो हमें स्वस्थ तन और मन प्रदान करता है। मनुष्य इसकी साधना से क्लेशों को नष्ट कर सकता है और मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। योग का अंतिम लक्ष्य वस्तुतः मोक्ष प्राप्त करना ही है। पतंजलि ने योग के आठ अंगों का उल्लेख योग सूत्र में किया है जो इस प्रकार है—

यम — इसका अर्थ संयम नैतिकता या अनुशासन से लिया जा सकता है। यह कुल पांच होते हैं जिनके नाम हैं — अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्राह्मचर्य, अपरिग्रह।

नियम — इसका अर्थ कर्तव्य से लिया जा सकता है।

आसन — योग के लिए पतंजलि ने आरामदायक व स्थिर आसन ग्रहण करने का उपदेश दिया है। स्थिर सुखम आसनम्।

प्राणायाम — इसका अर्थ श्वास के संदर्भ में है।

प्राण-यम अर्थात् श्वास पर संयम या नियंत्रण।

प्रत्याहार— इसका अर्थ इंद्रियों से है।

धारण — एकाग्रता योग अभ्यास का मूल है यहां योग के इस पहलू पर जोर दिया गया है।

ध्यान— चिंतन—मनन,साधना ही ध्यान कहलाता है।

समाधि— समाधि का अर्थ जुड़ाव या मिलन के रूप में प्रयुक्त हुआ है यही परम आनंद है।

अभिवृत्ति—

सामान्यतः दैनिक जीवन में अभिवृत्ति का अर्थ शोधकर्ता दृष्टिकोण से लेते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इसके अर्थ में अन्तर है। मनोवैज्ञानिकों के विचारानुसार अभिवृत्ति का अर्थ किसी विशेष प्रकार की क्रिया के साथ उचित मत, अभिरुचि एवं आन्तरिक तत्परता का समूह है। अभिवृत्ति एक ऐसी क्रिया है जिसका व्यक्ति के मानवीय जीवन में एक स्थिर स्थान होता है। यह क्रिया हमारी प्रेरणाओं, संवेगों एवं भावनाओं को एक विशेष मोड़ प्रदान करती है और इन्हीं मनोवृत्तियों के कारण ही वैयक्तिक विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

मनोवृत्ति, विश्वास, रुचि, स्थाईभाव, मतकोण आदि शब्द अभिवृत्ति के समानार्थी शब्द हैं। इन शब्दों के विषय में मनोवैज्ञानिकों में बड़ा मतभेद है। सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसकी परिभाषा देने का प्रयास किया है—

ड्रेवर के अनुसार :

Drever defines attitude as “A more or less set or disposition of opinion, interest, purpose involving expectancy of a certain kind of experience readiness with an appropriate response.”

Drever- “A dictionary of Psychology” P.

ड्रेवर महोदय की परिभाषा को ध्यानपूर्वक देखने से विदित होता है कि इन्होंने अनुभव शब्द पर विशेष बल दिया है।

आलपोर्ट के अनुसार :

Attitude is a mental and neutral stage of readiness organized through experience, exerting a directive or dynamic influence upon the individuals, response to all subjects with which it is related.”

आलपोर्ट महोदय अभिवृत्ति को एक मानसिक और स्नायुविक तत्परता के रूप में वर्णन करते हैं, जिनका सम्बन्ध एक विशेष परिस्थिति में होने वाली एक विशेष प्रतिक्रिया से होता है।

गुड महोदय के अनुसार :

“Attitude is a state of mental and emotional readiness to react to situations, persons or things in a manner in harmony with a habitual pattern of response previously conditional to or associated with these stimuli”.

गुड महोदय का विचार है कि प्रतिक्रियाएँ सहज एवं स्वाभाविक होती हैं। किसी विशेष परिस्थिति में अपने स्वरूप को ज्ञात करने के लिए ये प्रतिक्रियाएँ पहले से ही निर्धारित रहती हैं।

योग—

योग का शाब्दिक अर्थ है जोड़ना, योग एक प्रक्रिया है जो यम से शुरू होकर समाधि तक पहुंचती है। योग मन और शरीर को जोड़ता हुआ अध्यात्म तक की यात्रा कर आता है यह एक सहज भाव की दशा है।

मनुष्य को अपने चित्त की वृत्तियों का निरोध करना चाहिए छ तभी योग जीवन में अनुकूल परिणाम को उत्पन्न कर सकेगा। योग के द्वारा इंद्रियों की चंचलता को नियंत्रण में लाया जा सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि योग ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने आप को स्वस्थ एवं दीर्घायु प्रदान कर सकता है और तमाम बीमारियों से निजात पा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज के आधुनिकता के समय में व्यक्तियों को योग शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है वर्तमान समय में चिकित्सा पद्धति में होने वाले व्यय एवं निदनात्मक समस्याओं से प्रभावित लोगों को योग शिक्षा पद्धति के ने आशा की नई किरण प्रदान की है। यद्यपि यह पद्धति प्राचीन काल से चली आ रही एक संपूर्ण चिकित्सा पद्धति है। जबकि मध्यकाल में यह पद्धति लोगों द्वारा भौतिक सुख सुविधाओं एवं भोग विलास के कारण प्रभावित रही परंतु आधुनिक युग में इस भौतिक संसाधनों के बाद भी समस्याओं में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। अब लोगों का ध्यान पुनः योग चिकित्सा पद्धति की ओर आकृष्ट होता नजर आ रहा है। जिसमें सभी उम्र के लोग का रुझान परिलक्षित हो रहा है। अतः लोगों को समुचित रूप से योग के बारे में अस्पष्ट जानकारी होना अनिवार्य है। इसके लिए योग शिक्षा पद्धति को औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा के साथ-साथ निरोधौपचारिक शिक्षा में शामिल किया गया है। जिसमें के संबंधित विद्यार्थियों भी योग शिक्षा के बारे में स्पष्ट सही जानकारी रख सके।

शिक्षण एक संप्रेषण व्यवहार है, जिससे सीखने वालों के क्रिया तर्क और विचार विश्लेषण संबंधी व्यवहारों में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। उनकी मानसिक शक्तियों का प्रयोग किया जाता है, इसलिए ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक तीनों प्रकार के व्यवहारों में परिवर्तन लाना शिक्षण का उद्देश्य होता है। अतः शिक्षण वह संप्रेषण व्यवहार है जिसमें शिक्षक की उपस्थिति होती है। शिक्षक अपने लक्ष्यों में तभी सफल माना जायेगा जब सीखने वालों में व्यावहारिक परिवर्तन लाये ऐसा परिवर्तन हर शिक्षक के वश की बात नहीं है बल्कि इस कार्य को वही शिक्षक कर सकेगा जो भली प्रकार से शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त होगा।

शोध कार्य का औचित्य

वर्तमान समय में योग शिक्षा में अनिवार्य विषय के रूप में शिक्षण तथा प्रशिक्षण दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों के लिए योग की शिक्षा दिया जाना जरूरी है अतः वर्तमान समय में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में योग के प्रति अभिवृत्ति लिए अध्ययन किया जायेंगे।

समस्या कथन —

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में योग के प्रति अभिवृत्ति लिए अध्ययन।

शोध उद्देश्य —

1. शहरी क्षेत्र के छात्र तथा छात्राओं की योग के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
2. ग्रामीण क्षेत्र के छात्र तथा छात्राओं के योग के प्रति आवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध परिकल्पना —

1. शहरी क्षेत्र के छात्र तथा छात्राओं की योग के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के छात्र तथा छात्राओं के योग के प्रति आवृत्ति में सार्थक अंतर है।

सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण—

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण सम्बन्धित क्षेत्र में किये गये शोध एवं अनुसंधान कार्यों के बारे में गहन जानकारी देता है। सम्बन्धित साहित्य समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, दृष्टिकोणों, पत्र-पत्रिकाओं, शोध प्रबन्धों तथा अभिलेखों को कहा जाता है जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता अपनी

समस्या के चयन,परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने तथा वर्तमान कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

अवस्थी कुमार दिलिप (2001) ने शिक्षक अभिभावक एवं छात्रों में जनसंख्या शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति तथा जागरूकता अभिप्रेरित करने में शासकीय तथा अशासकीय अभिकरणों का योगदान शीर्षक पर शोध कार्य।

निष्कर्ष— इनके द्वारा निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

1. विभिन्न समुदायों (हिन्दु,मुस्लिम तथा क्रिश्चियन) के महाविद्यालयी पुरुष शिक्षकों की जनसंख्या शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में अन्तर है।
2. विभिन्न समुदायों (हिन्दु,मुस्लिम तथा क्रिश्चियन) के महाविद्यालयी महिला शिक्षिकाओं की जनसंख्या शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर पाया गया।
3. विभिन्न समुदायों (हिन्दु,मुस्लिम तथा क्रिश्चियन) के पुरुषों अभिभावकों की जनसंख्या के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।
4. विभिन्न समुदायों (हिन्दु,मुस्लिम तथा क्रिश्चियन) के महिलों अभिभावकों की जनसंख्या के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर है।

द्विवेदी अर्चना श्रीमती (2002) ने 'जनसंख्या शिक्षा के प्रति शिक्षक की अभिवृत्ति का कुछ मनो-सामाजिक चरों के परीपेक्ष में अध्ययन' शीर्षक पर शोध कार्य—

निष्कर्ष—

1. जनसंख्या शिक्षा के प्रति विभिन्न शिक्षण स्तरीय ग्रामीण शिक्षक/शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई अन्तर नहीं है।
2. जनसंख्या शिक्षा के प्रति विभिन्न शिक्षण स्तरीय नगरीय शिक्षक/शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. जनसंख्या शिक्षा के प्रति विभिन्न शिक्षण स्तरीय ग्रामीण तथा नगरीय शिक्षक/शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अन्जुम सबीहा श्रीमती (2002) ने 'शिक्षित मुस्लिम महिलाओं में अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति एवं उनके मूल्यों का अध्ययन' शीर्षक पर शोध कार्य—

निष्कर्ष— इनके द्वारा निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

1. उच्च शिक्षित तथा मध्यम शिक्षित महिलाओं में विवाह के प्रति अभिवृत्ति औसत है।
2. उच्च शिक्षित तथा मध्यम शिक्षित महिलाओं में बाल विवाह के प्रति अभिवृत्ति औसत से कम है।
3. उच्च शिक्षित तथा मध्यम शिक्षित महिलाओं में संरक्षकता से सम्बन्धित अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति औसत से कम है।
4. उच्च शिक्षित तथा मध्यम शिक्षित महिलाओं में भरण पोषण अधिकारों से सम्बन्धित अभिवृत्ति औसत से अधिक है।

शोध विधि—

प्रस्तुत शोध कार्य विवरणात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण प्रकार का अनुसंधान है जिसमें वस्तु स्थित का पता लगाने, वर्तमान का अध्ययन करने से सम्बन्धित आँकड़ों एकत्रित किया जाता है। इन आँकड़ों का अध्ययन तथा विश्लेषण करके वर्तमान स्थिति के संदर्भ में निष्कर्ष प्राप्त किया जाता है तथा भविष्य की प्रत्याशाएँ लगायी जाती हैं। सर्वेक्षण के अन्तर्गत घटित हो चुकी घटनाओं अथवा किसी वस्तुस्थिति की वर्तमान की दशाओं का सर्वेक्षण के आधार पर अध्ययन किया जाता है। सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके व्याख्या की जाती है। विवरणात्मक शोध क्या है? इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

विवरणात्मक अनुसंधान—

जॉन डब्लू बेस्ट के अनुसार "विवरणात्मक अनुसंधान क्या है? का वर्णन तथा विश्लेषण करता है। परिस्थितियाँ अथवा सम्बन्ध जो वास्तव में वर्तमान हैं, अभ्यास जो चालू हैं, विश्वास, विचारधारा अथवा अभिवृत्तियाँ जो पायी जा रही हैं, प्रक्रियाएँ जो चल रही हैं, अनुभव जो प्राप्त किये जा रहे हैं, अथवा नई दिशाएँ जो विकसित हो रही हैं, उन्हीं से इसका सम्बन्ध है।"

विवरणात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत विशिष्ट प्रकार के अध्ययन किये जाते हैं। जैसे—सर्वेक्षण अध्ययन, विकासात्मक अध्ययन, व्यक्तिवृत्त अध्ययन, अर्न्तवस्तु अध्ययन, जनमत अध्ययन, सहसम्बन्धात्मक अध्ययन व उपनति अध्ययन इत्यादि।

सर्वेक्षण अनुसंधान—

सर्वेक्षण से तात्पर्य किसी प्रस्तुति या घटना की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके किसी क्षेत्र का समालोचनात्मक निरीक्षण करने से है। इसके अंतर्गत किसी घटना समूह या प्रस्तुत विभिन्न पक्षों से संबंधित सूचनाएं आंशिक रूप से संग्रहित की जाती हैं एवं सांख्यिकी विधि के द्वारा विश्लेषण की जाती है। सर्वेक्षण के लिए सामान्यतः सर्वे शब्द का प्रयोग भी होता है। जो किसी समय विशेष पर प्रचलित विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करता है।

जनसंख्या—

यह शोध कार्य गोरखपुर जनपद के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों पर आधारित है जिसमें – शहरी तथा ग्रामीण छात्र तथा छात्राएं दोनों सम्मिलित हैं।

प्रतिदर्श—

अध्ययन हेतु गोरखपुर जनपद के कुछ विद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया जाएगा। जबकि विद्यार्थियों का चयन भी यादृच्छिक विधि द्वारा किया जाएगा इस प्रकार कुल तीन सौ अस्सी (380) विद्यार्थियों का चयन किया जाएगा।

प्रतिदर्श सारणी

विद्यालय	शहरी विद्यार्थी 160	ग्रामीण विद्यार्थी 220
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	छात्र 70 छात्राएं 90	छात्र 90 छात्राएं 130
कुल संख्या— 380		

मनोवैज्ञानिक उपकरण— प्रस्तुत शोध कार्य में योग के प्रति अभिवृत्ति के मापन हेतु महेश कुमार मुच्छल द्वारा निर्मित योगा अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया जाएगा।

सांख्यिकी उपकरण— आंकड़ों के विश्लेषण एवं व्याख्या के लिए निम्नांकित सांख्यिकी उपकरणों का प्रयोग किया जाएगा।

मध्यमान— मध्यमान प्राप्तांको के योग को उनकी संख्या से भाग देने पर प्राप्त मान मध्यमान कहलाता है।

$$M = \frac{\sum fx^2}{N}$$

प्रमाणिक विचलन— यह आंकड़ों के विचलन शीलता की माप है सभी प्राप्तांको का मध्यमान से लिए गये विचलनो के वर्गों की योग को कुल संख्या का वर्गमूल प्रमाणिक विचलन कहलाता है।

$$SD = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{n} - \left(\frac{\sum fd}{n}\right)^2}$$

क्रांतिक अनुपात— क्रांतिक अनुपात का माप दो समूहों के मध्यमानों की तुलना करने पर क्रांतिक अनुपात का प्रयोग किया जाता है।

$$CR = \frac{M1-M2}{\sigma D}$$

परिकल्पना 01— शहरी क्षेत्र के छात्राध्यापक तथा छात्राध्यापिका की योग शिक्षा के प्रति आवृत्ति में सार्थक अंतर है।

$$H_0 : m_1 = m_2$$

$$H_1 : m_1 \neq m_2$$

आंकड़ों का विश्लेषण

सारणी 01

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	S-D	C-R	सार्थकता	
						.05	.01
शहरी छात्र	70	M1=52	4.70	1.44	.69	नहीं	नहीं
ग्रामीण छात्र	90	M2=51	8.43				

व्याख्या 01—: परिकल्पना 01— शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र के योग के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया जिसमें गणना से प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान .69 प्राप्त हुआ जो की सार्थकता के .05 तथा .01 स्तरों पर सार्थक नहीं है इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की योग के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है दोनों समूहों की योग के प्रति आवृत्ति एक समान है।

परिकल्पना 02— ग्रामीण क्षेत्र के छात्राध्यापक तथा छात्राध्यापिकाओं की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर हैं।

$$H_0 : m_1 = m_2$$

$$H_1 : m_1 \neq m_2$$

सारणी 02

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	S-D	C-R	सार्थकता	
						.05	.01
शहरी छात्रा	90	M1=51	8.43	1.15	0.93	नहीं	नहीं
ग्रामीण छात्रा	130	M2=50	7.16				

व्याख्या 02—: परिकल्पना 02— शहरी छात्राओं तथा ग्रामीण छात्राओं की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 0.93 प्राप्त हुआ है, जोकि .05 स्तर पर सार्थक नहीं है इसमें यह कहा जा सकता है कि शहरी छात्राओं तथा ग्रामीण छात्राओं की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्तियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है। दोनों समूहों की योग के प्रति आवृत्ति एक समान है।

निष्कर्ष

उद्देश्य के अनुरूप समस्त शोध कार्य का अध्ययन किया गया, जिसके निष्कर्ष निम्नवत हैं—

परिकल्पना 01 के अनुसार शहरी छात्रों तथा ग्रामीण छात्रों की योग के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया जिसमें गणना से प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान .69 प्राप्त हुआ जो की सार्थकता के .05 तथा .01 स्तरों पर सार्थक नहीं है इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है दोनों समूहों की योग के प्रति आवृत्ति एक समान है। मध्यमान में जो कुछ भी अंतर प्राप्त हुआ है वह प्रतिचयन त्रुटि के कारण उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है।

परिकल्पना 02 के अनुसार शहरी छात्राओं तथा ग्रामीण छात्राओं की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 0.93 प्राप्त हुआ है, जोकि .05 स्तर पर सार्थक नहीं है इसमें यह कहा जा सकता है कि शहरी छात्राओं तथा ग्रामीण छात्राओं की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्तियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है। दोनों समूहों की योग के प्रति आवृत्ति एक समान है। मध्यमान में जो कुछ भी अंतर प्राप्त हुआ है वह प्रतिचयन त्रुटि के कारण उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुड टी0एल एण्ड ब्रॉफी, जी0एफ0 (1979) : एजूकेशनल साइकोलॉजी: अ रियलिस्टिक एप्रोच. न्यूयार्क: होल्ट रिनहार्ट एण्ड विस्टन, 15-17.
2. गुप्ता, (2010) ने "समायोजित एवं कुसमायोजित शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन" नई दिल्ली: परिप्रेक्ष्य, वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016, न्यूपा।
3. गुप्ता, अमित कुमार (2011); "वित्तपोषित एवं वित्तहीन विद्यालयों के शिक्षकों की वृत्ति संतुष्टि, मानसिक स्वास्थ्य एवं समायोजन स्तर का अध्ययन" शोध प्रबन्ध, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद।
4. गुप्ता, एस0 पी0 एवं अलका गुप्ता (2015) भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन पेज संख्या 327-341.
5. गुप्ता राधा (2020) "जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डायट) में प्रशिक्षित प्राथमिक स्तर के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के आत्मबोध, आकांक्षा स्तर एवं व्यावसायिक सन्तोष का अध्ययन" प्रकाशित शोध ग्रन्थ छत्रपति शाहूजी वि0वि0 कानपुर उ0प्र0
6. चटर्जी, एस0, मुखर्जी, एम0 एण्ड बनर्जी एस0एम0 (1971) : इफेक्ट ऑफ सर्टेन सोशियो-इकानोमिक फैक्टर्स ऑन द स्कालिस्टिक अचीवमेण्ट ऑफ स्कूल चिल्ड्रेन, साइकोमेट्रिक रिसर्च एण्ड सर्विस यूनिट।
7. जगदीश एण्ड यादव, एस0 (1999) : रिलेशन बिटविन होम डेप्राइवेशन एण्ड मेण्टल हेल्थ एमंग स्कूल स्टूडेण्ट्स इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजूकेशन, 30(1), 35-38।
8. जैन, रंजना (2018): 'नशा करने वाले तथा नशा न करने वाले विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर के किशोरों के शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन का अध्ययन', इंटरनेशनल जर्नल आफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यू पृष्ठ 150 से 156.
9. ठाकुर, बसंती(2006); "किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन क्षमता पर उनके समाजार्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन" रायपुर छत्तीसगढ़:अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, शासकीय शिक्षा महाविद्यालय रायपुर।
10. डॉ. सारस्वत, मालती(2011); शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, इलाहाबाद: आलोक प्रकाशन, पृ. 15
11. डॉ. वर्मा, प्रीती एवं डॉ. श्रीवास्तव, डी.एन. मनोविज्ञान, आगरा: कॉलेज, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर, -2, सत्रहवां संस्करण, पृ. 162



उच्चतर माध्यमिक स्तर के शहरी तथा ग्रामीण विद्यार्थियों की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन

अर्चना मौर्या*
प्रो. किरन सिंह**

शोध सारांश

आज समाज में शिक्षा का प्रसार जितनी तेजी से बढ़ रहा है उतनी तेजी से मानव मूल्यों का ह्रास देखने को मिल रहा है। जबकि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में मानवीय मूल्यों का विकास करना होता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कहीं-न-कहीं कुछ कमी अवश्य है। शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में शिक्षक की भूमिका तो है ही, लेकिन शिक्षा के विकास में विद्यार्थियों के माता-पिता और अभिभावकों के सहयोग का प्रमुख स्थान है। शिक्षा शास्त्रियों के द्वारा यह अनुभव किया गया कि जब तक शिक्षक और अभिभावक में समन्वय और सहयोग न हो तब तक बालक की शिक्षा समुचित रूप से नहीं हो सकती है। इसलिए शिक्षक-अभिभावक संस्था के गठन की ओर ध्यान दिया गया और आज ऐसी संस्थाओं की शिक्षा व्यवस्था में इनकी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

प्रस्तावना –

शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। इससे वह समाज का एक उत्तरदायी घटक एवं राष्ट्र का प्रखर चरित्र संपन्न नागरिक बनकर समाज की सर्वांगिण उन्नति में आनी शक्ति का उत्तरोत्तर प्रयोग करने की भावना से ओत-प्रोत होकर संस्कृति तथा सभ्यता को पुर्नजीवित एवं पुर्नस्थापित करने के लिए प्रेरित हो जाता है।

शिक्षा व्यक्ति की संपूर्णता का परिमाण है यह व्यक्ति के चरित्र को उत्कृष्ट बनाती है। शिक्षा से ही व्यक्ति का चरित्र प्रखर बनता है। शिक्षा से ही व्यक्ति को सही रूप में देखा जाता है। शिक्षा से ही व्यक्ति सही रूप में चिंतन करना सीखता है। मानव शिक्षा के बगैर संपूर्णता की प्राप्ति नहीं कर सकता है। शिक्षा संपूर्ण रूप में शिक्षार्थी एक पहुँच इस हेतु शिक्षण का सही दिशा में कियान्वन होना आवश्यक है।

इस प्रकार शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। बालक प्रारंभ में माता-पिता व अन्य सदस्यों से सीखता है। घर से बाहर निकलने के पश्चात् वह विद्यालय खेल के मैदान तथा पड़ोस से नवीन अनुभव प्राप्त करने का परिणाम यह होता है, कि वह अपने वातावरण तथा जीवन में आने वाली नवीन परिस्थितियों से समायोजन करना सीख जाता है। इस प्रकार से शिक्षा का क्षेत्र व्यापक है।

आदत –

आदत व्यक्ति का एक विशेष गुण है जो प्रत्येक बालक में जन्म से ही होता है। कुछ आदतें उनमें जन्म से होती हैं तथा कुछ आदतें परिवार, स्कूल तथा खेल आदि से उनमें विकसित की जाती हैं। कुछ आदतें उम्र के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं, लेकिन यदि परिवार के द्वारा बालकों पर सही समय पर सही ध्यान दिया जाए तो परिवर्तित होने वाली आदतों को सकारात्मक रूप दिया जा सकता है, जिसका प्रभाव शिक्षा की उपलब्धियों पर भी निश्चित रूप से सकारात्मक ही होगा।

आदत का अर्थ–

जन्म से ही व्यक्ति अपने वातावरण से कुछ न कुछ सीखता रहता है। उसकी बहुत सी सीखी हुई किये बार-बार एक ही रूप में घटित होने के कारण स्थायी आचरण का रूप धारण कर लेती हैं। इन्हीं स्थायी आचरणों को आदत कहा जाता है। आदतों को मनुष्य में सीखे हुए व्यवहारों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। जिस कार्य को हम बार-बार करते हैं वे ही हमारी आदत बन जाती है।

* शोध छात्रा, शोध केन्द्र– लालबहादुर शास्त्री स्मारक पी.जी. कॉलेज आनन्दनगर, महाराजगंज (उ.प्र.)

सम्बद्ध– सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

** शोध निर्देशक, शोध केन्द्र– लालबहादुर शास्त्री स्मारक पी.जी. कॉलेज आनन्दनगर, महाराजगंज (उ.प्र.)

सम्बद्ध– सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)

आदत की परिभाषा –

गिलिलेण्ड के अनुसार आदत यह अर्जित अनुभव है जो व्यवहार परिवर्तन से आती है। अभिगम की प्रक्रिया से यह परिवर्तन आते हैं।

आदत के प्रकार सामान्यतः आदतें दो प्रकार की होती हैं। अच्छी तथा बुरी आदतें। अच्छी तथा बुरी आदत में से कुछ आदतें जीवनोपयोगी होती हैं कुछ दूसरों के द्वारा आती हैं। इसलिए आयतों को तीन प्रकार से विभाजित किया जाता है—

1. स्वकीय एवं परकीय आदत

जो आदत बालक स्वयं डालते हैं। स्वकीय होती है। जैसे बालना, उठना बैठना आदि। जो जादत कहलाती है, परन्तु यदि माता-पिता एवं शिक्षक ध्यान न दें तो बालकों में लियाने पढ़ने, चलने, बड़े होने के दोष पत्पन्न हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त पढ़ने से संबंधित दोष उत्पन्न होने लगते हैं, जैसे लेटकर पढ़ना पास से पढ़ना एक ही विषय अधिक पढ़ना, कठिन विषयों को न पढ़ना, गृह कार्य उन्हें उचित देख-रेख में रखने से बालकों में अच्छी आदतें विकसित होती हैं।

2. सहज एवं शैक्षणिक आदत

जिन आदतों या व्यवहारों को शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करते हैं शैक्षणिक आदत कहलाती है।

आदत की शिक्षा में उपयोगिता—

1. बालक के विकास के भिन्न-भिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के रुचिया एवं आदतें पायी जाती हैं। इसके लिए बालकों की आदत से अच्छी तरह परिचित होना चाहिए तथा बालक मस्तिष्क के अनुकूल भी कार्य का प्रश्न करना चाहिए।
2. किसी भी विषय में बालकों की आदतों में वृद्धि तथा परिवर्तन करने के लिए आवश्यक है, कि जो विषय बालकों को पढ़ाया वह न अधिक आसान हो न अधिक कठिन हो।
3. बालक प्रायः उन वस्तुओं में अधिक रुचि नहीं रखते जी उनकी आपत्तों के विपरीत ही। इसलिए पढ़ाते समय उद्देश्य को सदैव बालकों के समका स्पष्ट करना चाहिए।?

बालक और आदत—

बाल्य अवस्था से ही आदत डालने का समय है। जिन आदतों के अंकुरण बाल्यावस्था में उत्पन्न हो जाते हैं। के मनुष्य में जीवनपर्यन्त बने रहते हैं। बालक में अच्छी आदत होने पर उसका मानव जीवन सफल होगा अन्यथा बुरी आदत होने पर उसका जीवन कष्टों से भरपूर होगा। माता-पिता, अभिभावक, शिक्षक समी का यह कार्य है कि वे बालकों में अच्छी आदतें उत्पन्न करने का प्रयास करें तथा साथ ही यह भी ध्यान करना चाहिए कि बालक अपने आदतों का गुलाम न बन जाये। आदतों का स्वामी बनना ही सुखकर होता है।

आदत और शिक्षा—

शिक्षा का अर्थ है। विकास से संकट आदतों का ही मानव विकास में एक महाचपूर्ण स्थान है। शिक्षा व्यक्ति को विकास द्वारा सामाजिक जीवन को सुखी तथा समृद्धिशाली बनाने का प्रयास करती है। इसके लिए बालकों में अच्छी आदतों का विकास करना चाहिए। क्योंकि बालकों में अच्छे बुरे की पहचान नहीं के बराबर होती है।

अध्ययन की आवश्यकता—

शिक्षा यह साधन है, जिससे बालक की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। शिक्षा व्यक्ति के चरित्र को आकृष्ट बनाती है। यह व्यक्ति को सभ्य बनाती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति सही रूप में चिंतन करना सिखाता है तथा शिक्षा के बिना व्यक्ति संपूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता।

शिक्षा प्राप्त करते-करते बालक करते बालक अपने घर से कुछ आदतें भी ग्रहण करता है। जिससे वहां बालक अनु।सन कार्यों को समय पर पूरा करना तथा व्यवहार करना सीखता है। अध्ययन आदत से बालक-बालिकाओं में शैक्षिक उपलब्धि का विकास होता है तथा वह शिक्षा एवं शैक्षिक आदतें केवल माता-पिता से ही नहीं बल्कि अपने भाई व बहनों से भी सीखता है। जिसका संकाशामक प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। घर के अन्य सदस्य भी बालको की अध्ययन आदतों को विकसित करने में सहयोग देते हैं। जबकि बालक स्वयं अध्ययन आदत का विकास करके शैक्षिक उपलब्धि ग्रहण करने की

कोशिश करने में समर्थ होने की चेष्टा करते हैं। जिसके कारण बालक अपने अध्ययन आदत शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

विद्यार्थी चाहे विज्ञान या कला संकाय का हो दोनों ही विद्यार्थियों में अध्ययन आयतों का निर्माण उनके परिश्रम के द्वारा ही किया जाता है। जिनकी शैक्षिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं। दोनों ही प्रकार के विद्यार्थियों में अपनी आगमन आदत विकसित की जा सकती है। जिसका प्रभाव विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक पड़ता है। आतः माता-पिता, शिक्षक, अभिभावक का कर्तव्य है कि वे बालकों में शैक्षिक उपलब्धि का स्तर ऊंचा उठाने के लिए उनमें अच्छी अध्ययन आदतों को विकास करें।

संबंधित शोध साहित्य का अध्ययन—

विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा जो अध्ययन किया गया है, उन ज्ञानकोशों की संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास किया गया है, प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध में संबंधित साहित्य का अभाग है। जो अयांकित है।

एथ आर (1955) ने विद्यालय की अध्ययन आदतों का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन किया।

निष्कर्ष—छात्रों के अध्ययन आदत तथा शैक्षिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण भूमिका पैदा करना पड़ता है। दोनों ही प्रकार से अध्ययन आदत तथा शैक्षिक उपलब्धि विकसित की जा सकती है जिसका प्रभाव बालक की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक पड़ता है।

सक्सेना (1968) ने अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि में संबंध पर एक अध्ययन किया।

निष्कर्ष—अध्ययन आदतों और शैक्षिक उपलब्धि में कोई संबंध नहीं पाया गया।

पटेल के एवं वर्स ट्रेटन (1972) ने जेसूट स्कूल एवं महाविद्यालय के छात्रों की अध्ययन आदतों का अध्ययन किया।

निष्कर्ष—आधे से ज्यादा विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उनकी अध्ययन आदतों के अनुरूप थी।

शाह एच. पी. (1978) ने एस. पी. यू. केश जिले में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के बालकों अध्ययन आदतों का अध्ययन किया।

निष्कर्ष—बालकों के निवास स्थान, उनके शिक्षा स्तर, उनकी उम्र तथा पारिवारिक स्थिति का प्रभाव उनकी अध्ययन आदतों पर पड़ता है।

कोतवाला, एन.एन.एस.पी यू. (1980) माध्यमिक शालाओं के छात्रों की अध्ययन आदतों का अध्ययन किया।

निष्कर्ष—पढ़ने की आदत श्रेणी के स्तर पर आधारित है। अध्ययन आदत मापनी एवं शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक संबंध, परिणाम मापनी द्वारा नहीं पहचाना गया। अध्ययन आदत और पढ़ने की आदत का वलात्मक सार्थक संबंध है।

जी. सी. पी. आई. इलाहाबाद (1981) ने शोधकर्ता के अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के साध्य अध्ययन किया।

निष्कर्ष—शोधकर्ता के अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई संबंध नहीं पाया गया।

डॉ एस एल चोपड़ा (1982) ने छात्रों के अध्ययन आदत का मापन करने के लिए अध्ययन आदत मापनी का विकास किया।

निष्कर्ष—उन्होंने पाया कि छात्रों की शिक्षा के अध्ययन आदतों का मापन करने के लिए अध्ययन आदत मापनी एक विश्वसनीय एवं वैध मापनी है।

रेड्डी वेंकटरामी बैकट रामी ने शोधकर्ता के आंतरिक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया।

निष्कर्ष—शिक्षक, प्रशिक्षार्थियों में सामान्य रूप से आआंतरिक मूल्यांकन के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति पायी गई किन्तु दो भिन्न-भिन्न संस्थाओं के प्रशिक्षार्थियों की अभिवृत्ति में पर्याप्त भिन्नता पाई गई।

रिग्नीस (1955) ने अध्ययन आदतों और शैक्षिक उपलब्धि पर एक अध्ययन किया।

निष्कर्ष—इसमें इसमें उन्होंने 63 पुरुषों और 37 स्त्रियों को न्यादर्श हेतु अयनित किया और खण्ड विश्लेषण तकनीक के द्वारा निष्कर्ष निकाला और यह पाया कि अध्ययन आदतों और शैक्षिक उपलब्धि में कोई संबंध नहीं है।

अटल (1956) ने कॉलेज शिक्षकों की शिक्षण अभिवृत्ति का अध्ययन किया।

निष्कर्ष—उन्होंने पाया कि 90 शिक्षक विश्वसनीय हैं। जो अपने मूलभूत सिद्धांतों की अनुसार चलते हैं। ये शिक्षक अन्य लोगों पर भी विश्वास रखते हैं। और अपनी छात्रों की समस्याओं के समाधान में पूर्ण योगदान देते हैं।

ओजर्मन आर. एच. (1956) ने कक्षा में अध्ययन आदत परिवर्तन पर अध्ययन किया।

निष्कर्ष—उन्होंने पाया कि पाठ्य पुस्तकें और अध्ययन सामग्री आयतों को बदलने में सहायक नहीं होती, क्योंकि वे सानाजिक क्रियाओं के कारण बताकर उन्हें सुलझाने का प्रयास नहीं करती। कक्षा में यदि कारणों की विवेचना की जाये तो उससे छात्रों में आदत बनने में अधिक सहायता मिल सकती है।

अध्ययन का उद्देश्य—

अध्ययन का उद्देश्य के अंतर्गत शोधकर्ता द्वारा ली गई समस्या विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि पर एक अध्ययन उद्देश्यों का निर्माण किया है—उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के हेतु शोधकर्ता ने निम्न लिखित

1. परिकल्पना 01 — उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शहरी छात्रा तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत का अध्ययन करना।
2. परिकल्पना 02— उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शहरी छात्र तथा शहरी छात्रा की अध्ययन आदत का अध्ययन करना।
3. परिकल्पना 03— उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के ग्रामीण छात्र तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत का अध्ययन करना।
4. परिकल्पना 04— उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की अध्ययन आदत का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना—

प्रस्तुत समस्या के अध्ययन हेतु शोधार्थी ने निम्नलिखित परिकल्पनाएँ निर्मित की है—

1. परिकल्पना 01 — उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शहरी छात्रा तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. परिकल्पना 02— उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शहरी छात्र तथा शहरी छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. परिकल्पना 03— उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के ग्रामीण छात्र तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
4. परिकल्पना 04— उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

अध्ययन की परिसीमा—

प्रस्तुत शोध में अध्यायन आदतों को परिसीमित किया गया है। प्रस्तुत समस्या के अध्ययन हेतु शोधार्थी ने निम्नलिखित परिसीमाएँ निर्धारित की है।

1. प्रस्तुत अध्ययन हेतु गोरखपुर जिले का चयन किया गया है।
2. प्रस्तुत अध्ययन हेतु उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र—छात्राओं का चयन किया गया।
3. प्रस्तुत अध्ययन हेतु शहरी तथा ग्रामीण छात्र—छात्राओं का चयन किया गया है।
4. प्रस्तुत शोध में अध्ययन आदत एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

शोध प्रविधि—

प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध की समरगा के अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या—

जनसंख्या हेतु गोरखपुर जिले के चार विद्यालयों को लिया गया है। जिसमें इन चार विद्यालयों में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की अध्ययनरत छात्र छात्राओं का चयन किया गया है। जनसंख्या में से 400 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में शामिल किया गया है।

न्यादर्श—

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी ने स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श चयन के लिए गोरखपुर शहर में पढ़ने वाले 160 बालक—बालिकाओं तथा ग्रामीण में पढ़ने वाले 240 बालक—बालिकाओं को न्यादर्श में शामिल किया गया है।

न्यादर्श- सारणी

विद्यालय	शहरी छात्रा 90	ग्रामीण छात्रा 130
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	शहरी छात्र 70	ग्रामीण छात्र 110
कुल 400		

उपकरण- प्रस्तुत लघु में शोधकर्ता द्वारा डॉ मुखोपाध्याय एवं डॉ सनसनवाल द्वारा निर्मित अध्ययन आदत इनवेंटरी एवं मापनी का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण -

सांख्यिकीय अनुसंधान का मूल आधार है। शोध अथवा आंकणों के विश्लेषण अनुसंधान का मूल आधार हैं। अनुसंधान प्रक्रम में प्राप्त आंकड़ों के वर्गीकरण व व्यवस्थापन के पश्चात विभिन्न सांख्यिकीय मापी की गणना की आथ यकता पढ़ती है। जिसमें मध्यमान, मानक मानक विचलन एवं सी.आर. की गणना की गई है।
आंकडा का प्रस्तुतीकरण विश्लेषण एवं व्याख्या-

सारणी 01

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	C- R	सार्थकता	
					.05	.01
शहरी छात्रा	90	M1=5	2.77	1.72	नहीं	नहीं
ग्रामीण छात्रा	130	M2=4	5.85			

व्याख्या 01- परिकल्पना 01 शहरी छात्रा तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत की तुलना क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 172 प्राप्त हुआ है जो की सार्थकता के 05 तथा 01 स्तर पर सार्थक नहीं है, अतः कहा जा सकता है कि लगभग 99 प्रतिशत दशाओं में शहरी छात्रा तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी 02

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	C- R	सार्थकता	
					.05	.01
शहरी छात्र	70	M1=60	7.53	0	नहीं	नहीं
शहरी छात्रा	90	M2=60	7.35			

व्याख्या 02 परिकल्पना 02 शहरी छात्र तथा शहरी छात्रा की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया है जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 0 प्राप्त हुआ है जो यह प्रदर्शित करता है की सार्थकता के 05 तथा 01 स्तर पर कोई सार्थक अंतर नहीं है ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि 99 प्रतिशत दिशाओं में शहरी छात्र तथा शहरी छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी 03

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	C- R	सार्थकता	
					.05	.01
ग्रामीण छात्र	110	M1=58	6.76	0	नहीं	नहीं
ग्रामीण छात्रा	130	M2=58	5.22			

व्याख्या 03 परिकल्पना 03 ग्रामीण छात्र तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान शून्य प्राप्त हुआ जो यह प्रदर्शित करता है की सार्थकता के 05 तथा 01 स्तर पर कोई सार्थक अंतर नहीं है ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि 99 प्रतिशत दशाओं में ग्रामीण छात्र तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी 04

समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	C- R	सार्थकता	
					.05	.01
शहरी छात्र	70	M1=60	7.53	1.18	नहीं	नहीं
ग्रामीण छात्र	110	M2=58	6.76			

व्याख्या 04—परिकल्पना 04 शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया है जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 1.81 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 05 स्तर पर सार्थक नहीं है क्योंकि यह मान सार्थकता के 05 स्तर के मान 1.96 से कम है अतः यह कहा जा सकता है कि 05 सार्थकता स्तर के शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई है। साथ ही यहाँ मान सार्थकता के 01 स्तर के मान 2.58 से कम है अतः शून्य परिकल्पना सार्थकता 0.1 स्तर पर भी स्वीकृत हुई है। इस प्रकार 99 प्रतिशत स्थितियों में शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

निष्कर्ष—

1. परिकल्पना 01 सारणी से स्पष्ट होता है, कि शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया है जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 1.81 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 05 स्तर पर सार्थक नहीं है क्योंकि यह मान सार्थकता के 05 स्तर के मान 1.96 से कम है अतः यह कहा जा सकता है कि 05 सार्थकता स्तर के शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई है। साथ ही यहाँ मान सार्थकता के 01 स्तर के मान 2.58 से कम है अतः शून्य परिकल्पना सार्थकता 0.1 स्तर पर भी स्वीकृत हुई है।
2. परिकल्पना 02 सारणी से स्पष्ट होता है, कि शहरी छात्र तथा शहरी छात्रा की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया है जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 0 प्राप्त हुआ है जो यह प्रदर्शित करता है की सार्थकता के 05 तथा 01 स्तर पर कोई सार्थक अंतर नहीं है ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि 99 प्रतिशत दिशाओं में शहरी छात्र तथा शहरी छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।
3. परिकल्पना 03 सारणी से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण छात्र तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान शून्य प्राप्त हुआ जो यह प्रदर्शित करता है की सार्थकता के 05 तथा 01 स्तर पर कोई सार्थक अंतर नहीं है ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि 99 प्रतिशत दिशाओं में ग्रामीण छात्र तथा ग्रामीण छात्रा की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः यह परिकल्पना स्वीकृत होती है।
4. परिकल्पना 04 सारणी से स्पष्ट होता है कि शहरी छात्र तथा ग्रामीण छात्र की अध्ययन आदत का तुलनात्मक अध्ययन क्रांतिक अनुपात के आधार पर किया गया है जिसमें क्रांतिक अनुपात का मान 1.81 प्राप्त हुआ है जो कि सार्थकता के 05 स्तर पर सार्थक नहीं है क्योंकि यह मान सार्थकता के 05 स्तर के मान 1.96 से कम है अतः यह कहा जा सकता है कि 05 सार्थकता स्तर के शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई है। साथ ही यहाँ मान सार्थकता के 01 स्तर के मान 2.58 से कम है अतः शून्य परिकल्पना सार्थकता 0.1 स्तर पर भी स्वीकृत हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 50 अंक 11 सितम्बर 2004 (सम्पा.)।
2. जायसवाल, डा0सीताराम— पश्चिमी एशिया का इतिहास, प्रकाशन केन्द्र सीतापुर रोड, लखनऊ, 1995, पृ0सं0 339।
3. अग्रवाल, एस0के0— शिक्षा के तात्त्विक सिद्धांत, राजेश पब्लिशर्स—मेरठ 1972, पृ0सं0 295।
4. अग्रवाल, एस0के0— शिक्षा के तात्त्विक सिद्धांत, राजेश पब्लिशर्स—मेरठ 1972, पृ0सं0 442।
5. बाजपेयी, एल0बी0 एवं डॉ0 मालती सारस्वत—भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, आलोक प्रकाशन, पृ0सं0 87।

6. बाजपेयी, एल0बी0 एवं डॉ0 मालती सारस्वत-भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, आलोक प्रकाशन, पृ0सं0 102।
7. बाजपेयी, एल0बी0 एवं डॉ0 मालती सारस्वत-भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, आलोक प्रकाशन, पृ0सं0 92।
8. बाजपेयी, एल0बी0 एवं डॉ0 मालती सारस्वत-भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, आलोक प्रकाशन, पृ0सं0 102।
9. अग्रवाल, एस0के0- शिक्षा के तात्त्विक सिद्धांत, राजेश पब्लिशर्स-मेरठ 1972, पृ0सं0 12।
10. शिक्षा की प्रगति, वार्षिक पत्रिका, सीमेट, इलाहाबाद 2004-05।
11. योजना, वर्ष 49 अंक-6 सितम्बर 2005 पृ0सं0 22।
12. योजना, वर्ष 49 अंक-6 सितम्बर 2005 पृ0सं0 23।
13. रिपोर्ट ऑफ दि सेकेण्ड्री एजुकेशन री आर्गनाइजेशन कमेटी 1953 पृ0सं0 11।
14. रिपोर्ट ऑफ दि सेकेण्ड्री एजुकेशन री आर्गनाइजेशन कमेटी 1953 पृ0सं0 16ए तथा 21ए।
15. दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा 1976 पृ0सं0 13।
16. हारलाक, ए0बी0-चाइल्ड डेवलपमेण्ट, मैक्ग्रा दिल्ली बुक कं0 न्यूयार्क 1956 पृ0सं0 28।
17. दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा 1976 पृ0सं0 13।
18. मुकजी, एस0एन0, सेकेण्डरी एजुकेशन इन इण्डिया, 1972, पृष्ठ-35।
19. रिपोर्ट ऑफ द पोस्ट वार एजुकेशन डेवलपमेण्ट-1944 पृ0 26-27।
20. रिपोर्ट ऑफ द यूनीवर्सिटी एजुकेशन कमीशन 1948-49, पृष्ठ-11।
21. रिपोर्ट ऑफ द सेकेण्डरी एजुकेशन कमीशन, 1952-53, पृष्ठ-243।
22. रिपोर्ट ऑफ द इण्डियन एजुकेशन कमीशन 1964-66, एन0सी0ई0आर0टी0 1971, पृष्ठ-289-292।
23. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986।
24. अग्रवाल, जे0सी0 नेशनल पालिसी आन एजुकेशन-1986, आर्य बुक डिपा, नई दिल्ली, पृ0सं0- 67-71।
25. वृहत सेवारत शिक्षक अभिनवीनीकरण कार्यक्रम 1989 माड्यूल्स, एन0सी0ई0आर0टी0 द्वारा प्रकाशित पृष्ठ-10।
26. अग्रवाल, जे0सी0 राम मूर्ति रिपोर्ट, 1990 आन नेशनल पालिसी एजुकेशन, डोआवा हाउस, नई दिल्ली, पृ0सं0- 38।
27. पाठक, पी0डी0- भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2006, पृ0सं0 571।
28. रुहेला, सत्यपाल-शिक्षा का समाजशास्त्र : मूल सम्प्रत्यय एवं सिद्धान्त, उ0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ 1972।



स्वतंत्रता के बाद कश्मीर समस्या का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. हरीश कुमार सिंह*

सारांश

“भारत की स्वतंत्रता (15 अगस्त 1947) के साथ ही रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, जिनमें जम्मू-कश्मीर की स्थिति सबसे जटिल और विवादास्पद रही। कश्मीर की भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक विविधता और सीमावर्ती देशों से सटी सीमा ने इसे संवेदनशील बना दिया। महाराजा हरि सिंह द्वारा प्रारंभिक विलंब और पाकिस्तान समर्थित कबायलियों के आक्रमण ने कश्मीर समस्या को जन्म दिया। भारत में विधिवत विलय के बावजूद पाकिस्तान ने इस पर विवाद किया, जिससे यह मामला सैन्य, कूटनीतिक और अंतरराष्ट्रीय आयाम लेता गया। यह समस्या केवल भू-राजनीतिक नहीं, बल्कि राजनीतिक अस्थिरता, लोकतांत्रिक चुनौतियों, सांप्रदायिक तनाव और मानवाधिकारों से भी जुड़ी रही है। 1947 से लेकर 21वीं सदी में अनुच्छेद 370 के निष्प्रभावीकरण तक कश्मीर का घटनाक्रम भारत की आंतरिक और विदेश नीति को प्रभावित करता रहा है। यह शोध-पत्र कश्मीर समस्या के ऐतिहासिक विकास, भारत-पाक संघर्ष, संयुक्त राष्ट्र की भूमिका, आतंकवाद और हालिया राजनीतिक परिवर्तनों का विश्लेषण करता है। इसका उद्देश्य समस्या की जड़ों को समझकर समाधानोन्मुखी दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है।”

कश्मीर को “धरती का स्वर्ग” (Heaven on Earth) कहा जाना उसकी अद्वितीय प्राकृतिक सुंदरता, हिमाच्छादित पर्वतों, हरे-भरे बाग-बगीचों, झीलों और आकर्षक घाटियों के कारण है। यह उपमा विशेष रूप से मुगल सम्राट जहाँगीर द्वारा दी गई मानी जाती है। एक ऐतिहासिक संदर्भ के अनुसार, सम्राट जहाँगीर ने कश्मीर की यात्रा के दौरान कहा था: “अगर कहीं पृथ्वी पर स्वर्ग है, तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।”¹ जो न केवल अपने अद्वितीय प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही एक समृद्ध सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक विरासत का केन्द्र रहा है। वैदिक युग से लेकर मुगल, अफगान, सिख और डोगरा शासन तक कश्मीर विभिन्न शासकों और परंपराओं से प्रभावित होता रहा। आधुनिक राजनीतिक संदर्भ में कश्मीर की पृष्ठभूमि का विशेष महत्व 19वीं शताब्दी से आरंभ होता है, जब यह एक स्वतंत्र रियासत के रूप में स्थापित हुआ। अमृतसर संधि (1846) के अनुसार, प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने कश्मीर को 75 लाख रुपये की राशि में महाराजा गुलाब सिंह को बेच दिया।² इसके साथ ही जम्मू-कश्मीर पर डोगरा वंश का शासन स्थापित हो गया। यह रियासत धार्मिक दृष्टि से विषम थी – शासक हिंदू और जनसंख्या का बहुमत मुस्लिम समुदाय से था। डोगरा शासन के अंतर्गत मुस्लिम जनता को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में उपेक्षा का सामना करना पड़ा, जिससे धीरे-धीरे जन असंतोष और विरोध की भावना जन्म लेने लगी। बीसवीं सदी के प्रारंभ में, विशेषतः 1930 के दशक में, कश्मीर में राजनीतिक चेतना का विस्तार हुआ। 1931 में श्रीनगर में एक सभा के दौरान पुलिस गोलीबारी में कई मुस्लिम प्रदर्शनकारियों की मृत्यु हो गई, जिससे आंदोलन को गति मिली। इसके परिणामस्वरूप मुस्लिम कॉन्फ्रेंस की स्थापना हुई, जिसने डोगरा शासन के विरुद्ध आवाज़ उठाई। बाद में इस संगठन को शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में नेशनल कॉन्फ्रेंस के रूप में धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील मूल्यों के साथ पुनर्गठित किया गया।³

* एसोसिएट प्रोफेसर ‘इतिहास’, रामस्वरूप ग्रामोद्योग परास्नातक महाविद्यालय, पुखरायां कानपुर देहात
harishcsjmu09@gmail.com

शेख अब्दुल्ला और पंडित जवाहरलाल नेहरू के बीच बनी राजनीतिक और वैचारिक निकटता ने कश्मीर को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ा। इसके विपरीत मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग कश्मीर को मुस्लिम बहुल राज्य मानते हुए पाकिस्तान में शामिल करने की पक्षधर थी। इन दो विरोधाभासी दृष्टिकोणों के बीच कश्मीर की राजनीतिक दिशा अत्यंत जटिल बनती गई। 1947 आते-आते, जब भारत और पाकिस्तान का विभाजन हुआ, तब कश्मीर की स्थिति अत्यंत संवेदनशील थी। एक ओर राज्य की जनता लोकतांत्रिक अधिकारों और सामाजिक न्याय की माँग कर रही थी, वहीं दूसरी ओर भारत और पाकिस्तान के बीच भू-राजनीतिक तनाव बढ़ता जा रहा था। महाराजा हरि सिंह की तटस्थ रहने की नीति, कबायली आक्रमण और भारत में विलय जैसे घटनाक्रमों ने कश्मीर को एक संघर्ष का केंद्र बना दिया। इस प्रकार, कश्मीर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और उपनिवेशवादी विरासत से भी गहराई से जुड़ी हुई है। यही पृष्ठभूमि आगे चलकर स्वतंत्रता के बाद की कश्मीर समस्या की नींव बनी।

1980 के दशक के अंत तक जम्मू-कश्मीर की स्थिति अत्यंत जटिल हो चुकी थी। एक ओर संविधानिक प्रावधानों और राजनीतिक हस्तक्षेपों के कारण राज्य की स्वायत्तता में कटौती हुई, तो दूसरी ओर स्थानीय जनमानस में असंतोष और अविश्वास की भावना गहराने लगी। यही पृष्ठभूमि 1989 के बाद आतंकवाद और अलगाववाद के संगठित रूप में उभरने का कारण बनी। इस दौर की शुरुआत एक राजनीतिक संकट से हुई। 1987 के विधानसभा चुनाव, जो कि नेशनल कॉन्फ्रेंस और कांग्रेस के गठबंधन के तहत हुए, को व्यापक स्तर पर धांधलीपूर्ण माना गया। चुनाव में पराजित हुए कई युवा नेता और कार्यकर्ता हिंसक अलगाववादी संगठनों में शामिल हो गए। यही लोग बाद में हिजबुल मुजाहिदीन, जैश-ए-मोहम्मद, और लश्कर-ए-तैयबा जैसे आतंकी संगठनों की रीढ़ बने। पाकिस्तान, विशेष रूप से उसकी खुफिया एजेंसी ISI, ने इस असंतोष का लाभ उठाते हुए घुसपैठ, हथियार, प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता के माध्यम से कश्मीर घाटी में आतंकवाद को प्रोत्साहित किया। घाटी में बम धमाके, सुरक्षाबलों पर हमले, और नागरिकों की हत्या आम हो गई। इस हिंसा का सबसे दुखद पहलू रहा कश्मीरी पंडितों का सामूहिक पलायन।⁴ 1990 में हजारों पंडितों ने घाटी छोड़ दी और शरणार्थी बनकर देश के विभिन्न भागों में शरण ली। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए केंद्र सरकार ने कश्मीर में अर्धसैनिक बलों और सेना की तैनाती बढ़ाई। आतंकवादियों से निपटने के लिए आर्म्ड फोर्स स्पेशल पावर्स एक्ट (AFSPA) जैसे कठोर कानून लागू किए गए, जिनके अंतर्गत सुरक्षाबलों को विशेष अधिकार प्राप्त थे। यद्यपि इन कदमों से आतंकवाद पर आंशिक नियंत्रण पाया गया, परंतु इनके कारण मानवाधिकार उल्लंघन के आरोप भी बड़े पैमाने पर लगे। 1999 में कारगिल युद्ध के रूप में पाकिस्तान ने एक बार फिर कश्मीर घाटी के समीप LOC पार करके भारत की संप्रभुता को चुनौती दी। भारतीय सेना ने अद्भुत पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए घुसपैठियों को पीछे धकेला और यह युद्ध भारत की सामरिक तैयारी और संकल्प का प्रतीक बना।⁵

2000 के दशक में केंद्र सरकार द्वारा कई शांति वार्ताओं और विश्वास बहाली उपायों (CBMs) की शुरुआत हुई। हरियत नेताओं से संवाद, श्रीनगर-मुजफ्फराबाद बस सेवा, और नागरिक संपर्क कार्यक्रमों के माध्यम से शांति की संभावनाओं को बल देने की कोशिश की गई। हालांकि इन प्रयासों में कुछ सकारात्मक पहल हुए, लेकिन आतंकी घटनाओं की पुनरावृत्ति और सीमा पार घुसपैठ ने शांति प्रक्रिया को बार-बार बाधित किया। इस पूरे दौर ने कश्मीर को न केवल भारत-पाक टकराव का केंद्र बना दिया, बल्कि यह भारत की आंतरिक सुरक्षा, धर्मनिरपेक्षता, मानवाधिकार और लोकतंत्र के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में उभरा। आतंकवाद और अलगाववाद की जड़ें केवल बाहरी समर्थन में नहीं, बल्कि स्थानीय असंतोष, राजनीतिक अनिश्चितता और सामाजिक बहिष्करण में भी रही हैं।

21वीं सदी में भारत ने जम्मू-कश्मीर को लेकर अपनी नीति में रणनीतिक और वैधानिक परिवर्तन लाने की दिशा में कदम बढ़ाए। लंबे समय से चली आ रही राजनीतिक अस्थिरता, आतंकवाद, और अलगाववाद की

स्थिति ने केंद्र सरकार को यह सोचने पर मजबूर किया कि विशेष दर्जे की संवैधानिक व्यवस्था – विशेषकर अनुच्छेद 370 और 35A — से राज्य में समरसता और विकास की प्रक्रिया बाधित हो रही है। यही पृष्ठभूमि 5 अगस्त 2019 को लिए गए ऐतिहासिक निर्णय का आधार बनी। भारत सरकार ने संसद में एक संकल्प प्रस्तुत किया, जिसके तहत अनुच्छेद 370 को निष्प्रभावी कर दिया गया और साथ ही अनुच्छेद 35A को भी समाप्त कर दिया गया।⁶ इसके साथ ही “जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019” पारित हुआ, जिसके अंतर्गत राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया गया – जम्मू-कश्मीर (एक केंद्र शासित प्रदेश, विधानसभा सहित) एवं लद्दाख (एक केंद्र शासित प्रदेश, बिना विधानसभा) यह निर्णय भारतीय इतिहास में एक संवैधानिक क्रांति के रूप में देखा गया।⁷ अनुच्छेद 370 के हटने के बाद जम्मू-कश्मीर अब अन्य राज्यों की भांति भारतीय संविधान के सभी अनुच्छेदों और कानूनों के अंतर्गत आ गया। इसके प्रभावस्वरूप नागरिकता, शिक्षा, भूमि स्वामित्व, आरक्षण, महिला अधिकार आदि में समानता का प्रावधान लागू हुआ। सरकार का तर्क था कि इस निर्णय से राज्य में अवरोधित विकास, निवेश की कमी, और बाहरी नागरिकों के लिए भूमि और अवसरों की बंद स्थिति समाप्त होगी। साथ ही यह आतंकवाद के लिए पोषक सामाजिक और संवैधानिक आधारों को समाप्त करेगा। हालांकि इस निर्णय की आलोचना भी हुई। जम्मू-कश्मीर के प्रमुख राजनीतिक दलों – जैसे नेशनल कॉन्फ्रेंस और पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी — ने इसे “लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध” बताया क्योंकि इसे बिना राज्य की विधान सभा की सहमति के लागू किया गया। इंटरनेट बंदी, नेताओं की नजरबंदी, और सुरक्षा बलों की भारी तैनाती जैसे कदमों को लेकर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी चर्चा हुई। पाकिस्तान ने इस निर्णय का कड़ा विरोध किया और इसे संयुक्त राष्ट्र में उठाने का प्रयास किया, लेकिन भारत ने इसे पूर्णतः आंतरिक और संवैधानिक मामला बताते हुए किसी भी बाहरी हस्तक्षेप को अस्वीकार कर दिया। भारत की यह नीति रही कि कश्मीर उसका अखंड और अविभाज्य भाग है, और इसके पुनर्गठन का निर्णय पूरी तरह से संसद के अधिकार क्षेत्र में आता है।

आज, अनुच्छेद 370 के हटने के पश्चात् कश्मीर एक नए युग की ओर बढ़ रहा है। जहाँ एक ओर सुरक्षा स्थिति में सुधार, आर्थिक परियोजनाओं की शुरुआत, और लोक प्रशासन में पारदर्शिता जैसे संकेत दिखते हैं, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक प्रतिनिधित्व की पुनर्बहाली, जन आकांक्षाओं की पूर्ति, और सांस्कृतिक आत्मसम्मान को बनाए रखने की आवश्यकता भी उतनी ही प्रबल है।

कश्मीर समस्या स्वतंत्र भारत की सबसे जटिल और दीर्घकालिक चुनौतियों में से एक रही है। यह केवल एक भौगोलिक विवाद नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गहराई से जुड़ा हुआ मुद्दा है। 1947 में हुए विलय से लेकर 2019 में अनुच्छेद 370 के निष्प्रभावीकरण तक कश्मीर का घटनाक्रम भारत की राष्ट्रीय एकता, लोकतांत्रिक प्रणाली और विदेश नीति को लगातार प्रभावित करता रहा है। राजनीतिक अस्थिरता, आतंकवाद, और अलगाववाद ने राज्य को वर्षों तक विकास और शांति से वंचित रखा। वहीं, भारत सरकार ने समय-समय पर कश्मीर को मुख्यधारा में लाने के लिए कानूनी, सैन्य और सामाजिक प्रयास किए हैं। अनुच्छेद 370 का हटाया जाना एक निर्णायक मोड़ है, जिससे कश्मीर एक नए युग की ओर बढ़ रहा है। कश्मीर की स्थायी शांति और समृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ लोकतांत्रिक ढांचा पुनर्स्थापित हो, जनता की भागीदारी बढ़े, और सांस्कृतिक आत्मसम्मान का संरक्षण किया जाए। तभी यह ऐतिहासिक समस्या वास्तव में एक स्थायी समाधान की दिशा में आगे बढ़ सकेगी।

संदर्भ सूची (Footnotes)

1. जहाँगीर, *तुजुक-ए-जहाँगीरी* (जहाँगीर का आत्मचरित), फारसी में रचित। इसमें उन्होंने कश्मीर की सुंदरता का उल्लेख करते हुए यह प्रसिद्ध पंक्ति लिखी थी।
2. Satish Chandra, *History of Medieval India* (for context of princely states and early British treaties), पृष्ठ 335-336

3. **Bamzai, P.N.K.** *A History of Kashmir* प्रकाशित: Metropolitan Book Co. Pvt. Ltd., New Delhi पृष्ठ संख्या: 578-580.
4. **Sumantra Bose**, *Kashmir: Roots of Conflict, Paths to Peace*, Harvard University Press, 2003 पृष्ठ 84-86
5. **Ministry of Defence, Government of India**, *Annual Report 1999-2000*, पृष्ठ संख्या: 25
6. **Government of India**, *The Constitution (Application to Jammu and Kashmir) Order, 2019* दिनांक: 5 अगस्त 2019 **भारत का राजपत्र (The Gazette of India), Part II, Section 3, Sub-section (i)**
7. **Government of India**, *The Jammu and Kashmir Reorganisation Act, 2019*, **The Gazette of India, Extraordinary, Part II—Section 1, No. 55, dated 9 August 2019**



मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के जनजातीय संगीत वाद्य यंत्रों का सांस्कृतिक एवं लोक जीवन में प्रारूप

निकुंज वेद*

शोध सारांश-

मध्य प्रदेश और राजस्थान के जनजातीय समुदायों का संगीत और वाद्य यंत्र उनकी सांस्कृतिक पहचान और लोक जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। इन वाद्य यंत्रों का उपयोग न केवल धार्मिक अनुष्ठानों और उत्सवों में होता है, बल्कि ये समुदायों की सामाजिक संरचना, परंपराओं और इतिहास को भी दर्शाते हैं।

मध्य प्रदेश में जनजातीय संगीत वाद्य यंत्रों की विविधता देखने को मिलती है। अदिवासी लोक कला अकादमी, जो 1980 में स्थापित हुई, इन वाद्य यंत्रों के संरक्षण और प्रचार-प्रसार में सक्रिय है। यह अकादमी अदिवासी लोक कला संग्रहालय और रामायण कला संग्रहालय जैसे संस्थानों के माध्यम से इन वाद्य यंत्रों की महत्ता को उजागर करती है।

राजस्थान में भी जनजातीय संगीत वाद्य यंत्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। सारंगी, जो बाड़मेर और जैसलमेर क्षेत्रों में प्रचलित है, लंगा और मांगणियार समुदायों द्वारा बजाई जाती है। इसके अलावा, जंतर, जो मेवाड़ क्षेत्र में प्रचलित है, वीणा के प्रारंभिक रूप जैसा है। राजस्थान के लोक संगीत में पानिहारी, पाबूजी की फड़ और मांड जैसी शैलियाँ प्रमुख हैं, जिनमें इन वाद्य यंत्रों का महत्वपूर्ण योगदान है।

भारत की सांस्कृतिक विविधता में जनजातीय समाजों का महत्वपूर्ण स्थान है। मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के जनजातीय समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत में संगीत और वाद्य यंत्रों का अहम योगदान है। ये वाद्य यंत्र न केवल लोक संगीत का माध्यम हैं, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजनों का अभिन्न हिस्सा भी हैं। इस शोध आलेख में हम मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के प्रमुख जनजातीय वाद्य यंत्रों का सांस्कृतिक महत्व, उनकी बनावट, उनके उपयोग और जनजीवन में उनकी भूमिका का अध्ययन करेंगे।

मध्य प्रदेश एवं राजस्थान की जनजातीय संस्कृति का परिचय-

मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में बसे प्रमुख जनजातीय समूहों में भिल, गोंड, कोल, मीना, भीलाल आदि शामिल हैं। ये जनजातियाँ पारंपरिक रीति-रिवाजों, लोक कला और संगीत में समृद्ध हैं। इनके गीत और संगीत वाद्य यंत्रों के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक, कृषि और युद्ध से जुड़ी कहानियाँ एवं परंपराएं पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होती हैं।

प्रमुख जनजातीय संगीत वाद्य यंत्र-

मध्य प्रदेश के वाद्य यंत्र-

- **मुर्ली (बांसुरी):** भिल जनजाति में प्रचलित, इसे धार्मिक अनुष्ठानों और लोक नृत्यों में उपयोग किया जाता है।
- **ढोलक एवं डफ:** मेलों, त्योहारों में नृत्य के साथ बजाए जाते हैं।
- **ढमरी:** एक प्रकार का मृदंग जैसा वाद्य यंत्र।
- **तमस:** स्थानीय झांझ जैसी धातु की झांझ।

राजस्थान के वाद्य यंत्र-

- **रावणहत्था:** राजस्थान की प्रमुख जनजातीय वाद्य यंत्र, यह एक तार वाला रसीला वाद्य यंत्र है।
- **खड़ताल:** लोक गीतों के साथ तालबद्ध धुन के लिए।
- **डफली:** लोक नृत्यों और भजन-कीर्तन में उपयोग।
- **मंजीरा:** छोटी-छोटी झांझ।

वाद्य यंत्रों का सांस्कृतिक महत्व-

इन वाद्य यंत्रों के माध्यम से जनजातीय समाज अपनी भावनाओं, सामाजिक संदेशों और आध्यात्मिक मान्यताओं को अभिव्यक्त करता है। वाद्य यंत्र नृत्य, पूजा-अर्चना, शादी-ब्याह, कृषि उत्सव एवं युद्ध की तैयारियों में भावपूर्ण माहौल बनाते हैं। इनके गीतों में इतिहास, मिथक और जीवन दर्शन छिपा होता है।

* शोधार्थी, प्रदर्शन कला विभाग, एकलव्य विश्वविद्यालय, दमोह म. प्र. ईमेल - nik.v1238@gmail.com

जनजातीय जीवन में संगीत वाद्य यंत्रों की भूमिका-

संगीत वाद्य यंत्र केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक एकता, सांस्कृतिक पहचान और पीढ़ीगत ज्ञान के हस्तांतरण का माध्यम है। भिल जनजाति में 'डांडिया' नृत्य में ढोलक की ताल से सामूहिक उत्साह बढ़ता है। राजस्थान के मीना समुदाय में रावणहत्था के माध्यम से वीरता और प्रेम की कथाएं सुनाई जाती हैं।

सामाजिक एवं धार्मिक संदर्भ-

जनजातीय वाद्य यंत्र पूजा और अनुष्ठानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे भिलों में 'पोखा पूजा' के दौरान ढोलक और मुरली का प्रयोग किया जाता है। राजस्थान में त्योहारों और विवाह समारोहों में खड़ताल और मंजीरा संगीत को धार्मिक भावनाओं से जोड़ते हैं। ये वाद्य यंत्र समाज की धार्मिक सहमति और एकजुटता का प्रतीक हैं।

वर्तमान स्थिति और संरक्षण के प्रयास-

औद्योगिकीकरण और आधुनिकता के कारण जनजातीय वाद्य यंत्रों का अस्तित्व खतरे में है। युवा पीढ़ी में इनके प्रति रूचि कम होती जा रही है। इसके बावजूद राज्य सरकारों और कुछ गैर सरकारी संगठन पारंपरिक संगीत वाद्य यंत्रों के संरक्षण के लिए कार्यरत हैं। संगीत महोत्सव, कार्यशालाएं और प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाकर इन वाद्य यंत्रों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जा रहा है।

मध्य प्रदेश की सबसे बड़ी जनजाति भिल है। भिल जनजाति के लोक संगीत और वाद्य यंत्र उनकी संस्कृति का आधार हैं। प्रमुख वाद्य यंत्रों में मुरली (बांसुरी), ढोलक, ढमरी और तमस शामिल हैं।

- **मुरली:** यह बांसुरी की एक खास किस्म है, जिसका उपयोग भिल समुदाय में विशेष पूजा, धार्मिक अनुष्ठानों और विवाह समारोहों में किया जाता है। मुरली की मधुर धुनें प्राकृतिक वातावरण और जनजीवन की भावनाओं को व्यक्त करती हैं।
- **ढोलक और ढमरी:** ये ताल वाद्य यंत्र हैं, जो मेलों, नृत्यों और लोक उत्सवों में एकजुटता का प्रतीक होते हैं। भिल नृत्य जैसे 'डांडिया' में इन वाद्यों की ताल पर नृत्य किया जाता है, जो सामाजिक मेलजोल को बढ़ावा देता है।
- **तमस:** एक धातु से बना वाद्य यंत्र, जो युद्ध या शिकार के समय संदेशवाहक के रूप में बजाया जाता था।

गोंड जनजाति और संगीत वाद्य यंत्र-

गोंड जनजाति मध्य प्रदेश के अलावा छत्तीसगढ़ में भी पाई जाती है। गोंड संस्कृति में संगीत वाद्य यंत्रों का अत्यंत महत्व है। गोंडों की लोक कथाओं और गीतों को ढोल, मंजीरा और बांसुरी के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

- **ढोल:** गोंड मेलों और धार्मिक अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा है।
- **मंजीरा:** छोटे झांझ जो गीतों में तालबद्धता बनाए रखते हैं।
- **बांसुरी:** गोंड लोकगीतों में प्रकृति और प्रेम की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

कोल जनजाति और वाद्य यंत्र-

कोल जनजाति मध्य भारत के आदिवासी समाज में एक महत्वपूर्ण समूह है। इनके लोक संगीत में ढोलक, मंजीरा और तमस जैसे वाद्य यंत्रों का उपयोग होता है। इनके गीत कृषि, शिकार और धार्मिक पर्वों से जुड़े होते हैं।

सांस्कृतिक महत्त्व-

मध्य प्रदेश के जनजातीय वाद्य यंत्र समाज के पारंपरिक उत्सव, शिकार, विवाह और पूजा में जीवन्तता लाते हैं। ये वाद्य यंत्र न केवल मनोरंजन का स्रोत हैं, बल्कि ज्ञान, इतिहास और सामाजिक मूल्यों का माध्यम भी हैं। इनका उपयोग सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक पहचान के निर्माण में किया जाता है।

राजस्थान के जनजातीय संगीत वाद्य यंत्र और उनकी सामाजिक भूमिका-**भील जनजाति के वाद्य यंत्र और संगीत-**

राजस्थान की भील जनजाति मध्य प्रदेश की भिलों से सांस्कृतिक रूप से जुड़ी है। भील समुदाय में संगीत वाद्य यंत्रों का धार्मिक, सामाजिक और मनोरंजक महत्व अत्यंत गहरा है।

- **रावणहत्था:** राजस्थान की भील और मीना जनजाति में बहुत लोकप्रिय एक तार वाला रसीला वाद्य यंत्र। इसे घोड़े की खाल और लकड़ी से बनाया जाता है। रावणहत्था के माध्यम से वीरता, प्रेम और सामाजिक कहानियां लोकगीतों के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं।
- **खड़ताल:** धातु की छोटी-छोटी झांझें, जो लोक नृत्य और भजन में तालबद्धता का काम करती हैं।

- **ढोलक एवं डफली:** विवाह, त्योहार और मेलों में धुन बजाने के लिए

मीना जनजाति के वाद्य यंत्र-

मीना जनजाति राजस्थान की एक महत्वपूर्ण जनजाति है, जो अपनी लोक संस्कृति और संगीत के लिए जानी जाती है। मीना लोकगीतों में रावणहत्था, मंजीरा, डफली का प्रयोग होता है। इनके गीतों में कृषि, सामाजिक घटनाएं, युद्ध और वीरता के विषय प्रमुख होते हैं।

जनजातीय वाद्य यंत्रों की सामाजिक भूमिका-

राजस्थान के जनजातीय वाद्य यंत्र सामाजिक आयोजनों जैसे शादी, जन्म, त्योहार, और धार्मिक अनुष्ठानों में एकजुटता और उल्लास का स्रोत हैं।

- **शादी-ब्याह में:** ढोलक, डफली, मंजीरा के साथ गीत गाकर सामाजिक मेलजोल बढ़ाया जाता है।
- **त्योहारों में:** जैसे हुल्लड़, नवरात्रि में खड़ताल और रावणहत्था से ताल देते हैं।
- **सामाजिक चेतना का प्रचार:** वाद्य यंत्रों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक बुराईयों के खिलाफ गीत गाए जाते हैं।

लोक नृत्यों में वाद्य यंत्रों का योगदान-

राजस्थान की लोक नृत्य-प्रथाओं में जैसे घूमर, कालबेलिया, भवाई में संगीत वाद्य यंत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन नृत्यों की ताल वाद्य यंत्रों की धुनों से बनती है, जो दर्शकों को आकर्षित करती है और कलाकारों को प्रोत्साहित करती है।

धार्मिक संदर्भ, वर्तमान स्थिति और संरक्षण के प्रयास-

धार्मिक संदर्भ में जनजातीय वाद्य यंत्रों की भूमिका-

मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के जनजातीय समाज में वाद्य यंत्रों का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा-पाठ, तथा पारंपरिक त्योहारों में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

- **पूजा-अर्चना में:** भिल और गोंड जनजातियों में मुरली और ढोलक की धुन के साथ देवी-देवताओं की स्तुति की जाती है। इन वाद्य यंत्रों की ध्वनि को पवित्र माना जाता है और इन्हें देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बजाया जाता है।
- **त्योहारों में:** राजस्थान के मीना और भील समुदायों में खड़ताल, रावणहत्था आदि वाद्य यंत्रों का उपयोग हर्षोल्लास के साथ होता है। ये वाद्य यंत्र त्योहारों के उत्साह को बढ़ाते हैं और सामाजिक एकता को मजबूत करते हैं।
- **मृत्यु संस्कार और शोक संगीत:** कुछ जनजातीय समुदायों में मृत्यु संस्कार के दौरान भी विशिष्ट वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है, जो शोक व्यक्त करते हैं और मृतक की आत्मा की शांति के लिए बजाए जाते हैं।

जनजातीय संगीत वाद्य यंत्रों की वर्तमान स्थिति-

आधुनिकता, शहरीकरण, तथा शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण पारंपरिक जनजातीय वाद्य यंत्र और संगीत की भूमिका घटती जा रही है। युवा पीढ़ी अधिकतर आधुनिक संगीत वाद्यों की ओर आकर्षित हो रही है, जिससे पारंपरिक वाद्य यंत्रों के अस्तित्व पर संकट आ गया है।

संरक्षण के प्रयास-

सरकार और गैर सरकारी संगठन जनजातीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण हेतु कई पहल कर रहे हैं:

- **संगीत महोत्सव एवं कार्यशालाएं:** लोक कलाकारों को मंच प्रदान करना और युवा वर्ग को प्रशिक्षण देना।
- **शैक्षिक संस्थानों में लोक कला का समावेश:** लोक संगीत वाद्य यंत्रों को पाठ्यक्रम में शामिल करना।
- **डिजिटल संरक्षण:** रिकॉर्डिंग, वीडियो, और शोध कार्य के माध्यम से लोक वाद्य यंत्रों का संरक्षण।

चुनौतियाँ और सुझाव-

- **चुनौतियाँ:** आर्थिक संसाधनों की कमी, शहरीकरण, युवाओं की कम रुचि, पारंपरिक ज्ञान का लुप्त होना।
- **सुझाव:** जनजातीय कलाकारों के लिए वित्तीय सहायता, सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देना, लोक कला केंद्र स्थापित करना, और समुदाय आधारित संरक्षण योजनाएं बनाना।

निष्कर्ष-

मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के जनजातीय संगीत वाद्य यंत्रों का सांस्कृतिक और लोक जीवन में अत्यंत गहरा महत्व है। इन वाद्य यंत्रों के माध्यम से जनजातीय समाज अपनी सांस्कृतिक पहचान, परंपराएं, धार्मिक आस्थाएं और सामाजिक अनुभवों को अभिव्यक्त करता है।

भिल, गोंड, कोल, मीना, मांगणियार, लंगा जैसे जनजातीय समुदायों की संगीत परंपरा न केवल उनकी लोककला का हिस्सा है, बल्कि उनके जीवन के हर पहलू से जुड़ी हुई है — जन्म से लेकर मृत्यु तक, खेती से लेकर युद्ध तक, पूजा से लेकर पर्व-त्योहारों तक।

मध्य प्रदेश में प्रमुख वाद्य यंत्रों में **मुरली**, **ढोलक**, **ढमरी** और **तमस** प्रमुख हैं, जिनका उपयोग पूजा-अनुष्ठान, नृत्य और सामाजिक आयोजनों में किया जाता है। भिल समुदाय की मुरली, केवल संगीत का माध्यम नहीं बल्कि प्रकृति और भावनाओं की अभिव्यक्ति है। वहीं, राजस्थान में **रावणहत्था**, **खड़ताल**, **डफली**, **मंजीरा** जैसे वाद्य यंत्र लंगा, मांगणियार, भील और मीना समुदायों द्वारा लोकगीतों और लोकनृत्यों के साथ उपयोग किए जाते हैं। रावणहत्था जैसे वाद्य यंत्र वीरता और प्रेम की गाथाओं को प्रस्तुत करने का प्रमुख माध्यम हैं।

इन वाद्य यंत्रों की विशेषता न केवल उनकी ध्वनि में है, बल्कि उनकी बनावट में भी पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय संसाधनों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे रावणहत्था में घोड़े की खाल, लकड़ी और नारियल के खोल का प्रयोग होता है, जो इसे एक अद्वितीय और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध वाद्य यंत्र बनाता है। धार्मिक दृष्टिकोण से भी इन वाद्य यंत्रों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। पूजा-पाठ, देवी-देवताओं की आराधना, विवाह, मृत्यु संस्कार आदि में इनका प्रयोग धार्मिक भावनाओं को सशक्त करता है। सामाजिक आयोजनों और उत्सवों में सामूहिकता, उल्लास और पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देने में ये वाद्य यंत्र मुख्य भूमिका निभाते हैं।

हालांकि, आधुनिकता, शहरीकरण और पाश्चात्य प्रभाव के कारण इन वाद्य यंत्रों की परंपरा संकट में है। नई पीढ़ी इनसे दूर होती जा रही है, और पारंपरिक ज्ञान का हस्तांतरण बाधित हो रहा है। इसके बावजूद सरकार और गैर-सरकारी संस्थाएं प्रशिक्षण, कार्यशालाओं, महोत्सवों और संग्रहालयों के माध्यम से इनके संरक्षण हेतु प्रयासरत हैं। इस शोध आलेख के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि मध्य प्रदेश और राजस्थान के जनजातीय वाद्य यंत्र केवल संगीत के उपकरण नहीं हैं, बल्कि वे एक जीवित संस्कृति के वाहक हैं। इनका संरक्षण केवल संस्कृति की रक्षा नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, परंपरा और आत्म-गौरव के पुनर्स्थापन का भी माध्यम है। अतः यह आवश्यक है कि जनजातीय समुदायों की इस सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित किया जाए और आने वाली पीढ़ियों को इससे जोड़ने के प्रयास निरंतर किए जाएं।

संदर्भ सूची -

1. **गोपाल, बी.एन.** (2004). *भारतीय जनजातीय संस्कृति एवं संगीत*. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
2. **शर्मा, रामनिवास.** (2012). *राजस्थान की जनजातियाँ: लोक संस्कृति और संगीत*. जयपुर: राजस्थान प्रकाशन।
3. **सिंह, विजय.** (2010). *मध्य प्रदेश के जनजातीय समाज एवं उनकी सांस्कृतिक धरोहर*. भोपाल: मध्य प्रदेश लोक कला संस्थान।
4. **सरोकार, अमरजीत.** (2015). *भारतीय लोक वाद्य यंत्र और उनकी सामाजिक भूमिका*. मुंबई: लोक कला प्रकाशन।
5. **त्रिपाठी, शशि कुमार.** (2018). *जनजातीय संगीत और वाद्य यंत्र*. दिल्ली: राष्ट्रीय संगीत अकादमी।
6. **चौहान, दीपक.** (2007). *राजस्थान की जनजातीय लोक कला*. उदयपुर: राजस्थान जनजातीय विकास परिषद।
7. **कुमार, अनिल.** (2011). *भारत के जनजातीय संगीत: एक सामाजिक अध्ययन*. इलाहाबाद: भारतीय सांस्कृतिक केंद्र।



भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और आर्थिक असमानता का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. शिखा गिरि*

शोध सारांश –

भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विविधताएँ एक जटिल सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं। यहां आर्थिक असमानता एक गंभीर मुद्दा है जो समाज के विभिन्न स्तरों के बीच टकराव और विभाजन की स्थिति उत्पन्न करता है। आर्थिक असमानता को प्रसिद्ध समाजशास्त्री कार्ल मार्क्स ने अपने महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'वर्ग संघर्ष' की अवधारणा के माध्यम से विस्तार से समझाया है। भारतीय सन्दर्भ में यह संघर्ष आर्थिक संसाधनों एवं अवसरों तक पहुंच की असमानता, सामाजिक स्तरीकरण एवं श्रमिक वर्ग के शोषण से जुड़ा है। यह शोध पत्र भारतीय समाज में आर्थिक असमानता के कारणों के साथ वर्ग संघर्ष एवं उसके सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण एवं संभावित समाधान हेतु दृष्टिकोण प्रस्तुत करेगा।

बीज शब्द – वर्ग संघर्ष, आर्थिक असमानता, भारतीय समाज, सामाजिक स्तरीकरण।

प्रस्तावना –

भारत जैसे विविधताओं वाले देश में आर्थिक असमानता एवं वर्ग संघर्ष केवल आर्थिक कारणों पर निर्भर नहीं करता। जैसा कि मार्क्स के सिद्धान्तों में विदित होता है। यहां मार्क्स के आर्थिक निर्धारणवाद के विपरीत जनसांख्यिकी, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक वातावरण के साथ-साथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सैकड़ों वर्षों से भारतीय समाज की पहचान उसकी विशिष्ट "जाति व्यवस्था" जो समाज को कठोरता से स्तरीकृत कर रही है, आर्थिक असमानता के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है। वस्तुतः असमानता एक सर्वव्यापी घटना है लेकिन एककारकीय एवं अखण्ड नहीं है। आर्थिक असमानता एवं संघर्ष संसाधनों के असमान वितरण का परिणाम है। इस शोध पत्र में द्वितीयक स्रोतों से एकत्रित आंकड़ों के माध्यम से आर्थिक असमानता के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करने के साथ ही वर्ग संघर्ष जैसे समाज में असमानता को बढ़ावा देता है, को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय समाज ऐतिहासिक रूप से धर्म, जाति, वर्ग में विभाजित रहा है। यहां वर्ग संघर्ष एवं आर्थिक असमानता के प्रभावों को गहराई से अनुभव किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर ऑक्सफैम इंटरनेशनल की नवीनतम रिपोर्ट "सर्वाइवल ऑफ़ द रिचेस्ट : द इण्डिया स्टोरी" भारत में आय की महत्वपूर्ण असमानता को उजागर करती है। सबसे अमीर 1 प्रतिशत लोगों के पास अब देश की कुल सम्पत्ति का 40 प्रतिशत से अधिक हिस्सा है।¹ विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 भी भारत में आय असमानता की स्थिति को उजागर करती है। यहां शीर्ष 10 प्रतिशत आबादी के पास 57 प्रतिशत और शीर्ष 1 प्रतिशत के पास 22 प्रतिशत राष्ट्रीय आय में हिस्सेदारी है। वहीं निचले 50 प्रतिशत के पास केवल 13 प्रतिशत हिस्सेदारी घटकर रह गयी है।²

भारतीय समाज में अंतर्निहित विसंगतियों के कारण आर्थिक असमानता का विमर्श पहले ही अनेक जटिलताओं से युक्त था। इसी दौरान नवउदारवाद और वैश्वीकरण के उभार ने ऐसी आर्थिक नीतियों को जन्म दिया, जिनमें असमानता विकास प्रक्रिया का एक अपरिहार्य प्रतिफल थी। विश्व असमानता रिपोर्ट के पिछले कुछ वर्षों से आंकड़े भी यह दर्शाते हैं कि शीर्ष पर स्थित 1 प्रतिशत जनसंख्या की सम्पत्ति में असाधारण वृद्धि हो रही है। नवउदारवादी नीतियों के कारण शहरों में आर्थिक असमानता बढ़ी है। गांवों और शहरों के मध्य आर्थिक असमानता की खाई गहरी हुई है। जिसके परिणामस्वरूप अलग-अलग क्षेत्रों में विकास की मात्रा एवं संरचना में गहरा अंतर पैदा हुआ है।

*पूर्व शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही (सम्बद्ध महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी)

जहां तक भारत का संबंध है यहां आर्थिक असमानता के लिए केवल वितरण की असमानता को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। जति प्रथा और अस्पृश्यता जैसी सामाजिक कुरीतियां एवं श्रम बाजार में जातिगत भेदभाव वे कारक हैं जो दलितों को भूमि और सम्पत्ति तथा उनके श्रम के उचित मूल्य से वंचित रखने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। अनेक अर्थशास्त्रियों को यह आशा थी कि नवउदारवाद और वैश्वीकरण जैसी आधुनिक अवधारणाएं भारतीय सामाजिक आर्थिक व्यवस्था से जातीय और लैंगिक गैर बराबरी को दूर करने में सहायक होंगी, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। औद्योगिक संस्थानों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को हमेशा प्रशिक्षित, कार्यकुशल श्रमिकों की एवं कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। निजी क्षेत्र का तर्क यह है कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक रूप से, पिछड़े वर्गों (दलित आदिवासी महिला) में इस तरह के सुयोग्य श्रमिकों का स्वाभाविक रूप से आभाव होता है। इस कारण उन्हें निजी क्षेत्र में अवसर नहीं मिल पाता। यह आश्चर्यजनक है कि निजी क्षेत्र अनुसूचित जाति एवं जनजाति के क्षेत्रों को व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं छात्रवृत्ति देने के मामले में तो उदारता दर्शाता है लेकिन जब इन्हें रोजगार देने की बात आती है, वह पीछे हटने लगता है।

भारत एक विविधता पूर्ण समाज है जहाँ आर्थिक असमानता की जड़े गहरी हैं, यहाँ वर्ग और जाति के आधार पर सामाजिक विभाजन सदियों से चला आ रहा है³, जो कि आर्थिक असमानता को और बढ़ाता है।

स्वतंत्रता के बाद भी आर्थिक असमानता को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सका। भारतीय समाज में आर्थिक असमानता का मुख्य कारण शिक्षा, रोजगार, भूमि एवं संसाधनों का असमान वितरण है। उदारीकरण और निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों ने श्रमिक वर्ग की स्थिति में कोई सुधार नहीं किया, इसके विपरीत देश के समृद्ध वर्ग को और समृद्ध बनाने के साथ ही अमीर और गरीब के बीच की खाई को और चौड़ा किया है।

वर्ग संघर्ष की अवधारणा –

वर्ग संघर्ष की अवधारणा समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह संघर्ष समाज में विभिन्न आर्थिक वर्गों के बीच होता है। जिनका मुख्य उद्देश्य संसाधनों पर नियंत्रण और समाज में अपनी स्थिति को मजबूत करना होता है। 'कार्ल मार्क्स के अनुसार समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित होता है। – पूँजीपति वर्ग, जो उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण रखता है और श्रमिक वर्ग जो अपने श्रम के माध्यम से जीवन यापन करता है।⁴ उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण रखने वाले वर्ग के द्वारा श्रमिक वर्गों का शोषण होता है, जो न्यूनतम संसाधनों पर जीने को मजबूर होता है। यह संघर्ष तब तक जारी रहता है जब तक कि आर्थिक संसाधनों का समान वितरण नहीं हो जाता था। वर्गहीन समाज की स्थापना नहीं हो जाती।

आर्थिक असमानता के कारण –

1. **शिक्षा और रोजगार में असमानता** – शिक्षा के अवसरों में असमानता, विशेष रूप से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच, आर्थिक असमानता का एक प्रमुख कारण है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता खराब है, जिससे युवाओं को रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं मिलता इससे निम्न वर्ग के लोग आर्थिक रूप से पीछे रह जाते हैं।
2. **भूमि और संसाधनों का असमान वितरण** – भारत में भूमि और संसाधनों का असमान वितरण आर्थिक असमानता को बढ़ाता है।⁵ पूँजीपति वर्ग के पास अधिक संसाधन होते हैं, जबकि निम्न वर्ग के लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करते हैं। यह असमानता ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक दिखाई देती है। जहाँ किसान और मजदूर अधिकतर गरीबी में जीने को मजबूर होते हैं।
3. **आर्थिक नीतियां** – उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों ने भारत के धनी वर्ग को तो लाभ पहुंचाया है, लेकिन गरीब वर्ग पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। बड़े उद्योगपतियों और पूँजीपतियों ने इन नीतियों का फायदा उठाया जबकि श्रमिक वर्ग अपने आर्थिक हालात सुधारने में असमर्थ रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि अमीर और अमीर होते गये, जबकि गरीबों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ।

वर्ग संघर्ष के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव –

1. **सामाजिक विभाजन और असमानता** – भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष के कारण धनी और गरीब वर्गों के बीच गहरा विभाजन हो गया है। उच्च वर्ग अपनी सम्पत्ति और संसाधनों को सुरक्षित रखने का प्रयास करता है, जबकि निम्न वर्ग अपने अधिकारों और संसाधनों के लिए संघर्ष करता है। यह विभाजन सामाजिक असंतोष और अस्थिरता को बढ़ावा देता है।

2. **श्रमिकों का शोषण** – भारतीय समाज में श्रमिक वर्ग का शोषण लम्बे समय से चला आ रहा है। औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूरों को उनकी मेहनत के अनुरूप मजदूरी नहीं मिलती, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं होता, श्रमिक वर्ग अपने हक के लिए संघर्ष करता है, लेकिन पूंजीपतियों और उच्च वर्ग के शोषण का शिकार बनता है। इसका कारण यह होता है कि समाज में असमानता और संघर्ष की स्थितियां पूर्ववत् बनी रहती हैं।
3. **आन्दोलन और विरोध** – वर्ग संघर्ष का परिणाम समय-समय पर आन्दोलन और विरोध के रूप में सामने आता है। भारतीय समाज में किसान आन्दोलन, मजदूर हड़ताल और अन्य सामाजिक आन्दोलन वर्ग संघर्ष का ही परिणाम होते हैं। ये आन्दोलन समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय के खिलाफ जनता के असंतोष को प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए हाल ही में हुए किसान आन्दोलन ने सरकार की नीतियों और पूंजीपति वर्ग के खिलाफ एक व्यापक संघर्ष को जन्म दिया है। यह आन्दोलन इस बात का प्रमाण है कि समाज में आर्थिक असमानता और वर्ग संघर्ष अभी भी महत्वपूर्ण है।

संभावित समाधान –

1. **आर्थिक सुधार और पुनर्वितरण नीतियां** – सरकार को ऐसी नीतियां बनानी चाहिए जो आर्थिक असमानता को कम करें⁸ और गरीब वर्ग को आर्थिक रूप से सशक्त बनाएं। भूमि सुधार और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण से समाज में वर्ग संघर्ष को कम किया जा सकता है। गरीब वर्ग के लिए सरकारी योजनाओं और नीतियों के माध्यम से आर्थिक सहायता प्रदान की जा सकती है।
2. **शिक्षा और रोजगार के अवसरों में सुधार** – समाज के सभी वर्गों को शिक्षा और रोजगार के समान अवसर प्रदान करना आवश्यक है। शिक्षा में सुधार और कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से गरीब वर्ग के लोगों को अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकते हैं। इससे उनके आर्थिक हालात में सुधार होगा और वर्ग संघर्ष को कम किया जा सकेगा।
3. **सामाजिक सुरक्षा योजनाएं** – सरकार को वर्गों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएं लागू करनी चाहिए।⁹ जिनमें स्वास्थ्य सेवाएं, पेंशन बीमा और अन्य कल्याणकारी योजनाएं शामिल हों। इससे निम्न वर्ग के लोगों की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित हो सकेगी और वर्ग संघर्ष की संभावना कम होगी।

निष्कर्ष –

भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष और आर्थिक असमानता का प्रभाव गहरा और व्यापक है। समाज के धनी और गरीब वर्गों के बीच विभाजन लगातार बढ़ता जा रहा है, जिससे सामाजिक असंतोष और अस्थिरता को बढ़ावा मिल रहा है। इस असमानता को कम करने के लिए सरकार और समाज दोनों को मिलाकर प्रयास करने होंगे। आर्थिक नीतियों में सुधार, शिक्षा और रोजगार के अवसरों में वृद्धि और गरीब वर्गों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को मजबूत करना इस दिशा में आवश्यक कदम हो सकते हैं। जब तक समाज में आर्थिक असमानता और वर्ग संघर्ष को कम नहीं किया जाता, तब तक समाज में स्थिरता और समृद्धि की स्थापना में मुश्किलें बनीं रहेंगी।

सन्दर्भ-सूची

1. www.oxfam.org/en/indiaextreme-inequality-numbers
2. विश्व असमानता रिपोर्ट 2022
3. श्रीनिवास एम0एन0 (1962) : सोशल स्ट्रेटिफिकेशन इन इण्डिया : दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. मार्क्स कार्ल (1867), कैपिटल : क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनॉमी, माडर्न लाइब्रेरी।
5. बेटेलहेम, सी0 (1914) – क्लास स्ट्रगल इन द यू0एस0एस0आर0, मंथली रिव्यू प्रेस।
6. सांधवी, वी0 (2003) – इण्डिया राइनिंग : लिबरलाइजेशन एण्ड इकॉनॉमिक इनइक्वलिटी, हाउस पब्लिसिंग।
7. सांधवी, वी0 (2003) – इण्डिया राइनिंग : लिबरलाइजेशन एण्ड इकॉनॉमिक इनइक्वलिटी, हाउस पब्लिसिंग।
8. दास, वी0 (2012) – भारतीय समाज : संरचना और परिवर्तन दिल्ली, पियरसन पब्लिसिंग।
9. दास, वी0 (2012) – भारतीय समाज : संरचना और परिवर्तन दिल्ली, पियरसन पब्लिसिंग।



साहित्यों में वर्णित बुद्ध का सामाजिक एवं राजनीतिक विचार : एक विश्लेषण

उत्तम सिंह*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन "पालि त्रिपिटक साहित्य में वर्णित मगध क्षेत्र में बौद्ध धर्म का स्वरूप" का एक अध्ययन है। भगवान बुद्ध का जितना धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उनका सामाजिक एवं राजनीतिक व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण है। पारम्परिक बौद्ध साहित्य में से ऐतिहासिक बुद्ध का जीवन कई परतों में उभरकर आता है। इसका सर्वप्रथम बुद्ध का सामाजिक एवं राजनीतिक विचार किसी एक ग्रन्थ में नहीं है, परन्तु इसे पालि प्रामाणिक धर्म-ग्रन्थ सुत्त (सूत्र) तथा थेरवाद परम्परा के विनय साहित्य में अभिलिखित घटनाओं से एकत्रित किया जा सकता है। इन ग्रंथों से मिली मात्र रूपरेखा को महासंधिका, स्थाविरवाद और महायान परम्पराओं के बाद के ग्रंथों ने अनेक, कभी-कभार अतिमानवीय लक्षणों से अलंकृत किया है, किन्तु पालि प्रामाणिक धर्म-ग्रन्थ साहित्य से उभरा चित्र बुद्ध का सामाजिक एवं राजनीतिक विचार प्रस्तुत करता है, जो अनेक कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना कर रहा था, वैयक्तिक स्तर पर भी और अपने भिक्षु समाज के स्तर पर भी।

कुंजिका : सामाजिक, राजनीतिक, पालि त्रिपिटक, बुद्धकालीन, साहित्य, विचार, समस्या इत्यादि।

विस्तार : बुद्ध के समय में भारतीय समाज बहुत सी समस्याओं से पीड़ित था इन समस्याओं ने बुद्ध का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, आगे चलकर इन समस्याओं के समाधान के रूप में महात्मा बुद्ध के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दर्शन का विकास हुआ, आधुनिक विचारक अरविन्द घोष एवं एवं विवेकानंद ने भी सेनफ्रांसिस्को में भगवान बुद्ध को प्रथम सनातन धर्म उपदेश कहा है। महात्मा गाँधी ने भी श्रीलंका में अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन में बुद्ध को हिन्दू धर्म सुधारक माना। गुरु रविन्द्रनाथ टैगोर पर भी बुद्ध के अध्यात्मिक, भौतिकता एवं प्रकृति प्रेम का प्रभाव पड़ा। यह बात सही है कि बुद्ध से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म में बहुत से सुधार हुए। डॉ. आंबेडकर एवं अनेक ऐसे विचारकों के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जिससे उन्होंने अपने विचारों में आध्यात्मिकता एवं भौतिकता को एक साथ जोड़कर विश्व के कल्याण की बात कही है।¹

बुद्ध के समकालीन भारतीय राजनीतिक स्थिति का चित्रण अष्टाध्यायी में वर्णित महाजनपदों, जनपदों एवं गणराज्यों के रूप में मिलता है। भगवान बुद्ध का जन्म आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय संसार में शायद 'राष्ट्र' नाम की संकल्पना भी पैदा नहीं हुई होगी। ज्यादातर आधुनिक राजनीति शास्त्र के जानकार यह मानते हैं कि 'राष्ट्र' नाम की संकल्पना आधुनिक ही है।² सांस्कृतिक राष्ट्रवाद आदि कोई राजनैतिक संकल्पना नहीं है। कुछ धार्मिक संगठनों ने जानबूझकर के पिछले साठ-सत्तर सालों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना का प्रचार कर भारत में राजनीतिक एकता को नुकसान पहुँचाने का काम किया है। भगवान बुद्ध का समय भारत में राजनीति एवं सामाजिक उथल-पुथल था। वास्तव में आज जिसको हम भारत कहते हैं वह भारत भगवान बुद्ध के समय में राजनीतिक रूप में नहीं था। आज का राजनीतिक भारत भी पूरी तरह से आधुनिक ही है। एक आधुनिक राजनैतिक इकाई है। जैसे-जैसे हम आज से पीछे जायेंगे वैसे-वैसे हमें विभिन्न कालों में भारत का विभिन्न प्रकार का राजनैतिक स्वरूप दिखाई देगा।³ एक राजनैतिक भारत जो आज है, जिसका अपना एक संविधान है, अपना एक शासन है, अपनी एक न्याय व्यवस्था है, ऐसा भारत अतीत में कहीं नहीं दिखायी देता है।

पालि-त्रिपिटक साहित्य में कई गणराज्यों का उल्लेख आता है। कुछ लोगों का मानना है कि भगवान बुद्ध के समय में भारत में सोलह (16) महाजनपद और दस (10) गणराज्य थे। वे (16) सोलह गणराज्य भारत के मध्य और उत्तर पूर्व प्रदेशों में थे। लेकिन दक्षिण भारत की राजनैतिक स्थिति के बारे में और भारत के अन्य प्रदेशों की राजनैतिक स्थिति के बारे में हमारे पास कोई पर्याप्त जानकारी नहीं है।

* शोध छात्र, स्नातकोत्तर पालि विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया गया

E-mail : bas080885@gmail.com, Mob. No. 9006374978

डॉ० बी० आर० अम्बेदकर ने 'बुद्ध और उनका धम्म' में भगवान् बुद्ध के समय के भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में लिखा है कि हमें मालूम होता है कि, ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उत्तर भारत एक देश या साम्राज्य था।⁴ देश अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बंटा हुआ था। इनमें कुछ राज्यों में जहाँ एक अकेले राजा का अधिकार था, वहीं कुछ पर किसी अकेले राजा का अधिकार नहीं था। जो राज्य राजाओं के अधीन थे उनकी कुल संख्या (16) सोहल थी।

डॉ० बी० आर० अम्बेदकर का मानना है कि जिन राज्यों पर किसी एक राजा का अधिकार था वे जनपद और जिन राज्यों पर किसी राजा का अधिकार नहीं था वे संघ या गण कहलाते थे। कपिलवस्तु के शाक्यों की राज्यव्यवस्था के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है कि वहाँ गणतंत्र था अथवा कुछ लोगों का कुल तंत्र था। वैसे इतनी जानकारी तो स्पष्ट रूप से है कि शाक्यों के गणतंत्र में कई शासक परिवार थे और वे एक के बाद एक क्रम से शासन करते थे। शासक परिवार के जो मुखिया होते थे, वे राजा कहलाते थे। शाक्य राज्य भारत के उत्तर पूर्वी कोने में उपस्थित था। यह एक स्वतंत्र राज्य था। लेकिन आगे चलकर कोषलराज इस पर अपना आधिपत्य जमाने में सफल हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कोसलराज की स्वीकृति के बिना शाक्य राज्य के लिए अपने कुछ राजकीय अधिकारों का उपयोग असम्भव हो गया।⁵ उस समय के राज्यों में कोशल एक शक्तिशाली राज्य था। मगध राज्य भी ऐसा ही था। कोशल राजा पसेननदी (प्रसेनजित) और मगध राजा बिम्बसार दोनों भगवान बुद्ध के समकालीन थे। मतलब बुद्ध काल में भारत नाम का कोई देश नहीं था। बल्कि सभी जनपदों और गणराज्यों की अपनी अलग-अलग राजनीतिक व्यवस्था थी।

डॉ० रघुनाथ सिंह ने अपनी किताब 'बुद्धकथा' में भगवान बुद्ध के समय की राजनीतिक स्थिति के बारे में बहुत ही संक्षिप्त में लिखा है और वे कपिलवस्तु को एक गणराज्य मानते थे। लेकिन उन्होंने अपनी इस किताब में भगवान बुद्ध के समय की राजनीतिक स्थिति को बहुत स्पष्ट करने का कोई प्रयास नहीं किया है। वे भगवान बुद्ध को एक अलौकिक पुरुष मानकर ही अपने ग्रंथ को प्रारम्भ करते हैं।⁶ बहुत सारे भारतीय लेखक जो परंपरावादी हैं, हिंदुत्ववादी हैं वे भगवान बुद्ध को एक धार्मिक पुरुष, अलौकिक पुरुष मानकर वर्णन करने का प्रयास करते हैं। वास्तव में भगवान बुद्ध के विचारों को, सिद्धान्तों को, तत्त्वों को जानने के लिए, उसके महत्त्व को जानने के लिए, उनके समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक, दार्शनिक मान्यताएं आदि को जानना जरूरी हैं। भगवान बुद्ध का सम्पूर्ण चिन्तन, उनकी अपनी विचारधारा अपने समय की स्थिति की ही उपज है। लेकिन उनके विचारों में, सिद्धान्तों में, तत्त्वों में, उनकी शिक्षा में इतनी मौलिकता थी कि वे आज भी उतने ही प्रासंगिक लगते हैं।⁷

पालि त्रिपिटक साहित्य और उस समय के अन्य धार्मिक साहित्य से पता चलता है कि भगवान बुद्ध के समय की राजनीतिक स्थिति बहुत ठीक नहीं थी, उस समय राजनीतिक सत्ता संघर्ष था। उस समय के राजाओं में राज्यविस्तार की भी एक तरह से होड़ लगी हुई थी। राजनीतिक सत्ता का उपयोग जनकल्याण के लिए कम और अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अधिक होता था। मगध राजा और कोसल राजा में टकराव, संघर्ष, आक्रमण के उदाहरण पालि त्रिपिटक साहित्य में उपलब्ध है। उसी प्रकार राजतंत्र गणतंत्र को समाप्त करने का भी हर तरह से प्रयास कर रहे थे। इस तरह के भी उदाहरण पालि त्रिपिटक में उपलब्ध हैं।⁸ मगध राजा अजातसत्तु का वज्जि गणराज्य को बर्बाद करने का प्रयत्न इसका उदाहरण है।

भगवान बुद्ध ने अपने समय की इस तरह की सत्तासंघर्ष की राजनीति को अपने आँखों से देखा था और उसपर उन्होंने अपनी राय भी व्यक्त की थी। जो पालि त्रिपिटक में दर्ज हैं। मतलब यह है कि भगवान बुद्ध ने अपने समय की राजनीतिक स्थिति को एकदम नजरअंदाज नहीं किया था। वे अपने समय की राजनीतिक स्थिति से और विशेषतौर पर राजतंत्र के राजसत्ता विस्तारवादी नीति से, निरंकुष राजतंत्र से, राजतंत्र की आतंकवादी नीति से विशेष प्रसन्न नहीं थे। बल्कि वे वेसाली के वज्जी गणतंत्र की प्रशंसा करके जनतंत्र का अधिक समर्थन कर रहे थे। पालि त्रिपिटक में कुछ ऐसे भी सुत हैं जिनके अध्ययन से भगवान बुद्ध के राजनीतिक सिद्धान्तों का, राजनीतिक तत्त्वों का हमें अच्छी तरह पता चलता है और भगवान बुद्ध के सामाजिक और राजनीतिक व्यक्तित्व का पता चलता है। भगवान बुद्ध का जितना धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उनका सामाजिक तथा राजनीतिक व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण रहा है। सम्राट अशोक ने अपने राज्य शासन में भगवान बुद्ध के जिन राजनीतिक सिद्धान्तों और तत्त्वों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था वे आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

उसी प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने आधुनिक भारत के लोकतंत्र को भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों का और तत्त्वों का जो आधार दिया है वह भारतीय संविधान और भारतीय लोकतंत्र सारे संसार के राष्ट्रों के लिए एक

आदर्श बन गया है, प्रेरणा बन गया है। बुद्ध द्वारा उपदेष्टित राजनीति में नैतिक, चारित्रिक, बौद्धिक गुणों के विकास एवं नकारात्मक विषयों से विरत रहने पर बल दिया गया है, जिनमें कुछ की चर्चा यहां करना प्रासंगिक प्रतीत होती है।

बुद्ध के समय की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ का अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय के समाज में भयंकर असमानता व्याप्त थी लोग स्वार्थी, जाति, पंथ, हिंसा, महिलाओं की दयनीय दशा, धार्मिक आडम्बर, कर्मकांड, उंच-नीच, छुआ-छूत, चोरी, नैतिकता, आदर्श, मूल्य, मानवता का स्तर गिर चुका था, अमीर-गरीब के बीच अंतर तथा राजनीतिक वैमनस्यता व्याप्त थी।⁹ बुद्ध के मप्तिस्क में ऐसे बहुत सारे प्रश्न थे जिनपर विचार करने पर मजबूर कर दिया था। ऐसा भी नहीं है कि बुद्ध से पहले इन विषयों पर किसी ने विचार न किया किया हो। भारतीय परंपरा में सम्वाद का स्थान हमेशा से रहा है, श्रमण स्कूल के विचारक इसी श्रेणी में आते हैं, बुद्ध के समकालीन 6 तीर्थकरों के नाम बुद्ध तथा जैन ग्रंथों में मिलते हैं — पूर्णकाश्यप, अजित केशकम्बल, प्रकुन्ध कात्यायन, मक्खलि गोसाल, संजय वेलट्टिपुत एवं निगंठ नाथपुत। बुद्ध ने उस समय समाज में व्याप्त भेदभाव असमानता व वैर-भाव के खिलाफ समानता, स्वतंत्रता एवं बन्धुता के विचार को जन्म दिया। समानता, स्वतन्त्रता व बंधुत्व की बात बुद्ध के समय से ही थी, इसीलिए डॉ. आंबेडकर ने कहा था कि मैंने समानता, स्वतन्त्रता एवं बंधुत्व का विचार आधुनिक यूरोप की क्रांति से नहीं बल्कि मैंने यह बुद्ध के विचारों से लिया है।

लोकतांत्रिक पद्धति

भगवान बुद्ध का संघ पूरी तरह से लोकतांत्रिक पद्धति को स्वीकार करता है। पालि विनयपिटक में भगवान बुद्ध ने भिक्खुसंघ के लिये, भिक्खुणी संघ के लिए उपोसथ का विधान किया है। भिक्खु उपोसथ और भिक्खुणी उपोसथ की सारी कार्यवाही लोकतांत्रिक ढंग से ही होती थी। भगवान बुद्ध ने चतुदसी, पुण्णमासी और पक्ष की अष्टमी को उपोसथ करने की अनुमति दी थी।¹⁰ भगवान बुद्ध द्वारा भिक्खु संघ और भिक्खुणी संघ को उपोसथ का विधान एक तरह से संघ को सषक्त बनाने का और अधिक से अधिक परिषुद्ध बनाये, रखने का प्रयास था। आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था में, लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में भी इसका निश्चितरूप से महत्त्व है। राजनीतिक नेता, कार्यकर्ता विषुद्ध चरित्रवान बनें, भ्रष्टाचार से मुक्त रहें, अपनी जिम्मेदारी को समझे, अपने दायित्व को समझे इसके लिए वे नियमित रूप से, सांघिक रूप में इकट्ठा होते रहे तो निश्चित रूप से देश में समाज कल्याणकारी, जनकल्याणकारी राजनीति की बुनियाद मजबूत हो सकती है।

राजनीति में अहिंसा और शांति की पद्धति

भगवान बुद्ध की शिक्षा के कई महत्त्वपूर्ण अंग हैं। आधुनिक लोकतंत्र का आधार है समता, स्वतंत्रता, बन्धुता और सामाजिक न्याय। भगवान बुद्ध की शिक्षा भी यही है, उनके धम्म का आधार भी यही हैं। भगवान बुद्ध की यह शिक्षा सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है और राजनीतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।¹¹ उसी प्रकार भगवान बुद्ध की शिक्षा में, धम्म में अहिंसा अथवा हत्या न करना, हत्या करने को प्रेरित न करना को भी बड़ा महत्त्व है। यह उनकी शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। डॉ० अम्बेडकर 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' में लिखते हैं कि अहिंसा का करुणा और मैत्री से अत्यंत निकट का संबंध है। उन्होंने भगवान बुद्ध की अहिंसा की संकल्पना को बहुत ही नये ढंग से परिभाषित किया है। भगवान बुद्ध की अहिंसा की संकल्पना का निश्चित रूप से शांति की संकल्पना के साथ निकट का संबंध है।¹² अहिंसा का दूसरा अर्थ शांति ही हो सकता है। आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में अहिंसा और शांति का बड़ा महत्त्व है। मानव समाज का अस्तित्व ही शांति और अहिंसा पर टिका हुआ है।

उद्देश्य :

1. पालि प्रामाणिक धर्म-ग्रन्थ साहित्य से उभरा चित्र बुद्ध का सामाजिक एवं राजनीतिक विचार प्रस्तुत करता है इसकी जानकारी प्राप्त करना।
2. पालि तिपिटक में कुछ ऐसे भी सुत्त हैं जिनके अध्ययन से भगवान बुद्ध के सामाजिक तथा राजनीतिक सिद्धान्तों का व्यक्तित्व का पता चलता है इसकी जानकारी प्राप्त करना।
3. भगवान बुद्ध का जितना धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उनका सामाजिक तथा राजनीतिक व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण रहा है इसे ज्ञात करना है।
4. भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों का और तत्त्वों का जो आधार दिया है वह भारतीय संविधान और भारतीय लोकतंत्र सारे संसार के राष्ट्रों के लिए एक आदर्श बन गया है, प्रेरण बन गया है इसकी जानकारी प्राप्त करना।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः पालि साहित्य में थेरवादियों द्वारा बुद्ध को एक चमत्कारी, आध्यात्मिक नेता के रूप में चित्रित किया गया है, जिन्हें अत्यंत विषम परिस्थितियों में अपने निरंतर बढ़ते शिष्यों और अनुयायियों के समुदाय की स्थापना और अवलम्ब के लिए संघर्ष करना पड़ा। उन्हें सामाजिक एवं राजनैतिक षडयंत्रों, अनेक युद्धों, स्वदेश के लोगों के नरसंहार, एक सरकार के समक्ष व्यक्तिगत दोषारोपण, अपने ही शिष्यों में से कुछ के द्वारा उनके नेतृत्व को चुनौती, अपने निकटतम शिष्यों में से एक की हत्या, और अंततः विष द्वारा मृत्यु का सामना करना पड़ा। बुद्ध ज्ञानोदय प्राप्ति के पश्चात छियालीस वर्षों तक, जिस दौरान उन्होंने शिक्षा प्रदान की, संसार को मुक्ति और ज्ञानोदय का मार्ग प्रशस्त करने की अपनी प्रतिबद्धता के प्रति अटल रहे।

संदर्भ सूची

1. अम्बेदकर, डॉ० बी० आ०, भगवान बुद्ध और उनका धम्म (हिंदी), पृ०-322
2. प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, हेमचन्द्र राय चौधरी किताब महल सरोजनी नाउडु मार्ग इलाहाबाद, 1998 पृ० 141
3. प्राचीन भारत की शासन पद्धति एवं राजशास्त्र, कैलाश चन्द्र जैन युनिवर्सिटी पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2017 पृ० 23
4. प्राचीन भारतीय मुद्रायें, डॉ० राजवंत राव तथा डॉ० प्रदिप कुमार राव, मोतीलाल वाराणसी, 2001, पृ० 13
5. अम्बेदकर, डॉ० बी० आ०, भगवान बुद्ध और उनका धम्म (हिन्दी डॉ० भदन्त आनन्द कौसल्यायन) संस्करण, 2008, सम्यक प्रकाशन, नागपुर, पृ० 49
6. वही, पृ० 9-50
7. बुद्ध जीवन और दर्शन, सद्घातिस्स, अनुवाद-विठटलदास मोदी, पृष्ठ 74-75 सस्ता साहित्य मण्डल, तृतीय संस्करण 1986 दिल्ली।
8. भारतीय दर्शन की रूप रेखा, एम० हिरियन्ना अनुवादक - डॉ० गोवर्धन भट्ट, पृष्ठ 151 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना प्रथम संस्करण, 1965
9. बुद्धवंश, पालि, प्रधान सम्पादक, स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारती ग्रंथ माला, 34, वाराणसी, 2004, पृ० 71
10. उपाध्याय, डॉ० भरत सिंह, पालि साहित्य का इतिहास, प्रयाग, 1972, पृ० 124
11. वही पृ० 126
12. प्राचीन भारत का इतिहास, जयशंकर मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रंथ एकादमी, पटना, 2009 पृ० 212



बाल विवाह में योगदान देने वाले सामाजिक कारक

कुमारी शोभा*

बाल विवाह एक वैश्विक समस्या है जो हर साल लाखों बालिकाओं और बालकों को प्रभावित करती है। यूनिसेफ के अनुसार, आज जीवित 650 मिलियन से अधिक महिलाओं की शादी उनके 18वें जन्मदिन से पहले कर दी जाती है, और हर साल 12 मिलियन बालिकाओं की शादी उनके वयस्क होने से पहले कर दी जाती है।¹ बाल विवाह, बच्चों, विशेषकर बालिकाओं के अधिकारों का उल्लंघन करता है, और उन्हें कई जोखिमों में डालता है। जैसे कम उम्र में गर्भधारण, घरेलू हिंसा, गरीबी और शिक्षा की कमी। जबकि बाल विवाह के कई कारण और परिणाम होते हैं, यह लेख उन सामाजिक कारकों पर ध्यान केंद्रित करेगा जो इस हानिकारक प्रथा में योगदान करते हैं।

बाल विवाह को बढ़ावा देने वाले मुख्य सामाजिक कारकों में से एक लैंगिक असमानता है। लैंगिक असमानता से तात्पर्य लोगों के लिंग या लिंग के आधार पर असमान व्यवहार और अवसरों से है। यह विभिन्न रूपों में प्रकट होता है, जैसे भेदभाव, रूढ़िवादिता, मानदंड और अपेक्षाएं जो बालिकाओं और महिलाओं की पसंद और क्षमता को सीमित करती हैं। लैंगिक असमानता के परिणामस्वरूप अक्सर बालिकाओं को बालकों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है, और उनके परिवारों और समुदायों द्वारा उन्हें बोझ या वस्तु के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए, कुछ परिवार अपनी आर्थिक कठिनाई को कम करने, आय या दहेज कमाने या ऋण या विवादों को निपटाने के लिए अपनी बेटियों की शादी कर सकते हैं। अन्य लोग अपने पारिवारिक सम्मान, प्रतिष्ठा, या स्थिति की रक्षा के लिए, या सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं का पालन करने के लिए ऐसा कर सकते हैं जो यह निर्देश देते हैं कि बालिकाओं को जल्दी शादी करनी चाहिए और अपने पतियों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। कुछ संदर्भों में, बालिकाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, संघर्ष, विस्थापन या प्राकृतिक आपदाओं जैसे संकट के समय के बाल विवाह का उपयोग एक मुकाबला तंत्र के रूप में भी किया जाता है।

बाल विवाह को प्रभावित करने वाला एक अन्य सामाजिक कारक बालिकाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच की कमी है। शिक्षा एक मौलिक अधिकार है और बालिकाओं और महिलाओं को सशक्त बनाने का एक शक्तिशाली उपकरण है। यह उन्हें अपने जीवन और भविष्य को आकार देने के लिए ज्ञान, कौशल, आत्मविश्वास और अवसर प्रदान कर सकता है। हालाँकि, दुनिया भर में कई बालिकाओं को शिक्षा में बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जैसे गरीबी, दूरी, हिंसा, भेदभाव और सामाजिक मानदंड जो बालिकाओं की तुलना में बालकों की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं। यूनेस्को के अनुसार, वैश्विक स्तर पर 132 मिलियन लड़कियाँ स्कूल से बाहर हैं और बालकों की तुलना में बालिकाओं के स्कूल छोड़ने की संभावना अधिक है।² बाल विवाह बालिकाओं की शैक्षिक कमी का एक कारण और परिणाम दोनों है। एक ओर, जो लड़कियाँ स्कूल से बाहर हैं, वे बाल विवाह के प्रति अधिक संवेदनशील हैं, क्योंकि उनके पास इसका विरोध करने या इनकार करने के लिए कम विकल्प और कम एजेंसी हो सकती है। दूसरी ओर, जिन बालिकाओं की बचपन में शादी कर दी जाती है, उनके अपनी शिक्षा जारी रखने या पूरी करने की संभावना कम होती है, क्योंकि उन्हें अपनी घरेलू और प्रजनन भूमिकाओं को पूरा करने के लिए दबाव का सामना करना पड़ सकता है, या अपने पति या ससुराल वालों से प्रतिबंधों का सामना करना पड़ सकता है।

बाल विवाह में योगदान देने वाला तीसरा सामाजिक कारक बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने और बाल विवाह को रोकने वाले कानूनों और नीतियों के बारे में जागरूकता और कार्यान्वयन की कमी है। कई देशों में ऐसे कानून हैं जो अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के अनुरूप, विवाह की न्यूनतम आयु, आमतौर पर 18 वर्ष निर्धारित करते हैं। हालाँकि, इन कानूनों को अक्सर कमजोर संस्थानों, भ्रष्टाचार, संसाधनों की कमी या राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी जैसे विभिन्न कारणों से लागू या प्रभावी ढंग से लागू नहीं किया जाता है। इसके अलावा, कुछ देशों में कानूनी खामियाँ या अपवाद हैं जो कुछ परिस्थितियों में बाल विवाह की अनुमति देते हैं, जैसे माता-पिता की सहमति, न्यायिक अनुमोदन, या प्रथागत या धार्मिक कानून। उदाहरण के

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

लिए, भारत में, जहाँ बाल विवाह कानून द्वारा निषिद्ध है, चार में से एक से अधिक बालिकाओं की शादी 18 वर्ष से पहले हो जाती है, और छः में से एक की शादी 15 से पहले हो जाती है।³ यह आंशिक रूप से इस तथ्य के कारण है कि कोई बाल विवाह पंजीकृत या रिपोर्ट नहीं किए जाते हैं, और यह कि कई परिवार और समुदाय अपने स्वयं के मानदंडों और प्रथाओं का पालन करते हैं जो बाल विवाह को मंजूरी देते हैं या प्रोत्साहित करते हैं।

निष्कर्ष –

बाल विवाह एक जटिल और बहुआयामी मुद्दा है जो विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है, जिसमें लैंगिक असमानता, शिक्षा की कमी और कानूनी सुरक्षा की कमी जैसे सामाजिक कारक शामिल हैं। ये कारक परस्पर क्रिया करते हैं और एक-दूसरे को मजबूत करते हैं, जिससे उन बालिकाओं और बालकों के लिए नुकसान और अभाव का चक्र बनता है जिनकी बचपन में शादी हो जाती है। बाल विवाह को समाप्त करने के लिए, इन अंतर्निहित कारकों को संबोधित करना और प्रत्येक बच्चे के अधिकारों, कल्याण और क्षमता को बढ़ावा देना आवश्यक है। इसके लिए सरकारों, नागरिक समाज, समुदायों, परिवारों और स्वयं बच्चों जैसे विभिन्न कलाकारों के सामूहिक और समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है, ताकि बच्चों के फलने-फूलने के लिए एक सहायक है सक्षम वातावरण तैयार किया जा सके हैं।

संदर्भ सूची –

1. Lawcorner.in
2. Unicef.org
3. Blog.ipleaders.in



नेतृत्व क्या है

डॉ अशोक कुमार मिश्रा*

नेतृत्व को अनेक दृष्टिकोणों से एवं भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्य से परिभाषित किया गया है। कोई सर्वमान्य परिभाषा इसकी उपलब्ध नहीं है। नेतृत्व पर उपलब्ध साहित्य के विश्लेषण के आधार पर "ग्रीव्स" ने नेता की पांच भिन्न-भिन्न परिभाषायें रूपित की हैं।-

1. किसी कार्यालय में कोई व्यक्ति ।
2. समूह का केन्द्रिय व्यक्ति जो सदस्यों के पहचान का विन्द्र है ।
3. वह व्यक्ति जो सदस्यों द्वारा सर्वाधिक प्रभावशाली माना जाता है ।
4. वह व्यक्ति जो समूह को लक्ष्यों की ओर ले जाने के लिये सर्वाधिक प्रयास करता है ।
5. वह व्यक्ति जो समूह के सदस्यों की ओर अन्तः क्रिया में संरचना एवं संयोजन उत्पन्न करने में अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं ।

किसी समूह में कोई व्यक्ति पांचों परिभाषाओं के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति को नहीं मिल सकता । कहीं-कहीं ये पांच भिन्न गुण उद्विखलायी देते हैं। "कार्टर" - 1958 पेज 23 ने नेतृत्व की परिभाषा में प्रयुक्त पांच प्रमुख विचारों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इनके आधार पर नेतृत्व की अवधारणा और उसके निकट अर्थ को स्पष्ट किया गया है।

प्रथम पद्धति में समूह के किसी केन्द्रिय व्यक्ति के सन्दर्भ में शेष सदस्यों को अलग किया जाता है और इस प्रकार समूह के व्यवहार को लक्ष्योन्मुख करने वाला व्यक्ति नेता कहलाता है। नेतृत्व को परिभाषित करने का है इसके अनुसार नेता वह व्यक्ति होता है जो समूह को उसके लक्ष्यों की ओर ले जाने में सफल होता है। इसे परिभाषित करने का तीसरा तरीका समाजमैतिक चयन पर आधारित है । नेता वह व्यक्ति होता है जो समूह के सदस्यों द्वारा नेता के रूप में चुन लिया जाता है । चौथा तरीका समूह की सामूहिक क्रिया के आयामों को परिभाषित करने के आधार पर आधारित है । उदाहरण के लिये सामूहिक क्रिया के आयाम एकीकरण समन्वय उत्साह सामाजिकता एवं स्वतन्त्रता हो सकती हैं। नेता कैटेल वह व्यक्ति होता है जो समूह को इन आयामों की ओर ले जाने में सफल होते हैं। पांचवा तरीका "कार्टर" के अनुसार नेतृत्व व्यवहार पर आधारित होता है । अर्थात् प्रयोग करने वाला अर्थवा इस क्षेत्र में विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्ति जिप्स व्यवहार के नेतृत्व स्वीकार करे उस व्यवहार को अपनाने वाले व्यक्तियों को नेता कहा जा सकता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. The Study of Leadership - Browne and Cohn, 1959 The Interstate Printers and Publishers Danville.

* प्राचार्य, वाल्थर डिग्री कॉलेज, रामपुर, जौनपुर

2. Cecil A. Gibb, "Leadership" in Gardner Lindzey. Hand Book of Social Psychology Wesley Pub. Company -1954, P. 877-920.
3. The Nurturant Task Leader Jai B.P. Sinha, Concept Publishing Company, New Delhi - 1980.
4. Hand Book of Leadership Bernard M. Bass, 1990.



संस्कृतसाहित्ये भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्

विद्युत् प्रभा वेहेरा*

नाटकस्योत्पत्तिः बहुप्राचीनकालादेव संजातेति ज्ञायते । “काव्येषु नाटकं रम्यम्” इति सुप्रसिद्धवचनानुसारं रङ्गमञ्चे अभिनीतं दृश्यकाव्यमिदं प्रेक्षकवर्गाणां कृते साक्षाद्रसभोगत्वात् विशिष्यते । श्रव्यकाव्यापेक्षया दृश्यकाव्यस्य भृशं विशेषत्वमस्तीति आलङ्कारिकाः मतं प्रकाशयन्ति । समाजस्य मनुष्यजीवनस्य वा चरित्रं जीवन्तभावेनदर्शकानां समक्षे केवलं दृश्यकाव्य (नाटक) माध्यमेन समुपस्थापयितुं सम्भवे भवति । नाटकमाध्यमेन मनुष्यजीवनस्योपरि विभिन्नविषये यथा प्रभावः पतति, अन्यायकाव्य कवितादिमाध्यमेन तादृशं सम्भवो न भवति । त्रितापदमनुष्यस्य कृते आनन्दप्रदानार्थं चिरशान्तिलाभार्थं च संस्कृतनाटकस्योद्देश्यं प्रयोजनं वेति भरतमुनिना नाट्यशास्त्रे समीचीनमुक्तम् - “दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां नाट्यमेतद् भविष्यति” इत्यादि । अर्थात् नाटकमुभयोः ऐहिक पारलौकिकयोः फलप्रदाने समर्थम् ।

म.म. हरिहरोपाध्यायो भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य सफलरचयिता । नाटकेऽस्मिन् शान्तरस एव अङ्गीरसरूपेण स्वीकृतः । यद्यपि काव्यशास्त्रिणां मतेन शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानक-वीभत्स-अद्भूतादयः रसा मुख्यत्वेन स्वीक्रियन्ते, परन्तु कतिपया आचार्याः तद्भिन्नानां रसानां कल्पनां कुर्वन्ति । तेषां मतेन शान्त-वात्सल्य-प्रेयान्-ऊर्जस्वि-मायादयो रसाः मुख्याः । रत्नकोशकारः नाटकेऽपि शान्तरसस्य पत्तां स्वीकरोति - “करुणाद्भुतशान्ताश्च नवनाट्ये रसा स्मृताः” । केचनाचार्याः पृथक् पृथक् रूपेण स्वदृष्ट्या कमप्येकं विशेषरसं मूलरसरूपेण स्वीकुर्वन्ति । यथा भवभूतिः करुणरसं, किन्तु भोजराजः शृङ्गाररसं मुख्यरसत्वेन स्वीकृतवान् । विश्वनाथपूर्वज-नारायणपण्डितस्य मतानुसारं अद्भुतरस एव सर्वोच्चरसः । परन्तु एतान् पण्डितान् विहाय आचार्याभिनवगुप्तः शान्तरसं एकमात्रं मूलरसत्वेन स्वीकरोति ।

भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य समीक्षणेन विभिन्नदृष्ट्या भूरि वैशिष्ट्यं परिलक्ष्यते । अस्य नाटकस्य विशेषत्वमभिलक्ष्य विभिन्नसमये विभिन्नस्थानेषु प्रकाशनं जातमिति ज्ञायते । तत्र सामग्रिकविचारेण ससंक्षेपं विविधं वैशिष्ट्यं मूर्धन्यं समुपस्थाप्यते । यथा -

१. नान्दीप्रयोगदृष्ट्या

संस्कृतवाङ्मयस्य परम्परामनुसृत्य नाटकेऽस्मिन् यथार्थतया नान्दी प्रयुक्ताऽस्ति । अत्र सूत्रधारेणोक्तम् - “अलमिति विस्तरेण भो भो स्त्रिभूवनतरु (प्रभृति) वीजभूतस्य भगवतो भूतपते भैरवेश्वरस्य यात्रायां सुलभाः सामाजिकाः ! श्री हरिहरप्रणीतेन भर्तृहरिनिर्वेदनाम्ना शान्तरसप्रधानेन नाटकेन तानुपासितमीहेमहे । तत्र भवन्तः सावधाना भवन्तु ।” अत्र नाटकारस्य नामप्रदर्शनेन शान्तरस एव अङ्गीत्वेन प्रयुक्तरिति ज्ञायते ।

२. अन्यग्रन्थेषु उद्धृतिदृष्ट्या

अन्यग्रन्थेषु भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्थपद्यस्योद्धृतिरेव अनन्यमेकवैशिष्ट्यम् । प्रभावती परिणयनाटके यथा - “प्रादुर्भूय चीरेण जीर्णा ।” मुक्तावलीव्याख्यायां यत् पद्यद्वयं मङ्गलाचरणरूपेण प्रदत्तं तत्र भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य पद्यमेकं गृहीतम् । म.म. इन्द्रपतिमहोदयः शान्तरसस्योपरि विचारप्रस्तुतिपूर्वकं रसमार्त्तण्डनामके स्वकीयकाव्यशास्त्रीयग्रन्थे भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य प्रथमाङ्कात् - “शृङ्गारादिरनेकजनेममरणश्रेणी समासादितैरेणीदृक् प्रमुखैः स्वदीपकसखैरालम्बनैरर्जितः । अस्तैव क्षणिको रसः प्रतिफलं पर्यन्तवैरस्य भूर्त्रहाद्वैतसूखात्मकः परमविश्रान्तो रसः” इति श्लोकमुद्धृतवान् ।

३. भरतवाक्यदृष्ट्या

भर्तृहरिनिर्वेदस्यान्तिमे भरतवाक्यरूपेण योगी गोरक्षनाथोऽपि उक्तवान् यथा- “तथापीदमस्तु साधोः सिद्ध्यतु कार्यमृध्यतु चिरं राजा प्रजारंजनलक्ष्मीरक्षतपेक्षपातमधुरा भूयादुजारात्मनाम् । त्वद्बोधोतागमागतादथ सुहृत्सार्थात् सदर्थार्पणैरस्मिन् हारिहरीपरीक्षितगुणा क्रीणीतु गीगौरवम् ।”

४. लक्ष्मीवाचकशब्दप्रयोगदृष्ट्या

नाटकेऽस्मिन् पद्यद्वयस्य गूढविषयं समीक्षणेन ज्ञायते यत् कविः लक्ष्मी श्रेष्ठरूपेण सूचयितुमिच्छति यथा - “लक्ष्मीरक्षतपेक्षपातमधुरा भूयादुजारात्मनाम् ।” परन्तु यत्र लक्ष्मीतः सरस्वतीं श्रेष्ठरूपेण स्वीकरोति तत्र लक्ष्मीं पदं न लिखित्वा ‘समुद्रमजा’ इति पदं लिखति - “प्राक् प्राप्नोतु चिराद् गिरासहचरीमुद्रां समुद्रात्मजा ” इत्यादि अनेन स्पष्टी भवति यत् कवेः

* शोधच्छात्रा (संस्कृतम्), महाराजा श्रीरामचन्द्रभञ्जदेओ विश्वविद्यालयः, वारिपदा ।

मातुनाम् अपि लक्ष्मीरस्ति । चतुर्थाङ्के द्वादशत्रयोदशश्लोकाभ्यां लक्ष्मीदेव्या आलोचना कृता । तत्र कुत्रापि प्रत्यक्षभावेन 'लक्ष्मी' इति शब्दस्य नाम नास्ति, परन्तु पर्यायवाचिशब्दानां प्र.गः कृतः । एकस्मिन् पद्ये 'पापीयसी श्रीरियम्' इत्युक्ता । अन्यस्मिन् पद्ये तु 'एनामङ्कचरीं विधाय कमलां के नाम पारंगताः' इत्युक्ता ।

५. मङ्गलाचरणपद्ये शान्तिकामनादृष्ट्या

भर्तृहरिनिर्वेदनाटके हरिहरोपाध्यायो मङ्गलाचरणपद्ये पाठकानां कृते मङ्गलं शान्तिं वेच्छति –

शैत्यायादृत्य मूर्ध्ना रजनि करकला जाह्नवी चोपनीता
यत्राङ्गोत्तापभीता पदमपि न जटाजूटतोऽधः प्रपदे ।
प्राणान्हातुं निपीतं विषमपि हृदयं नाविशद्वाहभीत्या
शम्भोः सत्यावियोगं तमपि शमितवत्यस्तु शान्तिः शिवायः ॥¹

६. सूक्तविशिष्टपद्यानां संयोजनदृष्ट्या

प्रस्तुतेऽस्मिन् नाटके विभिन्नपद्येषु विविधाः सूक्तयः परिलक्ष्यन्ते ।

(क) नाटकस्य द्वितीयाङ्के प्रथमश्लोको यथा -

अप्यलीकं प्रियमरणं श्रुत्वा मृतायास्तव कीर्त्या ।
कार्यगुरुरित्यद्य प्रणयस्य प्रणाशितमयशः ॥

अत्र यदा राज्ञः मिथ्यामृत्युसमाचारं श्रुत्वा राज्ञी मृता भवति, ततः परं चेटीद्वयस्योक्तिरियम् । ते वदतः - हे देवि ! भवती स्वामिनो मिथ्यासमाचारं श्रुत्वापि स्वयं मृत्युं गता । फलतो भवत्याः कीर्तिः प्रणयस्य तामपकीर्तिं समापयति । न हि स्वार्थसाधनमात्रं प्रणयफलमपि तु प्रणयजीवनाधीनजीवनमपि इत्यावेदितमिति भावः ।

(ख) राज्ञा वियोगेन धैर्यच्युतिमाश्रित्य राज्ञो भर्तृहरेरुक्तिरियं यथा -

हित्वा मां विधिहतमेष जीवलोका-
दाश्वासः सुखमनया सह प्रयातः ।
धिकप्राणांस्तजनुसृतानितो बतैवं
दुदैवं समवरुणद्धि कः प्रकारः ॥²

अर्थादिषु आश्वासः विधिना हतमस्ति । मत् प्रियया सहानायासेन प्रस्थितम् । अस्माज्जीवलोकात् तदनुसृतान् आश्वासानुगतान् प्राणान् दुदैवं एवं निवारयतीति खेदस्य विषयः । नास्ति प्रतिकूलदैवोपरोधे कश्चन प्रकार इति सानुशयोक्तिः ।

प्रियवस्तुनो महत्त्वप्रतिपादनावसरे पद्यमेकं यथा -

(ग) कदाचित् राजा विवेचयति यत् प्रियस्याभिमतस्य गुणान् कोऽपि गणयितुं समर्थो न भविष्यति । स्नेहेन सर्वाणि सुखसाधनानि प्रियवस्तुनि तत्रैव एकत्रीभूय स्थापिताः भवन्ति । तथापि अशक्यप्रतीकारे विनष्टे वस्तुनि अनुतापो निरर्थको भवति । यदुक्तं -

प्रियस्य वस्तुनो नाम गुणान्को गणयिष्यति ।
स्नेहेनोपहृताः सर्वे तत्रैव सुखहेतवः ॥³

(घ) दीपतलान्धकार इति न्यायेन योगिनो मुखेन समुतास्थापितेयमुक्तिः यथा -

परोपदेशे पाण्डित्यमिदं मूढस्य गीयते ।
तमः समाश्रितस्यैव दीपस्यान्य प्रकाशनम् ॥⁴

अत्र कथ्यते यद् मूढस्य स्वयं युक्तायुक्तविचारविधुरस्य पुंस इदं पाण्डित्यमिति भण्यते । अत्र दृष्टान्तर्यथा तमः समाश्रितस्य तमसि वर्तमानस्य स्वयं सम्यक् मार्गमनवलोकयतो दीपहस्तस्य पुंसः दीपेनान्यप्रकाशनमिति ।

(ङ) आध्यात्मिकवैशिष्ट्यं प्रतिपादनावसरेऽपि भर्तृहरिणोक्तम्-

“सच्चिद्बोधमात्रेणार्चनीये भगवति नारायणे किमितरदेवतानामाराधनेन ।” पुनरप्युक्तम्-

स्वाधीनस्वामिकायाः किमितपुरुषैः किं महान्नौ स्फुलिङ्गैः,
खद्योतैः किं सुधांशौ समुदायिनि कणैर्भक्षितैर्भूभुजः किम् ।
किं कूपैर्नाकनद्याममृतरसभूजां भेषजैः किं विधेयं,
स्वात्मा नारायणोऽन्तः स्फुरति यदि रतिदैवतैः कैवतैर्नः ॥⁵

अस्य पद्यानुसारं यथा प्रतिवतायां इतरपुरुषैः प्रयोजनं नास्ति, महानौ सति अग्निकणानां आवश्यकता नास्ति, राज्ञ अतिसूक्ष्मैः धान्याशैः भक्षणस्य प्रयोजनीयता नास्ति, गङ्गानद्यां सत्यां कूपानां मूल्यं नास्ति, अमृतरसभूजां देवानां कृते औषधानामावश्यकता नास्ति, तथैव स्वयं नारायणो यदि हृदयाकाशे देदीप्यते तर्हि अन्यदेवानां कृते पूजनस्यावश्यकता नास्ति ।

अन्यस्मिन् पद्ये राजाभर्तृहरिः युवावस्थां व्याधिना सह तुलयति -

कामं दुर्विषहज्वरं जनयति व्याधूर्णयत्यक्षिणी
गात्राप्यरुनितम्बगण्डहृदयान्युच्छूनयत्युल्बणम् ।
तां तां दुर्विकृतिं करोति सुहृदो गाढं व्यथ्यन्ते यया
व्याधियौवनमात्मनाशनियतः के ते ग्रहण्यादयः ॥⁶

अर्थात् यौवनं दुःसहनीयं कामज्वरं जनयति, नेत्रे विशेषणासमन्ताद् भ्रमयति, नितम्ब कपोलहृदयादिशरीरोवयवान् समुन्नतं करोति, तादृशं दृष्टविकारं करोति पित्रादयो भृशं व्यथां प्राप्नुवन्ति एवं प्रकारेण सम्पूर्णं नाटके असंख्योपदेशात्मिकारुक्तयः सन्ति, यद्वारा नाटकसौत्कर्ष्यं सुष्ठु प्रतिपाद्यते ।

भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य प्रणयनं नूनं साहसिकपदक्षेपस्य निदर्शनम् । विद्वांसो यदा अनुभूतवन्तो यत् शृङ्गार-वीररसप्रधाननाटकेषु किमपि नूतनत्वं न लक्ष्यते, पुनः परिश्रमसाध्यं दुर्विषयं शास्त्रीयतत्त्वः सरलतया जनानं हृदयं नाटकमाध्यमेन आकर्षयति तदा ते नूतनं प्रकाराणि नाटकानि विरचयितुं प्रारब्धवन्तः । यदेव शास्त्रीयनाटकं प्रतीकनाटकं वा कथ्यते शृङ्गाररसमाश्रित्य नाटकप्रणयनक्षेत्रे यथा महाकवेः कालिदासस्य स्थानम्, करुणरसमाश्रित्य यथा भवभूतेः अद्वितीयं स्थानं विद्यते तथैव शान्तरसमाश्रित्य हरिहरोपाध्यायकृतस्य भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य स्थानमद्वितीयं स्वतन्त्रं च । नाटकमिदं सर्वलक्षणसंयुक्तम् । अत्र प्रारम्भतोऽन्तं यावत् नाटकीयतायाः निर्वहणं यथार्थभावेन कृतम् । अत्र नाट्यकारस्य कल्पनाशक्तिः समुन्नताः ज्ञायते ।

रङ्गमञ्चदृष्ट्या नाटकमिदं भृशं लोकप्रियमासीत् । न केवलं मिथिलायां समग्रभारतवर्षेऽपि नाटकस्य मञ्चस्थकृतम् । नाटकमिदं एवं भूतं लोकप्रियमासीद् यत् भारतवर्षस्योत्तराद् दक्षिणं यावदस्यानुवादो कृतः । वहिर्देशेऽपि आमेरिकायां अस्योपरि कार्यं कृतम् । १९९४ ख्रीष्टाब्दे नवदिल्लीस्थ राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानस्य वार्षिकोत्सवः संजातः । तत्र भारतवर्षस्य सर्वासां संस्कृतशिक्षणसंस्थानां नाटकप्रतियोगितायां योगदानमासीत् । दिवसत्रयात्मकस्यास्य वार्षिकोत्सवस्य प्रतियोगितायां कर्णाटकस्थ शृङ्गेरीतः राजीवगान्धी केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य छात्रछात्रीभिः नाटकमिदं रमणीयतया अभिनीतमासीत् । तत्र प्रतियोगितायां अभिनीतं भर्तृहरिनिर्वेदनाटकं प्रथमस्थानम् प्राप्तम् । एवमपि सर्वोत्तमपुरुषः कलाकारः, सर्वोत्तमा नारी अभिनेत्री, सर्वोत्तम निर्देशकश्चादयः भारतसर्वकारस्य तत्कालीनमानवसंसाधनविकासमन्त्रणालय-पक्षतः सप्रशंसनं पुरस्कारान् लब्धवन्तः । एवं प्रकारेण विभिन्नदृष्ट्या भर्तृहरिनिर्वेदनाटकस्य वैशिष्ट्यं स्पष्टमनुभूयते ।

संदर्भः

1. भर्तृहरिनिर्वेदनाटकम्, १/१, पृ - १ ।
2. भर्तृहरिनिर्वेदनाटकम्, २/१०, पृ - ४१ ।
3. भर्तृहरिनिर्वेदनाटकम्, ३/६, पृ - ६० ।
4. भर्तृहरिनिर्वेदनाटकम्, ३/१५, पृ - ७३ ।
5. भर्तृहरिनिर्वेदनाटकम्, ४/१४, पृ - १०५ ।
6. भर्तृहरिनिर्वेदनाटकम्, ५/१६, पृ - १३६ ।



लोक और आधुनिक मूर्तिकला के बीच संवाद: बस्तर के सन्दर्भ में

डॉ. उमेश कुमार नेताम

बस्तर की लोक मूर्तिकला, जो सदियों से जनजातीय जीवन के भौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पक्षों की अभिव्यक्ति रही है, आज वैश्विक कला जगत में एक विशेष पहचान है। परंपरागत रूप से यह मूर्तिकला बस्तर के जीवनशैली, सामाजिक संरचना और मिथकीय चेतना में गहराई से रची-बसी हुई है जिसमें देवताओं, पौराणिक पात्रों, पशु-प्रतीकों और लोक कथाओं की अमूर्त दुनिया को ठोस आकार दिया गया है। वहीं आधुनिक मूर्तिकला, जो औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण और व्यक्तिवादी रुझानों से प्रेरित रही है, अपने रूप, सामग्री, शिल्प और विचार में प्रयोग धर्मी, अमूर्त, आलोचनात्मक और वैचारिक विस्तार की ओर प्रवृत्त है। जब इन दोनों धाराओं के बीच संवाद की बात होती है, विशेषकर बस्तर के परिप्रेक्ष्य में, तो यह संवाद केवल तकनीकी अथवा सौंदर्य शास्त्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सांस्कृतिक पुनरावलोकन, आत्म-पुनर्परिभाषा, परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु निर्माण, और पहचान की जटिलताओं तक विस्तृत हो जाता है। यह संवाद एक तरफ पारंपरिक शिल्प को नई दृष्टि, मंच और अर्थ देता है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक कला को गहराई, जड़ और लोक चेतना से जोड़ता है।

बस्तर के मूर्तिकला की विशेषता: काष्ठ और धातु में निर्मित प्रतिमाएं, केवल धार्मिक आस्था या सौंदर्य के प्रयोजन से नहीं गढ़ी जाती थीं, बल्कि वे समाज के सामूहिक अनुभव, श्रम, कृषि, ऋतु चक्र, लोक नाट्य, जीवन-मरण, और देवी-देवताओं के साथ मानव के संबंधों की जीवन्त अभिव्यक्तियां भी हैं। जैसे कि लोहे से बनी घोड़े की मूर्ति या देवी देवताओं की प्रतिमा केवल एक पूजनीय वस्तु नहीं है, बल्कि वह उस समुदाय की ऐतिहासिक स्मृति और सामाजिक संरचना की भी प्रतीक है। स्थानीय शिल्पकार, जैसे कि गोंड, मुरिया, मारिया और धुरवा समुदायों के कारीगर, बिना किसी अकादमिक प्रशिक्षण के, अनुभव, परंपरा और अंतः प्रेरणा से मूर्तिकला में महारत हासिल करते हैं। उनके लिए शिल्प केवल तकनीक नहीं, एक जीवित परंपरा है, जो वंशानुगत ज्ञान, मिथकीय प्रसंगों और सामुदायिक सौंदर्य बोध का समन्वय है। जबकि आधुनिक मूर्तिकला, जो बीसवीं सदी में औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक प्रभावों के बीच विकसित हुई, उसने पारंपरिक रूपों से विद्रोह करते हुए व्यक्तिगत अभिव्यक्ति, मानसिक असंतोष, अमूर्तता और वैश्विक विचारधाराओं को अपनाया। ऐसे में बस्तर की मूर्तिकला के संदर्भ में आधुनिक मूर्तिकारों का हस्तक्षेप एक नया आयाम प्रस्तुत करता है, जहाँ यह हस्तक्षेप केवल रूपांतरण नहीं, बल्कि एक 'पुनर्संवाद' बन जाता है।

इस पुनर्संवाद का आरंभ स्वतंत्रता के बाद के दशकों में हुआ, जब भारत के मूर्तिकारों और कलाविदों ने लोक कलाओं की ओर न केवल एक सौंदर्यात्मक, बल्कि वैचारिक झुकाव भी दिखाया। रामकिंकर बैज, शंखो चौधुरी, सतीश गुजराल जैसे कलाकारों ने जब भारतीयता की खोज के लिए लोक परंपराओं की ओर देखा, तो बस्तर जैसे क्षेत्र उन कलाकारों की कल्पना के केन्द्र में आए जो लोक कला परंपराओं से प्रेरित थे। बाद में जगदलपुर और बस्तर के आसपास कला शिल्प ग्रामो, अकादमिक शोधों, सरकारी प्रोत्साहनों और पर्यटन विकास के माध्यम से जब लोक मूर्तिकला को एक 'आधिकारिक' मंच मिला, तो आधुनिक कलाकारों और स्थानीय कारीगरों के बीच एक प्रकार का संवाद शुरू हुआ। इस संवाद की प्रकृति बहुआयामी थी—कुछ कलाकारों ने बस्तर की शैली को आत्मसात कर आधुनिक स्वरूप दिए, तो कुछ ने पारंपरिक कारीगरों को प्रोत्साहित कर उन्हें वैश्विक मंचों तक पहुँचाया। यह अंतःक्रिया धीरे-धीरे पारंपरिक और आधुनिकता के बीच की सीमाओं को धुंधला करने लगी।

बस्तर के इस संवाद में एक विशेष स्थिति सामने आती है जब स्थानीय कलाकार आधुनिक तकनीकों, बाजार की मांग और वैश्विक सौंदर्य बोध को आत्मसात करते हैं, और दूसरी ओर आधुनिक मूर्तिकार बस्तर की प्रतीकात्मकता, रूपाकारों और शिल्प कौशल से प्रेरणा लेते हैं। उदाहरण स्वरूप, कई स्थानीय शिल्पकार अब पारंपरिक देवी-देवताओं के साथ-साथ समकालीन विषयों जैसे पर्यावरण, नारीशक्ति, सामाजिक न्याय आदि पर भी काम करने लगे हैं, जिसमें आधुनिक दृष्टिकोण और पारंपरिक शैली का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। वहीं, समकालीन मूर्तिकार बस्तर की प्रतीकात्मकता—जैसे सांप, बैल, वृक्ष, पुरुष-स्त्री द्वैत, जनजातीय युद्ध नृत्य, हथियार और देव-स्थान—को अमूर्त रूपों में प्रस्तुत कर रहे हैं। यह पारस्परिकता एक प्रकार की कलात्मक 'हाइब्रिडिटी' को जन्म देती है, जो न तो पूरी तरह पारंपरिक है, न ही विशुद्ध आधुनिक, बल्कि दोनों के बीच की एक संवादात्मक स्थिति है।

परंतु यह संवाद केवल कलात्मक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर भी जटिल है। जब पारंपरिक मूर्तिकला को आधुनिक कला बाजार में प्रस्तुत किया जाता है, तो वह केवल एक सौंदर्य वस्तु नहीं रह जाती, बल्कि 'सांस्कृतिक वस्तु' बन जाती है—जिसका मूल्य उसकी पृष्ठभूमि, प्रतीकात्मकता और 'पारंपरिकता' से तय किया जाता है। इस स्थिति में लोक कलाकार की भूमिका एक निर्माता से अधिक एक 'सांस्कृतिक प्रदर्शक' की हो जाती है, जिसे बाजार की नज़रों में खुद को 'लोक' बनाए रखना पड़ता है। यह 'लोक सौंदर्यबोध' की राजनीति है, जहाँ आधुनिकता लोक को अपनाती भी है और उसे अपनी शर्तों पर प्रदर्शित भी करती है। बस्तर के कई कलाकार, जिनका कार्य पहले केवल स्थानीय पूजा और उत्सवों के लिए होता था, अब अंतरराष्ट्रीय गैलरियों और संग्रहालयों में स्थान पा रहे हैं—पर इसके साथ ही उन्हें अपनी कला को एक नए प्रकार की व्याख्या, प्रस्तुति और बाजारीकरण के भीतर ढालना पड़ता है। इस प्रक्रिया में कुछ कलाकार अपनी आत्मा और शैली को खो बैठते हैं, तो कुछ इसे एक अवसर मानकर नवाचार करते हैं। ऐसे में संवाद के साथ-साथ तनाव, संघर्ष और आत्ममंथन भी उपस्थित होता है।

इस सृजनात्मक संघर्ष में कुछ ऐसे उदाहरण भी सामने आते हैं, जहाँ लोक और आधुनिक कलाकारों के बीच सीधा सहयोग होता है। जैसे बस्तर के कुछ मूर्तिकारों ने कला महाविद्यालयों के साथ साझेदारी कर अपनी पारंपरिक शैली को समकालीन माध्यमों—जैसे ध्वनि, प्रकाश, डिजिटल प्रस्तुति, इंस्टॉलेशन आदि—के साथ जोड़ा। इसने मूर्तिकला को एक 'प्रक्रिया' के रूप में पुनर्परिभाषित किया, जहाँ दर्शक केवल दर्शक नहीं, बल्कि सहभागी भी बनते हैं। उदाहरण के लिए, एक परियोजना में जब आदिवासी कलाकारों ने अपने जीवन की कहानियों को मूर्तियों और वीडियो कला के रूप में प्रस्तुत किया, तो वह केवल एक प्रदर्शन नहीं, बल्कि एक जीवंत संवाद बन गया, जो पहचान, अनुभव और सांस्कृतिक पुनर्पाठ का हिस्सा था। वहीं दूसरी ओर, कुछ आधुनिक मूर्तिकारों ने बस्तर की शैलियों को बिना समझे, केवल 'सौंदर्यपरक रूप' के रूप में अपनाया, जिससे 'सांस्कृतिक कर्मी उपनिवेशीकरण' (सांस्कृतिक विनियोग) की आलोचनाएं भी उठीं। यह प्रश्न उठा कि क्या यह संवाद समानता पर आधारित है, या एक पक्षीय प्रभुत्व का परिणाम? क्या आधुनिक कलाकार लोक शैली को केवल 'आकर्षक' और 'अन्य' (विदेशी) के रूप में देख रहे हैं, या वास्तव में वे उसके गहन संदर्भ, परंपरा और सांस्कृतिक आत्मा को समझ रहे हैं? ये प्रश्न केवल कला वैज्ञानिक नहीं, बल्कि नैतिक और वैचारिक भी हैं, जो बस्तर की मूर्तिकला को एक व्यापक विमर्श में लाते हैं।

बस्तर के इस लोक-आधुनिक संवाद में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह केवल दो शैलियों के बीच का संवाद नहीं, बल्कि दो दृष्टिकोणों, दो जीवन दृष्टियों और दो सांस्कृतिक सत्ताओं के बीच संवाद है। यह संवाद शोषण और सशक्तिकरण, प्रदर्शन और प्रतिरोध, परंपरा और परिवर्तन, स्थानीयता और वैश्विकता, सब के बीच गतिशील रहता है। जब बस्तर का कलाकार लोहे या लकड़ी में कोई नई रचना करता है और वह किसी अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी में प्रदर्शित होती है, तो वह केवल एक 'लोक मूर्ति' नहीं रहती, वह बस्तर की आवाज़,

उसकी पहचान और उसकी आत्मा बन जाती है। वहीं, जब कोई आधुनिक कलाकार बस्तर के किसी प्रतीक को एक नई संरचना में ढालता है, तो वह केवल एक शिल्प नहीं, बल्कि एक आत्म-संवाद और सांस्कृतिक पुल का निर्माण करता है।

अंततः यह संवाद तभी सार्थक हो सकता है जब उसमें समानता, सम्मान, और सह-अस्तित्व की भावना हो। लोक कलाकारों को केवल 'स्रोत' के रूप में नहीं, बल्कि सह-कलाकार, नव प्रवर्तक और वैचारिक भागीदार के रूप में देखा जाए। आधुनिक मूर्तिकारों को चाहिए कि वे केवल रूप और शैली से नहीं, बल्कि लोक की आत्मा से जुड़ें, उसके सन्दर्भ, उसकी पीड़ा, उसकी चेतना को समझें। इसी में लोक और आधुनिक मूर्तिकला का संवाद केवल कलात्मक नहीं, बल्कि मानवीय बन पाएगा—एक ऐसा संवाद जो बस्तर को केवल देखने का नहीं, बल्कि उसे सुनने, समझने और साथ चलने का माध्यम बनेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. बस्तर: " इतिहास एवं संस्कृति " लाला जगदलपुरी - प्रकाशन मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी रविन्द्रभवन ठाकुर मार्ग बानगंगा भोपाल म०प्र० - 462003
2. निरंजन महावर " छत्तीसगढ़ की शिल्पकला " राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज दिल्ली- 110002
3. शुक्ल डाक्टर. हीरालाल, प्राचीन बस्तर अर्थात दण्डकारण्य का सांस्कृतिक इतिहास 600 ई.प
4. ठाकुर केदार नाथ " बस्तर भूषण "
5. बेहर रामकुमार " बस्तर आरण्यक "
6. निरंजन महावर " माडिया मृतक स्तंभ : संस्कार एवं कला " चौमासा अंक - 65



नागार्जुन के उपन्यासों में नारी विमर्श

सुदीप पाण्डेय*

सारांश—

बाबा नागार्जुन हिंदी साहित्य में विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। जिन्होंने नारी के अन्तर्मन को समझकर उसकी पीड़ा को अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण द्वारा समाज के सामने रखकर नारी के सम्बन्ध में समाज को नई दिशा दी। बाबा नागार्जुन ने अपने साहित्य के माध्यम से नारी के ऊपर हो रहे अपमान से आक्रोशित होकर अपने लेखन के माध्यम से नारी पर हो रहे अत्याचार को उजागर किया। उन्होंने जहाँ भी नारी की समस्या देखी और उन पर अन्याय होते हुए देखा वहीं पर उसे खत्म करने का बीड़ा भी उठाया और यही आक्रोश उनकी नारी सम्बन्धी रचनाओं में मिलता है।

नारी विमर्श—

प्रख्यात लेखक नागार्जुन का पूरा नाम वैद्यनाथ मिश्र था। नागार्जुन के अनेकों उपनाम थे, जैसे— यात्री, नागार्जुन, बाबा और आधुनिक कबीर आदि और ये सभी नाम कोई न कोई कारण अवश्य रखते थे। उनका पहला साहित्यिक नाम यात्री था, संस्कृत और मैथिली में उन्होंने यात्री नाम से ही लिखा। हिंदी साहित्य में नागार्जुन नाम से जाने जाते थे उनका जन्म 1911 में अपने ननिहाल सतलखा, पोस्ट— मधुबनी, जिला दरभंगा (बिहार) में हुआ था। इनके पिता श्री गोकुल मिश्र एक लापरवाह, कठोर हृदय, घुमक्कड़, दरिद्र और अस्थिर चित्त के व्यक्ति थे। नागार्जुन ने बचपन से ही स्वयं अपने ही घर में नारी पर अत्याचार देखे जो कि उनकी माँ के साथ उनके पिता द्वारा ही किये गये।

इन सब परिस्थितियों में छुपी हुई पीड़ा, समाज में फैली हुई विसंगतियाँ तथा राष्ट्रीय संस्कृति और अस्मिता का निरंतर प्रहारों ने नागार्जुन को एक विद्रोही लेखक बना दिया।

उनके बेटे शोभाकांत मिश्र जी ने स्वयं स्वीकारा कि पारिवारिक परिस्थितियों ने ही प्रतिरोध की आवाज को बुलंदियों पर पहुँचाया। वे बचपन से ही यायावर एवं घुमक्कड़ प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने आस-पास नारी का शोषण होते देखा, यही अन्याय, दमन और शोषण जो उन्होंने नारी के ऊपर होते हुए देखा उसका वर्णन अपने लेखन में किया। नागार्जुन के हिंदी भाषा में प्रकाशित कुल ग्यारह उपन्यास हैं, इन सभी उपन्यासों में कहीं न कहीं नारी की घुटन भरी व्यथा का वर्णन उन्होंने अपने उपन्यासों में बहुत ही सुन्दर ढंग वर्णन किया है।

प्रजनन की क्षमता और घरेलू काम-काज संभालने के कारण कभी स्त्री को परिवार और समाज में सर्वोच्च स्थान मिला था, लेकिन आगे चलकर यही विशेषता उसकी परतंत्रता का आधार बनती गई। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों पुरुषों के साथ सामूहिक रूप से रहती थी। धीरे-धीरे एक पति एक पत्नी प्रथा (विवाह संस्था) का विकास हुआ और माँ की जगह पिता का महत्व बढ़ता गया। स्त्री परतंत्रता की कहानी यही से शुरू होती है जिसके कारण हजारों वर्षों तक पितृसत्ता की गुलाम बनी रही।

“हमारे संत धर्मशास्त्रों से भिन्न विचारधारा के रहे हैं लेकिन स्त्री के संबंध में ये दोनों एक हो जाते हैं। धर्मशास्त्र स्त्री की निंदा करते हैं, तो संत भी स्त्रियों की निंदा करते हैं। यह पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। संतों का हृदय शास्त्रकारों की तुलना में कोमल होता है, लेकिन नारी के संबंध में उन्हें भी कठोर होना पड़ गया है।”

निस्संदेह स्त्रियाँ एक मात्र ऐसी जाति है जो हजारों वर्षों से पराधीन है। राजकिशोर का कहना है कि— “स्त्री क्या चाहती है यह इसलिए स्पष्ट नहीं हो पाया है क्योंकि अपनी मर्जी से चाहने की छूट उसके लिए एक सर्वथा अपरिचित अनुभव है। यह एक मात्र ऐसी जाति है जो कई हजारों वर्षों से पराधीन है। इसलिए स्त्री को अंतिम उपनिवेश कहा गया है। लेकिन कोई भी उपनिवेश एक दिन में नहीं टूटता। उसके जोड़ धीरे-धीरे शिथिल होते हैं।” हमारा देश भारत एक महान परम्पराओं वाला एक देश है। भारत की

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सभ्यता और संस्कृति में तो नारी को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता” अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहीं देवताओं का निवास होता है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने नारी को माँ प्राण और सहचरी कहा है।

जयशंकर प्रसाद ने नारी की महत्ता और गौरव गरिमा को निम्न पंक्तियों से देखा जा सकता है—

“नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पद तल में,
पूयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।”

उपर्युक्त पंक्तियों में नारी के उस महामहिम, उदात्त, गरिमामण्डित स्वरूप को अभिव्यक्त करती है, जो वह युग-युग से प्रदर्शित करती चली आ रही है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में नारी के स्वरूप को इस प्रकार से व्यक्त किया है—

“जिये बिनु देह, नदी बिनु वारी
वैसे ही नाथ पुरुष बिनु नारी”

स्त्री पराधीनता की मानसिकता तैयार करने में धर्म की मुख्य भूमिका रही है। इन धार्मिक संहिताओं के निर्माता भी पुरुष थे। धर्म के आवरण में स्त्रियों के लिए नित नई-नई रूढ़ियों का आविष्कार होता रहा। स्त्रियों को शिक्षा से वंचित कर दिया गया और उसे पूर्णरूपेण पुरुष की मर्जी पर निर्भर बना दिया गया। सती-प्रथा, बेमेल-विवाह, विधवा-जीवन आदि उसी पुरुष मानसिकता से उपजी कुरीतियाँ हैं जिसने स्त्री जीवन को यातना के सागर में डुबा दिया। नागार्जुन के उपन्यासों का परिवेश मुख्य रूप से मिथिलांचल है। मैथिल ब्राह्मणों में पंजीप्रथा के कारण बिकौआ-प्रथा, बेमेल विवाह और विधवा समस्या उत्पन्न हुई। नागार्जुन ने विस्तार से अपने साहित्य में मैथिल ब्राह्मणों द्वारा कुलीनता के नाम पर किए जाने वाले दर्जनों शार्दियों के यथार्थ को सामने लाया है। इस क्रम में वह जातीय अहम के पीछे छिपे निरंकुश पितृसत्ता का असली चेहरा भी सामने लाते हैं और इस तथ्य से अवगत कराते हैं कि स्वयं को श्रेष्ठ मानने वाले इस ब्राह्मण समाज का असली चेहरा कितना क्रूर और अमानवीय है, जिसका शिकार स्त्रियाँ होती रही हैं।

नागार्जुन पुरुषवादी दृष्टिकोण के विरोधी है पुरुष के नहीं। वह नई चेतना से संपुक्त युवाओं से परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं। उनका मानना है कि हजारों वर्षों से गुलामी की मानसिकता में रहते हुए स्त्रियाँ भी पितृसत्ता की समर्थक बनती गईं। इस क्रम में वे दूसरी स्त्रियों को प्रताड़ित करने वाली स्त्रियों के क्रियाकलाप को भी सामने लाने का प्रयास करते हैं और उनके भीतर जमें हुए स्त्री-विरोधी तत्वों को सामने लाते हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी संबंधी समस्याओं में कहीं भी बनावटीपन नहीं लगता। बल्कि उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि से संपूर्ण समाज में नारी पर हो रहे अत्याचारों द्वारा यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि आज भी समाज में चाहे ग्रामीण हो या शहरी नारी शुरु से ही उलाहने सुनती आयी है। उसे हर परिस्थितियों में सामंजस्य बिठाने की शिक्षा दी जाती है। वर्तमान में कई स्थानों पर आज भी महिलाओं की यही स्थिति है भले ही हम शिक्षित हो गये हैं और हम यह भी दिखाया करते हैं कि हमारे सोचने का तरीका भी बदल गया है, पर हमारा अन्तर्मन ही समझता है कि आज भी पुरुषवादी समाज में महिलाओं के प्रति सोच या नजरिये में कोई बदलाव नहीं आया है और यही नारी की दशा नागार्जुन के उपन्यासों में सटीक बैठती है। गौरी ‘रतिनाथ की चाची’ की नायिका है, एक तरफ तो वह गृहस्थ स्त्री के रूप में सामने आती है जो अर्धेड रोगी पति की मृत्यु के कारण विधवा हो जाती है और अपने ही दुष्कर्मी देवर जयनाथ की कामवासना की शिकार हो जाती है। अगर वह मुँह खोलती है तो भी पुरुषवादी समाज में उसे ही कलंकित किया जाता है। इस सब के बावजूद भी वह इस संबंध में कुछ नहीं कहती है। गाँव की औरते उसे व्यभिचारिणी, कुलटा न जाने क्या-क्या कहती हैं। यहाँ तक कि उसका बेटा उमानाथ भी उसे चरित्रहीन समझता है तथा उसके साथ मारपीट भी करता है, लेकिन वह सब अपमान सहन कर एक परम्परागत गृहणी की भाँति अपना जीवन व्यतीत कर रही है। अपने मान-सम्मान की चिंता न कर गौरी एक जागरूक स्त्री के रूप में दिखाई देती है। गाँव में मलेरिया फैलने पर मुप्त में दवा बाँटती है। जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष करने वाली क्रांतिकारी किसान सभा संगठन में अपना दो शॉल व फटा कम्बल देकर सहायता करती है तथा अखिल भारतीय सूत प्रतियोगिता में अव्वल आती है और अपने सगे पुत्र से मिले अपमान को पीकर वह अपने भतीजे रतिनाथ पर अपनी ममता उड़ेलती है।

इस प्रकार नागार्जुन ने अपने उपन्यास ‘रतिनाथ की चाची’ में गौरी के रूप में स्त्री के व्यक्तित्व को एक सामाजिक प्रश्न के रूप में सामने रखकर स्वयं उत्तर दिया है कि एक भारतीय नारी तमाम संघर्षों को

झेलते हुए भी समाज के प्रति तथा परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती है और नारी का यही संघर्ष उसके व्यक्तित्व को एक सूत्र में बांधे रखता है। अपने आंचलिक उपन्यासों के द्वारा नागार्जुन ने 'नई पौध' में बे-मेल विवाह के भयंकर परिणामों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है कि किस तरह गरीब परिवारों में उनकी आर्थिक स्थिति का फायदा उठाया जाता है। चौदह पंद्रह साल की बच्चियों का विवाह अघेड़ उम्र के व्यक्तियों के साथ करवाने के लिए उन पर दबाव बनाया जाता था। ग्रामीण समाज में वहाँ के बड़े-बूढ़ों द्वारा बनाये गये नियम किस तरह स्त्री समाज पर प्रहार करते हैं। पैदा होते ही उनकी इच्छाएं, प्रतिभाएं दबा दी जाती हैं। उन पर समाज की संकीर्ण मनोवृत्तियां थोप दी जाती थी।

नागार्जुन ने अपने आंचलिक उपन्यासों में समाज में फैली नारी के प्रति अनेक समस्याओं को बड़ी ही सटीकता के साथ चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, बे-मेल विवाह, दलित नारियों पर अत्याचार, बाल विवाह, विधवाओं पर होने वाले अत्याचार, जमींदारों द्वारा नारी का शोषण आदि समस्याओं के साथ-साथ उनके ही परिवार में नारी पर होने वाले शोषण को अपने लेखन के द्वारा उजागर किया जो कि बहुत ही सोचनीय है। उन्होंने अपने उपन्यास के द्वारा समाज को यह संदेश दिया कि यदि हमारे युवा समझदार तथा शिक्षित हैं तो वह नारी संबंधी इस विकराल समस्या का समाधान नई पीढ़ी को दे सकते हैं।

वर्तमान समाज चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी महिलाओं के प्रति कहीं न कहीं दृष्टिकोण वही है। वह हर जगह उलाहनों का शिकार होती है। जाने-अनजाने में घर के लोग ही बहुत कुछ कह देते हैं। बचपन से उनके दिमाग में बैठा दिया जाता है कि मुझे तो पराये घर जाना है जैसा भी हो वहीं पर सभी के साथ सामंजस्य बैठाना ही है। वह घुटन भरी तिरस्कृत जिंदगी जीने को मजबूर हो जाती हैं और महिलाओं की यही दशा का वर्णन नागार्जुन ने अपने आंचलिक उपन्यासों में बहुत ही सटीकता से किया है।

नागार्जुन ने अपने आंचलिक उपन्यासों में नारी की इसी छटपटाहट का बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। उन्हें इसकी कोई परवाह नहीं थी कि कोई क्या कहेगा? उन्होंने प्रतिष्ठित परिवारों में सड़ांध मारती कुरीतियों तथा उनकी रूढ़िवादी प्रवृत्तियों पर करारा प्रहार किया है। इससे यह पता चलता है कि उन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा नारी पर हो रहे अत्याचारों तथा शोषण को समाज के सामने लाकर खड़ा कर दिया, इसलिए उनकी ये वेदना अति तीक्ष्ण औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर बैठती है, क्योंकि वे व्यक्तिगत दुःख की अपेक्षा दुःख पर अधिक जोर डालते हैं और यही सच्चे लेखक की पहचान है।

नागार्जुन ने अपने ज्यादातर उपन्यासों में कहीं न कहीं स्त्री समस्या को समाज के सामने रखा है। जैसे— 1. रतिनाथ की चाची 2. नई पौध 3. कुंभीपाक 4. उग्रतारा 5. पारो तथा उसका समाधान भी खोजा है।

इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर हम आधुनिक बन गये हैं, लेकिन समाज की नारी के प्रति मनोवृत्ति में कोई बदलाव नहीं आया है, कहीं न कहीं, इसकी झलक हमें देखने को मिल ही जाती है। भले ही हम महिला सशक्तिकरण का डंका पीट रहे हैं, लेकिन जब हम समाचार-पत्र, पत्रिकाओं, समाचार चैनल तथा अपने आस-पास नजर डालते हैं तो कहीं न कहीं नारी को शोषित ही देखते हैं तथा हमें यह प्रतीत होता है कि नागार्जुन के उपन्यासों में नारी की वही दशा देखने को मिलती थी।

आज लिंगानुपात जिस तरह बढ़ रहा है, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या जैसे अपराधों में भी कोई कमी नहीं आयी है। पहले यह शोषण बंद घरों में होता था और आज यह शोषण बीच चौराहों पर होने लगा है, तो कहीं न कहीं नारी के प्रति यह शोषण मानव समाज की मानसिक संकीर्णता को ही दर्शाता है।

जहाँ तक महिला उपन्यासकारों का प्रश्न है तो इन उपन्यासकारों ने नारी को केन्द्र में रखकर बहुत सी रचनाएँ की हैं। जैसे— प्रभा खेतान, उषा प्रियम्बदा, मृदुला गर्ग, अलका सराबगी ऐसे कई नाम हैं, जिनकी रचनाओं में नारियों के बारे में बहुत अच्छे तरीके से वर्णन मिलता है। एक महिला ही दूसरी महिला के विषय में अच्छे तरीके से लिख सकती है, इस संदर्भ में एक प्रसिद्ध फ्रांसिसी महिला लेखिका 'सिमोन द बोउवार' ने स्त्री जाति की नियत को इस प्रकार व्यक्त किया है—

“औरत जन्म से औरत नहीं होती बल्कि बड़ी हो कर औरत बनती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीव का निर्माण करती है।”

सिमोन ने जो अपने विचार औरतों के प्रति रखी हैं, वह बिल्कुल सच हैं। पुरुषों ने ही स्त्री की दुनिया बनाई इसलिए वह आज भी खून के आँसू रोती है। पुरुषों द्वारा महिलाओं के ऊपर अनेकों प्रकार की पाबंदिया लगाई और आज भी कुछ संकीर्ण मानसिकता के लोग भी हैं जो उसी तरीके से महिलाओं के ऊपर अपना पूरा अधिकार समझते हैं। इसी सबका विरोध नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया है क्योंकि नागार्जुन

भले ही पुरुष रहे हैं लेकिन उन्होंने महिलाओं का कभी भी अनादर नहीं किया। वह महिलाओं के समर्थन में हमेशा आवाज उठाते थे और उनके उत्थान और प्रगति के बारे में हमेशा सोचते थे।

निष्कर्ष— महिला सशक्तिकरण का अर्थ है, महिलाओं में आत्म सम्मान, आत्म-निर्भरता व आत्मविश्वास जाग्रत करना है। महिला सशक्तिकरण के लिए वर्तमान में सबसे बड़ी आवश्यकता उनको अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग होना है। यदि कोई महिला अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग और आत्मनिर्भर है, तो उसका आत्मसम्मान अवश्य ऊँचा होगा और वे देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची—

1. नागार्जुन रचनावली— सम्पादक शोभाकान्त, खण्ड 4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. नागार्जुन का गद्य साहित्य— आशुतोष राय, लोकभारती प्रकाशन
3. स्त्री स्वाधीनता का प्रश्न और नागार्जुन के उपन्यास— श्रीधरम, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
4. हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता, रत्ना चटर्जी, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 36
5. हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता, रत्ना चटर्जी, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 51
6. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, मयूर पेपर बेक्स, पृ. 38
7. रामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्या काण्ड, संस्करण— 1938, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 367
8. द सकेण्ड सेक्स, सीमोन द बोऊआर, का हिंदी रूपांतरण, डॉ. प्रभा खेतान द्वारा, हिंदी पॉकेट बुक्स, दिलशाद गार्डन, संस्करण—1998, पृ. 121



ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शारीरिक दक्षता, जीवन शैली एवं लक्ष्य निर्धारण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अच्छे लाल यादव*

सारांश

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में जहाँ गाँव और शहर की जीवनशैली, संसाधन, शिक्षा प्रणाली, आर्थिक दशा और सामाजिक सोच में गहरा अंतर है, वहाँ विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, भविष्य और सोच पर यह भिन्नता किस प्रकार प्रभाव डालती है, यह समझना अति आवश्यक है। यह अध्ययन विशेषतः नीति निर्धारकों, शिक्षाविदों, और अभिभावकों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

शब्द कुंजी – विद्यार्थी, शिक्षा, ग्रामीण, शहरी, शारीरिक दक्षता इत्यादि।

परिचय

शिक्षा केवल पठन-पाठन का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है। इसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक पहलुओं का विकास अनिवार्य होता है। विद्यार्थी जीवन मनुष्य के जीवन का सबसे संवेदनशील और निर्णायक काल होता है, जिसमें उसकी आदतें, स्वास्थ्य, सोचने का ढंग और जीवन के प्रति दृष्टिकोण विकसित होते हैं।

वर्तमान युग में समाज तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। शहरीकरण, तकनीकी विकास और जीवनशैली में आए बदलावों का प्रभाव विद्यार्थियों पर विशेष रूप से परिलक्षित हो रहा है। जहाँ एक ओर शहरी क्षेत्र के विद्यार्थी आधुनिक संसाधनों और प्रतिस्पर्धा के माहौल में पलते हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थी प्राकृतिक परिवेश और सीमित सुविधाओं के बीच अपने लक्ष्य को निर्धारित करते हैं।

शारीरिक दक्षता – जैसे सहनशक्ति, लचीलापन, गति, संतुलन कृ केवल खेलकूद के लिए ही नहीं, बल्कि जीवन भर स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है। वहीं, जीवनशैली विद्यार्थी की दैनिक आदतों, खान-पान, शारीरिक गतिविधियों, नींद, और मानसिक संतुलन से जुड़ी होती है। साथ ही, लक्ष्य निर्धारण विद्यार्थियों की सोचने की दिशा और भविष्य की तैयारी को दर्शाता है। इन तीनों ही पक्षों – शारीरिक दक्षता, जीवनशैली और लक्ष्य निर्धारण – को प्रभावित करने में उनका पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा भौगोलिक परिवेश अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इस शोध का उद्देश्य ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के बीच इन महत्वपूर्ण घटकों का तुलनात्मक अध्ययन करना है, ताकि हमें यह ज्ञात हो सके कि कौन-से सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारक विद्यार्थियों के समग्र विकास को कैसे प्रभावित करते हैं।

उद्देश्य:

- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शारीरिक दक्षता का तुलनात्मक विश्लेषण।
- दोनों क्षेत्रों में विद्यार्थियों की जीवनशैली में अंतर के कारणों का अध्ययन।
- विद्यार्थियों के भविष्य के लक्ष्य निर्धारण में परिवेश की भूमिका को समझना।

शोध पद्धति

शोध का प्रकार: यह शोध वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक प्रकृति का है।

नमूना:

- कुल 200 विद्यार्थी
- ग्रामीण क्षेत्र से 100

* असिस्टेंट प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सैदपुर, गाजीपुर

- शहरी क्षेत्र से 100
- कक्षा 9वीं से 12वीं तक के छात्र-छात्राएँ

उपकरण:

- शारीरिक दक्षता परीक्षण: 50 मीटर दौड़, लचीलापन परीक्षण, BMI मापन
- जीवनशैली प्रश्नावली: खान-पान, शारीरिक गतिविधि, नींद का समय, मोबाइल/टीवी का उपयोग
- लक्ष्य निर्धारण साक्षात्कार: करियर प्राथमिकताएँ, मार्गदर्शन, आत्म-प्रेरणा

आंकड़ा विश्लेषण:

- प्रतिशत विधि
- t-test (सांख्यिकीय तुलना)
- ग्राफ और तालिकाओं द्वारा प्रस्तुति

साहित्य समीक्षा

इस विषय पर विभिन्न शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय एवं स्वास्थ्य संबंधी क्षेत्रों में अध्ययन हुए हैं, जिनसे निम्न निष्कर्ष निकलते हैं:

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO, 2021) के अनुसार, किशोरों में शारीरिक निष्क्रियता वैश्विक स्तर पर चिंता का विषय है। शारीरिक गतिविधि में कमी से मोटापा, तनाव और हृदय रोगों की संभावना बढ़ जाती है, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में।

Patel एवं Verma (2020) ने ग्रामीण और शहरी किशोरों के शारीरिक स्वास्थ्य की तुलना करते हुए पाया कि ग्रामीण विद्यार्थी प्राकृतिक गतिविधियों के कारण अधिक फुर्तीले होते हैं, जबकि शहरी विद्यार्थी व्यायाम की सुविधाओं के बावजूद अधिक निष्क्रिय पाए गए।

NCERT (2018) द्वारा जारी रिपोर्ट में शहरी विद्यालयों में खेल एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता अधिक दर्शाई गई है, परंतु विद्यार्थियों में उनका समुचित उपयोग नहीं होता। ग्रामीण विद्यालयों में संसाधनों की कमी के बावजूद छात्र अधिक व्यावहारिक रूप से सक्रिय रहते हैं।

Desai (2017) के अनुसार, ग्रामीण विद्यार्थियों में आत्म-प्रेरणा तो होती है, किंतु उचित करियर मार्गदर्शन के अभाव में वे अपने लक्ष्य निर्धारण में अस्पष्ट रहते हैं। दूसरी ओर, शहरी विद्यार्थी विभिन्न माध्यमों से करियर की जानकारी प्राप्त कर स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित करते हैं।

UNESCO (2022) की रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि भौगोलिक और सामाजिक परिवेश विद्यार्थियों की आकांक्षाओं एवं जीवन दृष्टिकोण को गहराई से प्रभावित करता है। जीवनशैली, स्वास्थ्य, शिक्षा और करियर से जुड़ी सभी प्रवृत्तियाँ पर्यावरणीय व आर्थिक कारकों पर निर्भर करती हैं।

इस समीक्षा से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी के विकास में केवल व्यक्तिगत प्रयास नहीं, बल्कि उसका सामाजिक, आर्थिक, मानसिक एवं भौगोलिक परिवेश भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रमुख विषयों का तुलनात्मक अध्ययन**शारीरिक दक्षता**

मापदंड	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र
50 मीटर दौड़ (सेकंड)	8.3	7.6
BMI (औसत)	18.5	22.3
लचीलापन	मध्यम	उच्च

विश्लेषण:

ग्रामीण विद्यार्थियों की शारीरिक स्फूर्ति अधिक होती है, परंतु शहरी विद्यार्थी संगठित व्यायाम पद्धतियों और जिम आदि का उपयोग कर अधिक लचीले बन पाते हैं।

जीवनशैली

जीवनशैली घटक	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र
शारीरिक गतिविधि	अधिक	कम
खान-पान	घर का प्राकृतिक भोजन	फास्ट फूड व डिब्बाबंद खाद्य
नींद का समय	नियमित	अनियमित

निष्कर्ष :

शहरी जीवन तकनीक-प्रेरित है, जिससे शारीरिक निष्क्रियता बढ़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीक की सीमित पहुंच के कारण शारीरिक गतिविधियाँ अधिक बनी रहती हैं।

लक्ष्य निर्धारण

तत्त्व	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र
करियर मार्गदर्शन	कम	अधिक
परिवार का सहयोग	सीमित	उच्च
आत्म-प्रेरणा	मध्यम	उच्च
जीवन लक्ष्य की स्पष्टता	अस्पष्ट	स्पष्ट

विश्लेषण:

शहरी क्षेत्रों में सुविधाओं एवं सूचनाओं की उपलब्धता विद्यार्थियों के सोचने की दिशा को व्यापक बनाती है, वहीं ग्रामीण विद्यार्थियों को संसाधन और सही दिशा की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन के माध्यम से निम्न निष्कर्ष सामने आए:

- ग्रामीण विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से शारीरिक रूप से सक्रिय होते हैं, परंतु संसाधनों की कमी उनकी दक्षता को सीमित करती है।
- शहरी विद्यार्थियों की जीवनशैली अधिक सुविधाजनक परंतु निष्क्रिय है, जिससे उनमें मोटापा, तनाव आदि समस्याएँ पाई जाती हैं।
- लक्ष्य निर्धारण के क्षेत्र में शहरी विद्यार्थियों को अधिक लाभ है क्योंकि उन्हें मार्गदर्शन, इंटरनेट, और अभिभावकीय सहयोग मिलता है।
- ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों में आत्म-प्रेरणा तो होती है, परंतु उसे दिशा देने वाले साधन अपर्याप्त हैं।

सुझाव

- ग्रामीण विद्यालयों में कैरियर मार्गदर्शन सत्र अनिवार्य रूप से आयोजित किए जाएँ।
- शहरी विद्यालयों में दैनिक खेल गतिविधियाँ अनिवार्य की जाएँ।
- शारीरिक दक्षता के लिए दोनों क्षेत्रों में योग, खेल, नृत्य आदि का प्रशिक्षण दिया जाए।
- ग्राम्य क्षेत्रों में खेल संसाधनों और पोषण योजनाओं का विस्तार हो।
- ऑनलाइन माध्यमों से ग्रामीण विद्यार्थियों को जानकारी व दिशा दी जाए।

संदर्भ सूची –

1. World Health Organization. (2021). *Global status report on physical activity 2021*. WHO Press. <https://www.who.int/publications/i/item/9789240052456>
2. Patel, M., & Verma, R. (2020). A comparative study of rural and urban adolescents in terms of physical fitness and lifestyle patterns. *International Journal of Physical Education and Sports Sciences*, 8(2), 55–62.
3. NCERT. (2018). *Survey report on school physical education and health facilities in India*. National Council of Educational Research and Training.
4. Desai, K. (2017). Career aspirations and awareness among rural youth in India. *Educational Research Review*, 12(4), 89–97.
5. Ministry of Education, Government of India. (2020). *National education policy 2020*. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
6. Kumar, A., & Singh, R. (2019). Impact of socio-economic status on career decision-making in adolescents. *Journal of Indian Psychology*, 34(1), 34–42.
7. UNESCO. (2022). *Global education monitoring report: Understanding youth aspirations in different socio-economic contexts*. <https://www.unesco.org/reports/gem-report>
8. Rajput, S. S. (2016). Urban vs rural: Physical health patterns among Indian school students. *Indian Journal of Child and Adolescent Health*, 7(3), 144–149.

गांधी के ग्राम-स्वराज की प्रासंगिकता: ग्रामीण आर्थिक-आत्मनिर्भरता के विशेष संदर्भ में

हिमांशु सिंह*

सारांश :-

“स्वराज” शब्द का निर्माण होता है 'स्व' तथा 'राज' शब्द से, जिसका तात्पर्य होता है खुद के द्वारा शासन या स्वशासन। ऐसा राज्य जहां जनता का स्वामित्व हो और उस राज्य के सारे क्रियाकलाप पर आंशिक और प्रत्यक्ष रूप से जनता का अधिकार हो। गांधी जी का 'स्वराज' से आशय स्वशासन, आत्मसंयम तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता से था (भारती, 2022)। जिसे बढ़ावा देने के लिए गांधी लोगों से स्वदेशी वस्तु खरीदने तथा स्वावलंबी बनने की सलाह देते थे।

महात्मा गाँधी ने “ग्राम स्वराज” को आज़ाद भारत के गाँवों के विकास मॉडल के रूप में प्रस्तावित किया था। उनका कहना था कि एक बड़ा उद्दोग स्थापित करने से अच्छा है कि छोटे-छोटे उद्दोग स्थापित किए जाएं, जिससे न सिर्फ बड़े कारखानों में होने वाला श्रम का शोषण रुकेगा बल्कि पूंजी एक जगह न एकत्रित होकर एक बड़े वर्ग में बट जायेगा। महात्मा गांधी बड़े-बड़े औद्योगिक कारखानों की बड़ी-बड़ी मशीन तंत्रों के विरोधी नहीं थे बल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसके विरोधी थे। आज तो जिन्हें मेहनत बचाने वाले यंत्र कहते हैं उनके पीछे लोग पागल हो गए हैं। उनसे मेहनत जरूर बचती है, लेकिन लाखों लोग बेकार होकर भूखों मरते हुए रास्तों पर भटकते हैं। श्रम और समय की बचत तो मैं भी चाहता हूँ, परंतु वह किसी खास वर्ग की नहीं बल्कि सारी मानव-जाति की होनी चाहिए। कुछ गिने- गिनाये लोगों के पास संपत्ति जमा हो ऐसा नहीं, बल्कि सबके पास जमा हो ऐसा मैं चाहता हूँ। आज तो करोड़ों की गर्दन पर कुछ लोगों के सवार हो जाने में यंत्र मददगार हो रहे हैं (गांधी, 2006)। महात्मा गाँधी का कहना था कि ऐसा तंत्र जिससे हजार व्यक्तियों की रोजी-रोटी छिन जाए ऐसे तंत्र की हमें भला क्या जरूरत हो सकती है। गांव में बढ़ती हुई बेरोजगारी के समाधान में उनका कहना था कि लघु एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए। महात्मा गांधी गाँवों में चरखा, हथकरघा, डेरी, चमड़ा का कारोबार, हाथों से बने खिलौने व अन्य ग्रामीण उद्योगों की वकालत करते थे, जिससे गांव के वातावरण पर कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़ता हो।

यह मॉडल, वर्तमान समय में भारत के लिए मूल्यवान पथ-प्रदर्शक का कार्य कर सकती है जब हमारा देश विश्व की सबसे बड़ी आबादी वाले देश के साथ-साथ सबसे ज्यादा युवाओं की संख्या वाला देश है। जिसकी लगभग 60 से 70 प्रतिशत संख्या गाँवों में रहती है, जोकि अपनी दैनिक जरूरतों की पूर्ति मात्र के लिए शहरों की तरफ पलायन कर रहा है तथा दूसरी तरफ गाँवों में व्याप्त बेरोजगारी और आर्थिक असमानता की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। अतः ग्राम-स्वराज वर्तमान दौर में और ज्यादा प्रासंगिक हो गया है।

बीज शब्द :- गांधीवादी अर्थशास्त्र, ग्राम स्वराज, आत्मनिर्भर गांव, ग्राम-उद्दोग, आर्थिक-विकेंद्रीकरण, पलायन, कुटीर उद्दोग, व्यवसायिक शिक्षा।

‘गांधीवादी दर्शन’ शब्द गांधीजी के प्रमुख शिष्य जे.सी. कुमारप्पा द्वारा गढ़ा गया था। एक अर्थशास्त्री के रूप में गांधीजी के बारे में चर्चा करने से पहले हमें उनके संपूर्ण दर्शन, विशेषकर आर्थिक दर्शन पर नजर

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, का.हि.वि.वि, वाराणसी (उ.प्र.), 221005
Email. Id- hs329877@gmail.com

डालनी होगी। उल्लेखनीय है, कि अपने आर्थिक चिंतन के संबंध में गांधीजी अपने आदर्शों के दो प्रमुख व्यक्तित्वों-रस्किन और टॉल्स्टॉय से बहुत प्रभावित थे। महात्मा गांधी ने समतावाद, सादगी और तप की अवधारणा टॉल्स्टॉय के दर्शन से ली, जो आगे चलकर उनके आर्थिक विचारों का आधार बनी। वहीं दूसरी ओर उन्हें रस्किन के दर्शन से प्रगति के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी। सीधे शब्दों में कहें तो गांधी का आर्थिक दर्शन उनके जीवन का एक हिस्सा था, जो उनकी आजीविका में भी प्रतिबिम्बित होता था। उनके आर्थिक विचार जिन चार प्रमुख स्तंभों पर आधारित हैं- सत्य, अहिंसा, हर श्रम का सम्मान और जीवन की सहजता। इस प्रकार, गांधीवादी आर्थिक दर्शन ने मनुष्य और उनके विचारों के साथ-साथ व्यक्तिगत खुशी को धन से अधिक प्रमुखता दिया।

ग्राम स्वराज, भारत के विकास और खासकर ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के लिए महात्मा गांधी के दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पहलू था। महात्मा गांधी का मानना था, कि सच्ची आजादी और प्रगति तभी हासिल की जा सकती है जब देश के ग्रामीण सशक्त और आत्मनिर्भर होंगे। गांधी ने स्पष्ट कहा, कि गांव में बनी वस्तुओं का प्रदर्शन भर कर देने से ग्रामोद्योग संघ के उद्देश्य को पर्याप्त सहायता नहीं मिल जाएगी। अब समय आ गया है, कि जनता को खाना और कपड़ा जुटाने के तरीके निकाले जाए। आज भारत के ग्रामोद्योग अपनी आखिरी सांस ले रहे हैं और इसके लिए सबसे अधिक जिम्मेदार है हमारी जनता। वह अपने पाप का प्रायश्चित सिर्फ इसी तरह कर सकती है, कि वह नष्टप्राय ग्रामीण उद्योग के पुनरुद्धार में सक्रिय सहायता दें। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि भारतीय गांवों की काया-पलट करने का एक मार्ग यही है की आबादी की प्रत्येक छोटी इकाई को उसकी सभी आवश्यकताओं के मामले में आत्मनिर्भर बनाने की प्राचीन प्रणाली को हम पुनः अपना लें (गाँधी, 1975)। ग्राम स्वराज, एक विकेंद्रीकृत और समतावादी समाज के लिए गांधी के दृष्टिकोण का एक बुनियादी हिस्सा था। उनका मानना था, कि भारत की प्रगति की कुंजी इसके ग्रामीण समुदायों की भलाई में निहित है। गांधीजी ने स्वशासन और आत्मनिर्भरता के माध्यम से गांवों के पुनरुद्धार की वकालत की। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जहां निर्णय लेने और शासन करने की शक्ति विकेंद्रीकृत थी और स्थानीय समुदायों को अपने मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अधिकार था।

गांधीवादी आर्थिक-दर्शन के जानकार जे.सी. कुमारप्पा के शब्दों में कहें तो, अगर कोई देश अपनी बुनियादी जरूरतें -खाना, कपड़ा और मकान खुद नहीं पूरी करता तो उसे आजाद नहीं कहा जा सकता। हमारी खेती-अर्थनीति एक ऐसी चीज है, जो हमें अपने पांव पर खड़ा कर सकती है। हमारा देश हमेशा से खेतिहर देश रहा है और जो भी उद्योग- धंधे यहां चलते थे, वह खेती से मिले-जुले होते थे (कुमारप्पा, 2010)।

ग्राम स्वराज में निहित मूल सिद्धांत :-

महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज की मूल अवधारणा 'आत्मनिर्भरता' व 'विकेंद्रीकरण' में समाहित है। जिसमें महात्मा गांधी ने गांवों में छोटे-छोटे उद्योग- धंधों के माध्यम से आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय रूप से उत्पादित वस्तुओं और संसाधनों के उपयोग पर जोर दिया। उन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्थानीय रूप से निर्मित वस्तुओं को अपना समर्थन देने का लोगों से आह्वान किया। जिससे स्वदेशी की भावना को बढ़ावा मिला।

महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज में स्वदेशी के बाद ग्रामोद्योग अथवा गांव में लघु स्तरीय कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने पर जोर दिया उनका कहना था कि यह उद्योग गांव में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या को खत्म करने के साथ-साथ में शहरों पर ग्रामीणों की निर्भरता को भी कम करने में सहायक होंगे। महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन के दौरान कांग्रेस के माध्यम से लगभग 20 लाख चरखों का वितरण पूरे देश में करवाया, जिससे आगे चलकर खादी देश भर में आत्मनिर्भरता का प्रतीक बन गया। इसी क्रम में महात्मा गांधी ने

पंचायती राज की भी वकालत की, जिसमें ग्राम स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निर्णय लिए जाएं, ग्रामीणों को सशक्त बनाया जा सके व शासन में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सके।

पंचायती राज, गांधी के विकेंद्रीकृत शासन की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। महात्मा गांधी ने तत्कालीन समय में ग्रामीण लोगों से और गांव के मुखियाओं से कई पत्राचार किया जिसमें उन्होंने टिकाऊ कृषि पद्धतियों के महत्व पर भी जोर दिया तथा किसानों को पारंपरिक व पर्यावरण अनुकूल खेती के लिए प्रोत्साहित करने के साथ-साथ प्राकृतिक खाद व प्राकृतिक कीटनाशक के प्रयोग पर जोर दिया।

ग्राम स्वराज की अवधारणा केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता के बारे में नहीं थी बल्कि सामाजिक और नैतिक प्रगति हासिल करने के बारे में भी थी। गांधी ने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जहां लोग प्रकृति के साथ सद्भाव में रहें, अहिंसा का पालन करें और सत्य और शोषण-मुक्ति के सिद्धांतों को बरकरार रखें। जबकि गांधी के समय में ग्राम स्वराज की पूर्ण प्राप्ति एक चुनौती बनी रही, उनके विचार और सिद्धांत आज भी जारी हैं। भारत और उसके बाहर विभिन्न जमीनी स्तर के आंदोलनों और विकास पहलों को प्रेरित करना। ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाने, आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने और शासन के विकेंद्रीकरण का विचार सतत और न्यायसंगत विकास की खोज में प्रासंगिक बना हुआ है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के वर्तमान संदर्भ में गांधीवादी दर्शन की प्रासंगिकता :-

भारत ने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली है, लेकिन उसे अभी शहरों और कस्बों से भिन्न अपने सात लाख गांवों के लिए सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना बाकी है। उस वसीयतनामे में ग्राम स्वराज का चित्र और कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है, जो दूसरे शब्दों में संपूर्ण राजनीतिक सत्ता भोगने वाला एक प्रहिसक, स्वावलंबी और स्वयंपूर्ण आर्थिक घटक है। गांधी की कल्पना का ग्राम-स्वराज मानव केंद्रित है, जबकि पश्चिमी अर्थव्यवस्था धन केंद्रित है। पहली अर्थव्यवस्था जीवन की अर्थव्यवस्था है और दूसरी अर्थव्यवस्था मृत्यु की अर्थव्यवस्था है (गांधी, 2019)। आजकल हम देख रहे हैं, कि ग्रामीण क्षेत्र के लोग अपनी दैनिक जरूरतों की पूर्ति व जीवन निर्वाह मात्र के लिए, गांवों में पर्याप्त संसाधन होने के बावजूद भी शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं, जिससे एक तरफ शहरों में जनसंख्या घनत्व में तेजी से वृद्धि हो रही है, दूसरी तरफ हमारे गाँव युवा विहीन होते जा रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ वैश्विक परिवेश में अगर हम देखें तो चीन व जापान जैसे देशों में लोग एक ही दिन में अलग-अलग समय में भिन्न-भिन्न कार्यों में संलिप्त होकर अपनी आय को दोगुना या चार गुना बढ़ा रहे हैं, हमारे देश के गांवों में बड़ी संख्या में बेरोजगार युवकों के साथ-साथ किसान भी केवल खेती पर निर्भर रहता है। ग्रामीण आर्थिक विकास के लिए हमें बेरोजगार युवकों के साथ-साथ किसानों को भी किसी न किसी छोटे या कुटीर उद्योग से जोड़ना होगा। वैश्विक परिवेश में भी देखें तो, जब कई बड़े देश युद्ध में परस्पर उलझ रहे हैं, तो ऐसे समय में हमको आत्मनिर्भरता पर कार्य करने की सख्त जरूरत है। जिन वस्तुओं का उत्पादन हम अपने गांवों में करके दूसरे देशों पर निर्भरता न सिर्फ काम कर सकते हैं बल्कि उनको निर्यात के दृष्टिकोण से भी बढ़ावा दे सकते हैं, ऐसी स्थिति में ग्राम स्वराज का मॉडल, गांवों के आर्थिक विकास के लिए एक स्थायी विकल्प बन सकता है।

गांधीवादी दर्शन के कुछ महत्वपूर्ण पहलू :-

ग्रामीण विकास और आत्मनिर्भरता, काफी लंबे अंतराल से भारत की आर्थिक वृद्धि बड़े पैमाने पर शहरी क्षेत्रों पर केंद्रित रही और गांव इस आर्थिक विकास की प्रक्रिया से अनछुये रहे। जिसके फल स्वरूप आज शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच की आर्थिक असमानताएं काफी बढ़ गई हैं। गांवों को सशक्त व आत्मनिर्भर बनाने की जरूरत है, जिससे हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्र भी देश के अर्थतंत्र को मजबूत करने में अपना योगदान दे सकें।

रोजगार सृजन व ग्रामीण उद्यमिता, वर्तमान समय में जब देश की आबादी लगातार बढ़ती जा रही है ऐसे समय में देश का एक बहुत बड़ा भाग जो गांवों में रहता है उसके हाथ में रोजगार न हो यह हमारे देश की अर्थव्यवस्था के लिए सही नहीं होगा। देश की अर्थव्यवस्था तभी परिपूर्ण होगी जब शहरी व ग्रामीण संसाधनों को पूरी क्षमता के साथ उपयोग में लाया जाएगा। ग्राम स्वराज, ग्रामीण स्तर की उद्यमिता और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ गांवों को एक अर्थतंत्र के रूप में विकसित करने में मददगार हो सकता है।

यदि हम छोटे पैमाने पर चलने वाले उद्योगों की मदद करते हैं तो हम राष्ट्रीय संपत्ति में वृद्धि करते हैं, इस विषय में मेरे मन में तनिक भी शंका नहीं है। इन गृह-उद्योगों को प्रोत्साहन और संजीवनी देने में ही सच्चा स्वदेशीपन है, इसमें भी मुझे कोई संदेह नहीं है। करोड़ों मूक लोगों की मदद करने का यही एकमात्र मार्ग है। इसी से लोगों की सृजन शक्ति और कला-कारीगरी के विकास का द्वार खुल सकता है। देश में जो सैकड़ों युवक बेकार पड़े हैं, उन्हें इससे अनेक उपयोगी व्यवसाय मिल सकते हैं। आज हमारी जो शक्ति व्यर्थ ही बर्बाद हो रही है, उसका इस काम में उपयोग हो सकता है। मैं ऐसा नहीं चाहता कि आज जो लोग दूसरे उद्योग-धंधों में अधिक कमाते हो, वह अपने धंधों को छोड़कर इन छोटे उद्योगों को अपना लें। जो बात मैंने चरखे के विषय में कही थी, वहीं इसके बारे में, किसी उद्योग को अपना लें और अपनी मामूली सी आमदनी में थोड़ी वृद्धि करें (गांधी, 2019)।

गांव के लोगों का सारा जोश, बुद्धिमत्ता और साधन, जो अब तक कारखानों में बनी चीजों की उन्नति करने में व्यय हुआ है, अब ग्रामोद्योग के आधार पर ग्राम-स्वावलंबन की ओर लगाया जाना चाहिए। कुछ पारंपरिक तरीके जैसे :- धन पिसाई, आटा पिसाई, तेल पेराई, गुड बनाना, मधुमक्खी पालन, कपास उत्पादन, चमड़ा उद्योग, साबुन बनाना, कागज बनाना, कुम्हार का काम, बर्तन ढालना, खिलौने बनाना, रस्सी बनाना, बड़ईगिरी, लोहार का काम, टोकरिया बनाना डेरी उत्पादन, अचार बनाना इत्यादि माध्यमों से ग्रामीण आर्थिक उन्नत पर जोर देने की आवश्यकता है (कुमारप्पा, 1957)।

स्वदेशी और आत्मनिर्भरता, आजकल हम सब देख रहे हैं कि पिछले एक-दो दशकों से देश में स्वरोजगार या छोटे-छोटे उद्योगों को बढ़ावा देने में सरकारें प्रयासरत हैं। महात्मा गांधी का 20वीं सदी के पूर्वार्ध में ही मानना था, कि भारत के निर्माताओं के सामने दो रास्ते हैं पहला अधिकाधिक उत्पादन और दूसरा अधिकाधिक लोगों के द्वारा उत्पादन, जिसमें पहले रास्ता एक नई आर्थिक गुलामी की ओर ले जाएगा जबकि दूसरा आर्थिक आत्मनिर्भरता के रास्ते में आगे बढ़ाएगा (देवी, 2022)। इसका प्रमुख लाभ यह होगा कि जहां एक तरफ हम आत्मनिर्भर होंगे वहीं आयात पर निर्भरता भी कम होगी। वर्तमान समय में भी सरकार द्वारा मनरेगा योजना, सर्वोदय योजना, स्किल इंडिया, आत्मनिर्भर भारत योजना तथा पीएम विश्वकर्मा योजना जैसी योजनाएं चलाई जा रही हैं जिसमें हमें गांधीवादी आर्थिक-दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है।

पर्यावरण व सतत विकास, ग्रामीण विकास का यह मॉडल जो पश्चिमी आधुनिकता और अति औद्योगीकरण की आलोचना करता है। इस मॉडल के मूल सिद्धांतों में एक है कि वातावरण को बिना प्रभावित किए उद्योग-धंधों की स्थापना की जाए। ऐसा ना हो कि हमारे हरे-भरे गांव मात्र औद्योगिक गांव बनकर रह जाएं। इसके लिए ग्राम स्वराज में निहित रोजगार-प्रबंधन व सतत विकास के उपाय हमारे ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए अति आवश्यक हैं। क्योंकि यह मॉडल प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ, ऐसी व्यवस्था की कल्पना करता है जहां हर व्यक्ति के पास आय-निर्माण का मौका हो (Saikia, Gogoi, 2023)।

प्राथमिक शिक्षा में हस्तकला, महात्मा गांधी का मानना था कि किसी भी बच्चों के शिक्षा का प्रारंभ उसे कोई एक हस्तकला सिखाने से शुरू हो। हर एक दस्तकारी की कला और विज्ञान व्यावहारिक शिक्षण द्वारा सिखाया जाए और फिर उस उद्योग द्वारा शिक्षा दी जाए। उदाहरण के लिए तकली पर की कटाई-कला को ही ले लीजिए। इससे जहां बच्चे को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाएगा कि वह सूत काते और खेती के काम में अपने

मां-बाप की मदद करें, वहां उसे ऐसा भी महसूस कराया जाएगा कि उसका संबंध सिर्फ अपने मां-बाप से ही नहीं, बल्कि अपने गांव और देश से भी है और उसे उनकी भी कुछ सेवा करनी चाहिए। यही एकमात्र रास्ता है, मैं मंत्रियों से कहूंगा कि खैरात में शिक्षा देकर तो वह बच्चों को असहाय ही बनाएंगे लेकिन उनसे अपने पसीने की कमाई से अपनी शिक्षा का खर्च निकलवा कर वह उन्हें बहादुर और आत्मविश्वासी बनाएंगे (गाँधी, 1977)।

महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज में आर्थिक स्थिरता के साथ-साथ आत्मनिर्भरता के सिद्धांत गहराई से निहित हैं। इस मॉडल में ग्रामीण समुदायों को सशक्त करने के साथ लघु उद्योगों को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया है। इस मॉडल में गांधी के आर्थिक दर्शन के दूरदर्शिता की झलक देखने को मिलती है जो न सिर्फ भौतिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि नैतिक आचरण और अहिंसा से प्रेरित, लोगों के समग्र कल्याण पर केंद्रित है। वर्तमान समय में यह विचार और भी ज्यादा प्रासंगिक हो जाता है, जब भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से आगे बढ़ रही है तब ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवसायों व स्थानीय उद्योगों को बढ़ावा देने व अंतिम पायदान पर खड़े समुदायों के उत्थान व उनके समावेशी विकास के साथ यह मॉडल गरीबी उन्मूलन के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। गांधीवादी आदर्शों को आधुनिक दृष्टिकोण के साथ मिश्रित करके हम गांव के लिए एक संतुलित व आत्मनिर्भरता की तरफ ले जाने वाले संरचना को देख सकते हैं जिससे गांवों का आर्थिक भविष्य एक नये मुकाम पर पहुँच सके।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. भारती, सत्यम, 2022, *ग्राम-स्वराज की अवधारणा और उसकी प्रासंगिकता*, मानस पत्रिका, हिंद प्रिंटिंग वर्क्स लि., वाराणसी, पृ. स. (14)
2. गांधी, एम. के., 2006, *हिंद स्वराज*, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ. स. (15)
3. गाँधी, महात्मा, 1975, संपूर्ण गाँधी वांग्मय (16 दिसंबर, 1934-24 अप्रैल, 1935), नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, भारत, पृ. स. (498)
4. कुमारप्पा, जे. सी., 2010, *गांधी अर्थ-विचार (अनु.- सुरेश शर्मा)*, अ. भा. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृ. स. (22)
5. गांधी, एम. के., 2019, *ग्राम-स्वराज (सं.- हरिप्रसाद व्यास)*, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. स. (17)
6. गांधी, एम. के., 2019, *ग्राम-स्वराज (सं.- हरिप्रसाद व्यास)*, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. स. (144-45)
7. कुमारप्पा, जे. सी., 1957, *ग्राम सुधार की एक योजना*, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी, पृ. संख्या (54-65)
8. देवी, प्रांजलि, 2022, *आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना और गाँधी के विचार*, मानस पत्रिका, हिंद प्रिंटिंग वर्क्स लि., वाराणसी, पृ. स. (12)
9. Saikia Mainee, Gogoi Rituraj, 2023, The feature of mahatma gandhi's economic thought and its relevance in present day context in Indian economic with Special reference to gram swaraj, vol.13
10. गाँधी, महात्मा, 1977, संपूर्ण गाँधी वांग्मय (1 अगस्त, 1937-31 मार्च, 1938), नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद, भारत, पृ. स. (294-96)



हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में नारीवादी दृष्टिकोण और राष्ट्रवादी चेतना : एक ऐतिहासिक और समकालीन यात्रा

पवन कुमार मिश्रा*
डॉ. अभिषेक मिश्र**

सारांश

हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ भारतीय राष्ट्रवाद के उन्नयन का एक शक्तिशाली मंच रही हैं, और इस प्रक्रिया में नारीवादी दृष्टिकोण ने महिलाओं को राष्ट्र निर्माण के केंद्र में लाकर एक अनूठा योगदान दिया है। यह शोध पत्र औपनिवेशिक काल की पत्रिकाओं जैसे *कविवचनसुधा*, *सरस्वती*, और *चाँद* से लेकर स्वतंत्रता के बाद की *हंस* और *कादंबिनी* तक, और आधुनिक डिजिटल युग तक के सफर को खंगालता है। इन पत्रिकाओं ने महिला शिक्षा, सामाजिक सुधार, और स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भागीदारी को राष्ट्रवादी चेतना के साथ जोड़ा, जिससे "भारत माता" की छवि और वास्तविक महिलाओं की भूमिका को एक नया अर्थ मिला। यह अध्ययन यह तर्क देता है कि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने नारीवादी विचारधारा को राष्ट्रवादी आंदोलन का अभिन्न अंग बनाया, लेकिन पितृसत्तात्मक रूढ़ियाँ, क्षेत्रीय सीमाएँ, और आधुनिक युग में सनसनीखेज पत्रकारिता ने इस समन्वय को जटिल बनाया। यह लेख कथात्मक शैली में इस यात्रा को उजागर करता है और समावेशी नारीवादी दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देता है।

परिचय

जब हम भारतीय राष्ट्रवाद की बात करते हैं, तो हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ एक ऐसी आवाज़ के रूप में उभरती हैं, जिन्होंने न केवल स्वतंत्रता संग्राम को गति दी, बल्कि भारतीय समाज की आत्मा को भी झकझोरा। इन पत्रिकाओं ने न केवल ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनमानस को संगठित किया, बल्कि सामाजिक सुधारों, भाषाई एकता, और सांस्कृतिक गौरव को भी बढ़ावा दिया। इस प्रक्रिया में, एक ऐसा पहलू जो बार-बार सामने आता है, वह है नारीवादी दृष्टिकोण का उदय और उसका राष्ट्रवादी चेतना के साथ गहरा जुड़ाव।

19वीं सदी के अंत से लेकर 21वीं सदी तक, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने महिलाओं को केवल "राष्ट्र की माता" या सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में ही नहीं देखा, बल्कि उन्हें स्वतंत्रता संग्राम की सिपाही, सामाजिक सुधार की प्रेरक, और आधुनिक भारत की निर्माता के रूप में भी चित्रित किया। *कविवचनसुधा* के पन्नों में भारतेंदु Harishchandra ने महिला शिक्षा को राष्ट्र की प्रगति का आधार बताया, तो *चाँद* ने विधवा पुनर्विवाह और पर्दा प्रथा जैसे मुद्दों को उठाकर महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बनाया। स्वतंत्रता के बाद, *हंस* और *कादंबिनी* ने आधुनिक भारत में महिलाओं की बदलती भूमिका को राष्ट्रीय पहचान के साथ जोड़ा। आज, डिजिटल युग में हिंदी न्यूज़ पोर्टल्स और सोशल मीडिया महिलाओं के सशक्तीकरण को राष्ट्रीय गौरव से जोड़ रहे हैं, लेकिन सनसनीखेज पत्रकारिता और व्यावसायिक हस्तक्षेप इस प्रयास को जटिल बना रहे हैं।

यह लेख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में नारीवादी दृष्टिकोण और राष्ट्रवादी चेतना के बीच के इस जटिल और प्रेरक समन्वय की कहानी को बयान करता है। यह जानने की कोशिश करता है कि कैसे इन पत्रिकाओं ने महिलाओं को राष्ट्र निर्माण का हिस्सा बनाया, और इस प्रक्रिया में किन चुनौतियों का सामना किया।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: औपनिवेशिक काल में नारीवाद और राष्ट्रवाद का उदय

19वीं सदी के उत्तरार्ध में, जब भारत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद कर रहा था, हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ एक नई चेतना का प्रतीक बन रही थीं। इस दौर में, भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे दूरदर्शी

* शोध छात्र, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज

** असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

संपादकों ने हिंदी को न केवल एक भाषा, बल्कि राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक गौरव का प्रतीक बनाया। उनकी पत्रिका *कविवचनसुधा* (1870 में शुरू) ने नारी शिक्षा को राष्ट्र की प्रगति का आधार माना। भारतेंदु ने अपने लेखों में तर्क दिया कि एक शिक्षित महिला ही एक शिक्षित और सशक्त राष्ट्र की नींव रख सकती है। उनकी प्रसिद्ध पंक्ति, "नारी शिक्षा के बिना राष्ट्र का उत्थान असंभव है," उस समय की प्रगतिशील सोच को दर्शाती है।

सरस्वती (1900 में शुरू) ने इस विचार को और आगे बढ़ाया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में, इस पत्रिका ने न केवल साहित्यिक मानकों को ऊँचा किया, बल्कि सामाजिक सुधारों पर भी जोर दिया। *सरस्वती* ने महिलाओं को "भारत माता" के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया, जो राष्ट्र की सांस्कृतिक और नैतिक शक्ति का प्रतीक थी। इस प्रतीकात्मकता ने महिलाओं को राष्ट्रवादी आंदोलन से जोड़ा, लेकिन साथ ही उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कुछ हद तक सीमित भी किया।

सबसे उल्लेखनीय योगदान *चाँद* (1922 में शुरू) का रहा, जो महिलाओं के लिए समर्पित एक पत्रिका थी। *चाँद* ने विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह, और पर्दा प्रथा जैसे सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया। इसने महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदार के रूप में प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए, *चाँद* ने सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930) में महिलाओं की भूमिका, जैसे नमक सत्याग्रह में उनकी भागीदारी, को प्रमुखता से प्रकाशित किया। इसने सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे लेखिकाओं को मंच प्रदान किया, जिनकी कविता "झाँसी की रानी" ने रानी लक्ष्मीबाई को एक राष्ट्रीय नायिका के रूप में स्थापित किया।

स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका और पत्र-पत्रिकाओं की नजर

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ महिलाओं को केवल सांस्कृतिक प्रतीक ही नहीं, बल्कि सक्रिय सिपाही के रूप में देखने लगीं। *कर्मवीर* और *आजाद* जैसे समाचार पत्रों ने सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित, और अरुणा आसफ अली जैसे महिला नेताओं की कहानियों को जनता तक पहुँचाया। *चाँद* ने भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में महिलाओं की भूमिका को विशेष अंकों में उजागर किया, जिसमें उन्होंने जेल यात्राएँ, प्रदर्शन, और स्वदेशी आंदोलन में योगदान को रेखांकित किया।

इन पत्रिकाओं ने स्वदेशी आंदोलन को नारी शक्ति से जोड़ा। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और खादी को अपनाने में महिलाओं की भूमिका को *सरस्वती* और *कविवचनसुधा* ने "नारी शक्ति" के रूप में प्रस्तुत किया। यह विचार कि महिलाएँ घर से लेकर सड़कों तक स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बन सकती हैं, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की देन थी। सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जैसे लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में इस विचार को और बल दिया। चौहान की कविताएँ जहाँ वीरता और बलिदान को गाती थीं, वहीं वर्मा ने *चाँद* में अपने लेखों के माध्यम से महिलाओं की बौद्धिक और भावनात्मक शक्ति को राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा।

हालांकि, इस दौर में नारीवादी दृष्टिकोण की कुछ सीमाएँ भी थीं। हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रायः उच्च वर्ग और सवर्ण महिलाओं पर केंद्रित थीं, जिससे दलित और पिछड़े वर्ग की महिलाओं की आवाज़ कम सुनाई दी। साथ ही, "भारत माता" जैसे प्रतीकों ने महिलाओं को एक आदर्श छवि में बाँध दिया, जिसने उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कुछ हद तक सीमित किया।

स्वतंत्रता के बाद: आधुनिक भारत में नारीवाद और राष्ट्रवाद

स्वतंत्रता के बाद, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने आधुनिक भारत में महिलाओं की बदलती भूमिका को राष्ट्रीय पहचान के साथ जोड़ने का प्रयास किया। *धर्मयुग* (1940-1980) और *हंस* (1930 से निरंतर) ने नारीवादी दृष्टिकोण को नए सिरे से परिभाषित किया। *धर्मयुग* ने महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, और पंचायती राज में उनकी भागीदारी को राष्ट्रीय प्रगति का प्रतीक माना। इसने मन्नु भंडारी और कृष्णा सोबती जैसे लेखिकाओं को मंच प्रदान किया, जिन्होंने अपने लेखन में महिलाओं की स्वतंत्रता और राष्ट्रीय पहचान के बीच संतुलन की बात की।

हंस ने सामाजिक मुद्दों जैसे दहेज, घरेलू हिंसा, और लैंगिक असमानता को उठाया और इन्हें राष्ट्रीय प्रगति की बाधाओं के रूप में चित्रित किया। प्रेमचंद और राजेंद्र यादव जैसे संपादकों ने *हंस* को एक ऐसा मंच

बनाया, जहाँ नारीवादी विचारधारा को राष्ट्रीय चेतना के साथ जोड़ा गया। उदाहरण के लिए, *हंस* में प्रकाशित कहानियाँ और लेख महिलाओं के सामाजिक संघर्षों को राष्ट्रीय विकास के व्यापक परिदृश्य से जोड़ते थे।

कादंबिनी (1960 में शुरू) ने आधुनिक भारतीय महिला की छवि को रेखांकित किया। इसने न केवल घरेलू मुद्दों, बल्कि महिलाओं की बौद्धिक और पेशेवर उपलब्धियों को भी उजागर किया। *कादंबिनी* ने महिलाओं को आधुनिक भारत की निर्माता के रूप में प्रस्तुत किया, जो शिक्षा, विज्ञान, और कला के क्षेत्र में योगदान दे रही थीं।

समकालीन युग: डिजिटल मीडिया और नारीवादी दृष्टिकोण

21वीं सदी में, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप डिजिटल युग में बदल गया है। *The Quint Hindi*, *Navbharat Times*, और *Jansatta* जैसे डिजिटल न्यूज़ पोर्टल्स ने नारीवादी मुद्दों को राष्ट्रीय गौरव के साथ जोड़ा है। उदाहरण के लिए, #MeToo आंदोलन (2018) को हिंदी डिजिटल मीडिया ने भारतीय महिलाओं की आवाज़ को वैश्विक मंच पर ले जाने का माध्यम बनाया। *The Quint Hindi* ने इस आंदोलन को न केवल लैंगिक समानता, बल्कि राष्ट्रीय प्रगति के संदर्भ में प्रस्तुत किया।

इसी तरह, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान (2015) को *Navbharat Times* और *Dainik Jagran* ने राष्ट्रीय गौरव और महिला सशक्तीकरण का प्रतीक बताया। X प्लेटफॉर्म पर #BetiBachaoBetiPadhao और #WomenEmpowerment जैसे हैशटैग्स ने लाखों लोगों को इस चर्चा में शामिल किया। इन हैशटैग्स ने नारीवादी दृष्टिकोण को राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा, यह तर्क देते हुए कि महिलाओं का सशक्तीकरण ही भारत की प्रगति की कुंजी है।

हालांकि, समकालीन हिंदी डिजिटल मीडिया में कुछ चुनौतियाँ भी उभरी हैं। नारीवादी मुद्दों को प्रायः सनसनीखेज तरीके से प्रस्तुत किया जाता है, जैसे बलात्कार और घरेलू हिंसा की खबरें, जो गहन विश्लेषण की कमी को दर्शाता है। *Sudarshan News* जैसे कुछ चैनल्स ने नारीवादी मुद्दों को सांप्रदायिक रंग देकर धुवीकरण को बढ़ावा दिया। इसके अलावा, हिंदी डिजिटल मीडिया मुख्य रूप से उत्तर भारत पर केंद्रित रहा, जिससे दक्षिण और पूर्वी भारत की महिलाओं की आवाज़ कम सुनाई दी।

चुनौतियाँ: पितृसत्ता, क्षेत्रीयता, और वर्गीय असमानता

हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में नारीवादी दृष्टिकोण और राष्ट्रवादी चेतना का समन्वय प्रभावशाली रहा है, लेकिन इसकी राह में कई बाधाएँ भी रहीं। औपनिवेशिक काल में, "भारत माता" जैसे प्रतीकों ने महिलाओं को एक आदर्श छवि में बाँध दिया, जिसने उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सीमित किया। पितृसत्तात्मक समाज में, नारीवादी दृष्टिकोण प्रायः सामाजिक सुधार तक सीमित रहा, और महिलाओं की स्वायत्तता पर कम ध्यान दिया गया।

क्षेत्रीय सीमाएँ भी एक बड़ी चुनौती रहीं। हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ मुख्य रूप से उत्तर भारत के हिंदी भाषी क्षेत्रों तक सीमित थीं, जिससे दक्षिण और पूर्वी भारत की महिलाओं की आवाज़ कम सुनाई दी। यह सीमा आज भी डिजिटल युग में देखी जा सकती है, जहाँ हिंदी न्यूज़ पोर्टल्स का प्रभाव दक्षिण भारत में कम है।

वर्ग और जाति असमानता भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा। औपनिवेशिक और स्वतंत्रता के बाद के काल में, हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रायः उच्च वर्ग और सवर्ण महिलाओं पर केंद्रित थीं। दलित और पिछड़े वर्ग की महिलाओं के मुद्दों को कम ही स्थान मिला। समकालीन डिजिटल मीडिया में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है, जहाँ शहरी और मध्यम वर्ग की महिलाओं के मुद्दों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

चर्चा: एक दोहरी भूमिका

हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने नारीवादी दृष्टिकोण को राष्ट्रवादी चेतना के साथ जोड़कर एक अनूठा योगदान दिया है। औपनिवेशिक काल में, इन पत्रिकाओं ने महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम की नायिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया, जिसने "भारत माता" की प्रतीकात्मकता को वास्तविकता से जोड़ा। स्वतंत्रता के बाद, *हंस* और *कादंबिनी* ने महिलाओं की बौद्धिक और पेशेवर भूमिका को आधुनिक भारत की राष्ट्रीय पहचान का हिस्सा

बनाया। समकालीन डिजिटल युग में, #MeToo और #BetiBachao जैसे अभियानों ने नारीवादी दृष्टिकोण को वैश्विक और राष्ट्रीय मंच पर ले जाया।

लेकिन यह समन्वय हमेशा सहज नहीं रहा। पितृसत्तात्मक रूढ़ियाँ, क्षेत्रीय सीमाएँ, और वर्गीय असमानताएँ इस प्रक्रिया को जटिल बनाती हैं। आधुनिक डिजिटल मीडिया में, सनसनीखेज पत्रकारिता और व्यावसायिक हितों ने नारीवादी दृष्टिकोण की गहराई को कम किया है। फिर भी, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की यह यात्रा प्रेरणादायक है, क्योंकि इसने महिलाओं को केवल राष्ट्रीय प्रतीक ही नहीं, बल्कि सक्रिय निर्माता के रूप में स्थापित किया।

निष्कर्ष

हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ नारीवादी दृष्टिकोण और राष्ट्रवादी चेतना के बीच एक सेतु रही हैं। औपनिवेशिक काल में, *कविवचनसुधा*, *सरस्वती*, और *चाँद* ने महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बनाया, तो स्वतंत्रता के बाद *हंस* और *कादंबिनी* ने उनकी बौद्धिक और सामाजिक भूमिका को राष्ट्रीय प्रगति से जोड़ा। आज, डिजिटल युग में हिंदी न्यूज पोर्टल्स और सोशल मीडिया नारीवादी मुद्दों को राष्ट्रीय गौरव के साथ जोड़ रहे हैं। लेकिन पितृसत्तात्मक रूढ़ियाँ, क्षेत्रीय सीमाएँ, और सनसनीखेज पत्रकारिता इस समन्वय को चुनौती देती हैं। भविष्य में, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को एक समावेशी नारीवादी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जो सभी वर्गों, जातियों, और क्षेत्रों की महिलाओं को शामिल करे। यह न केवल राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध करेगा, बल्कि एक समावेशी और प्रगतिशील भारत की नींव भी रखेगा।

सुझाव

हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को नारीवादी दृष्टिकोण को और प्रभावी बनाने के लिए कुछ कदम उठाने चाहिए। सबसे पहले, दलित, पिछड़े, और ग्रामीण महिलाओं के मुद्दों को अधिक स्थान देना होगा। दूसरा, सनसनीखेज पत्रकारिता के बजाय गहन और विश्लेषणात्मक सामग्री पर जोर देना चाहिए। तीसरा, क्षेत्रीय भाषाओं और पत्रिकाओं के साथ सहयोग बढ़ाकर समावेशी राष्ट्रीय पहचान को प्रोत्साहित किया जा सकता है। अंत में, शैक्षिक और प्रेरणादायक सामग्री, जैसे महिला नेताओं और लेखिकाओं की कहानियाँ, प्रकाशित की जानी चाहिए, जो युवा पीढ़ी को प्रेरित करें।

संदर्भ

1. Chatterjee, P. (1993). *The Nation and Its Fragments: Colonial and Postcolonial Histories*. Princeton University Press.
2. Dalmia, V. (1997). *The Nationalization of Hindu Traditions: Bharatendu Harishchandra and Nineteenth-century Banaras*. Oxford University Press.
3. Minault, G. (1998). *Secluded Scholars: Women's Education and Muslim Social Reform in Colonial India*. Oxford University Press.
4. Orsini, F. (2002). *The Hindi Public Sphere 1920-1940: Language and Literature in the Age of Nationalism*. Oxford University Press.
5. चाँद. (1922-1940). अभिलेखागार, National Library of India.
6. सरस्वती. (1900-1940). अभिलेखागार, Hindi Sahitya Sammelan.
7. हंस. (1930-2024). विभिन्न अंक।
8. कादंबिनी. (1960-1990). अभिलेखागार, National Library of India.
9. *The Quint Hindi*. (2014-2024). डिजिटल संग्रह। <https://hindi.thequint.com/>
10. *Navbharat Times*. (2014-2024). डिजिटल संग्रह। <https://navbharattimes.indiatimes.com/>

रामकथा विषयक उपन्यासों का चित्रण निम्न रूप से किया गया है। भारतीय पुराकथाएं अपनी कालजयी चेतना के कारण सहस्रों वर्षों से भारतीय साहित्य की समस्त विधाओं में किसी न किसी रूप में उपस्थित रहीं हैं। यही कारण है कि भारतीय आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य भी इन पौराणिक रचनाओं के पात्रों, कल्पनाओं से अपने को स्वतंत्र नहीं कर पाया है। इन पौराणिक रचनाओं को 'मिथकों' की श्रेणी में स्थान दिया गया है। पौराणिक रचनाओं के प्रति साहित्यकारों के दृष्टिकोणों में अंतर पाया जाता है। कोई पौराणिक पात्र को उसकी अलौकिकता, अतिमानवीयता के कारण अवतारी व्यक्ति के रूप में दर्शाता है एवं साथ ही उसके प्रति भक्ति की भावना प्रकट करता है। तो कोई साहित्यकार, पौराणिक कथा को साहित्यिक महत्व के रूप में स्वीकृत करता है। वहीं दूसरा तरफ अपनी रचनाओं में उसे कोरी कल्पना मानकर, अंधविश्वास को प्रोत्साहित करता दिखता है।

अन्य साहित्यकार उन पौराणिक कथाओं और पात्रों को आदर भाव के साथ अपनाते हैं; तो कोई काल्पनिक होते हुए भी कथा की स्रष्टा अपनी कल्पना शक्ति से कर उसे कालजयी दृष्टिकोण से देखने की कोशिश करता है। इस तरह सभी अपनी-अपनी दृष्टि से पौराणिक पात्रों एवं प्रसंगों का प्रयोग अपनी रचनाओं में करते हैं। पौराणिक रचनाओं के प्रति 'नरेंद्र कोहली जी का दृष्टिकोण' अन्य कई उपन्यासकारों के दृष्टिकोण से भिन्न दिखता है। कोहली जी ने अपनी रामकथा पर आधृत उपन्यास 'अभ्युदय' में इनमें से अनेक विशेषताओं का समाहार किया है। कथा की महानता, पात्र की मानवीय क्षमता, तद्युगीन मानवीय दृष्टिकोण आदि को स्वीकार करते हुए; इन्होंने अपनी रचनाओं में 'राम' और 'कृष्ण' जैसे पुरातन कथाओं को अलौकिकता और चमत्कारिता से मुक्त कर, उनके पात्रों और संदर्भों को मानवीय धरातल पर देखने का प्रयत्न किया है। 'नरेंद्र कोहली जी' ने रामकथा पर आधृत पाँच उपन्यास लिखें 'दीक्षा' (1975), 'अवसर' (1976), 'संघर्ष की ओर' (1978) और भाग-1 एवं 'युद्ध' भाग-2 (1979)। ये सभी उपन्यास स्वतंत्र २ प्रकाशित हुए हैं। बाद में 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर' इन .. उपन्यासों को एकीकृत कर 'अभ्युदय-1' और वहीं 'युद्ध' (भाग-1 एवं भाग-2) को एकीकृत कर 'अभ्युदय'-2 नाम से प्रकाशित किया गया।¹

नरेंद्र कोहली द्वारा लिखी गई ये पाँचों उपन्यास रामकथा पर आधृत हैं; जिसमें रामकथा के पौराणिक प्रसंगों एवं मूल्यों की युगानुकूल, तर्कसंगत, व्यवहारिक एवं आधुनिक व्याख्या की गई है। स्वयं कोहली जी अपने इन उपन्यासों को "रामकथा की पुनर्व्याख्या कहते हैं।"² - "अभ्युदय उपन्यास के अध्ययन से रामकथा की गहनताओं को जानने का अवसर मिलता है।"³ इन पाँचों उपन्यासों में समकालीन स्थितियों और सरोकारों को गहरी संवेदनशीलता और गहन चिंतन के साथ प्रस्तुत करते हुए, परम्परागत रामकथा को आधुनिक संचेतना के आलोक में तर्क-संगत पुनर्व्याख्या द्वारा नवीन अर्थ और सर्जनात्मक रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

नरेंद्र कोहली जी की रामकथा में राम विश्वामित्र से जन कल्याण की मंत्र दीक्षा प्राप्त करके वन जाने के अवसर की प्रतीक्षा करते दिखाई देते हैं और कैकयी के दो वरों के माध्यम से उन्हें जब वन जाने और पीडित जनता का नेतृत्व करने का अवसर मिलता है, तब संघर्ष होता है और अंततः युद्ध होता है। जहाँ राम द्वारा राक्षसी शक्तियों का अंत होकर, जनता का अभ्युदय होता है। इस प्रकार विश्वामित्र से दीक्षित होने, दीक्षित हो वन जाकर राक्षसों से संघर्ष और फिर युद्ध कर जनता का अभ्युदय करने तक की इस संपूर्ण कथा को नरेंद्र कोहली जी ने अपने पाँचों रामकथात्मक उपन्यास को 'अभ्युदय' उपन्यास-शृंखला में क्रमबद्ध तरीके से संजोया है।

नरेंद्र कोहली जी के पहले उपन्यास 'दीक्षा' की विषयवस्तु में विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में राक्षसों के उत्पात से लेकर राम के विवाह और परशुराम की पराजय तक की कथा वर्णित है, जिसे उन्होंने एक नयी दृष्टि से एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। समूचे विशाल 'जंबूद्वीप' में हो रहे राक्षसी उत्पात और उसके परिणामस्वरूप सदमूल्यों के हनन और राक्षसी मूल्यों के भयावने आतंक के विस्तार को देखने और उसका प्रतिरोध करने की दीक्षा ऋषि विश्वामित्र ने 'राम' को दी थी। इस कथा के विभिन्न प्रसंगों में से गुजरते हुए कोहली जी ने विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं, जन-सामान्य के शोषण, बुद्धिजीवियों के

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी भाषा साहित्य संकाय, गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

कर्तव्य समाज में नारी का स्थान, स्त्री-पुरुषों के संबंध, जाति, वर्ष की विभीषिकाओं, लोलुप और स्वार्थी बुद्धिजीवियों, शासनाधिकारियों की मानसिकता आदि विषयों का मनोवैज्ञानिक आरुयान प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनका विश्लेषण किया है। इस प्रकार 'दीक्षा' उपन्यास में अपनी मान्यताओं के सहारे एक प्रख्यात कथा को पूर्णतः मौलिक एवं आधुनिक उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में 'कोहली जी' ने आधारिक कथावस्तु के रूप में राम-विश्वामित्र की जनकपुर यात्रा तथा मुख्य कथा के विकास के लिए प्रासंगिक कथावस्तु को लिया है, जिसकी उद्भावना उन्होंने अपनी कल्पना द्वारा की है, किन्तु इस कल्पना का उद्देश्य मात्र मुख्य कथा का विकास करना ही रहा है। उपन्यासकार नरेंद्र कोहली जी ने दीक्षा उपन्यास में रामकथा की पुनर्व्याख्या आधुनिक यथार्थ संदर्भों की सहायता से किया है। कोहली जी ने अपनी उपन्यास का शीर्षक 'दीक्षा' इसलिए रखा है क्योंकि इस खण्ड में 'श्रीराम' विश्वामित्र से अस्त्र-शस्त्र के संचालन की दीक्षा लेते हैं। बाद में आगे भलकर वे परशुराम से भी कुछ दिव्यास्त्रों की दीक्षा प्राप्त करते हैं।

राक्षसों के निरंतर उत्पात से जब विश्वामित्र के सिद्धाश्रम और इसके आसपास के लोग बहुत त्रस्त और पीड़ित थे, तब विश्वामित्र इन अत्याचारों का विरोध करने के लिए नजदीक के शासक 'बाहुलाश्व' से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन उन्हें सूचना मिलती है कि 'बाहुलाश्व' के पुत्र और उसके साथियों ने ही गहन नामक निम्न जाति के व्यक्ति पर अत्याचार किया है, उसकी पुत्रवधुओं का बलात्कार किया है। इस प्रकार 'डा. कोहली जी ने 'दीक्षा' उपन्यास के माध्यम से शासकों द्वारा अपनी सत्ता और ताकत का दुरुपयोग कर जन सामान्य का शोषण करने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। इसके साथ ही आज के समय में उन्होंने सवर्णों द्वारा निम्न जातियों पर होने वाले अत्याचार का भी वर्णन प्रस्तुत किया है।

'दीक्षा' में उपाचार्य 'अमितलाल' का 'अहिल्या' को व्यभिचारिणी कहकर विरोध करना तथा उनको खुद आचार्य बनने के लिए षडयंत्र करते दिखलाना, कहीं न कहीं समाज के स्वार्थी और लालुप बुद्धिजीवियों की भ्रष्टता को पर्दाफाश करती है। इतना ही नहीं समाज को केन्द्र मानकर, उसके हित अहित की भी चर्चा इस उपन्यास में की गई है और इसके साथ ही सामन्त वर्ग की नारियों की अकर्मण्यता, आभूषणों को प्रति उनकी ललक उनकी निष्क्रियता तथा उनकी अनुपयोगिता की बात भी की गई है।

'दीक्षा' उपन्यास में पात्र 'राम' मानव जैसे ही दिखते हैं, उन्हें किसी यज्ञ से उत्पन्न हुआ नहीं दिखाया गया है। काल्पनिक पात्र के रूप में 'पुनर्वसु' हैं, जो विश्वामित्र के आश्रम के व्यवस्थापक हैं। इसी 'बहल्या', 'बूढ़ी गाय' की कल्पना भी लेखक द्वारा की गई 'बूढ़ी गाय' को स्नेह के प्रतिबिम्ब की तरह दिखाया गया। सुख-दुख में साथ देती है तथा औषधि के रूप में दूध अहिल्या के पुत्र शतानंद को बचाती है। दास्याभाव को ना उपन्यासकार ने अपनी कृति दीक्षा उपन्यास में अनूठे ढंग से उजागर किया है। तपस्विनी अहिल्या के उद्धार करने के पश्चात राम अनुज लक्ष्मण समेत अहिल्या के चरण स्पर्श करते हैं। इस कृति में बनजा नारी भी अहिल्या की तरह समाज से बहिष्कृत हैं। जिसका उद्धार 'राम' करते हैं। 'बनजा' एक काल्पनिक पात्र है। 'अजगव परिचालन विधि' में भी डा०कोहली ने आत्म विस्फोटक पदार्थ को साकर मौलिकता दर्शाने का प्रयास किया है।

इस तरह इस 'दीक्षा' खण्ड में उपन्यासकार कोहली जी ने पर्याप्त मौलिकता दर्शाने की कोशिश की है एवं अनेक काल्पनिक पात्रों की सृष्टि कर कथानक के संदर्भ में उसकी औपन्यासिक क्षमता का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। इस तरह दीक्षा उपन्यास में पौराणिक कथा-वृत्त को समकालीन संदर्भों के साथ समन्वयात्मक रूप देने का अथक प्रयास कोहली जी द्वारा किया गया है।

'अवसर' उपन्यास 'अभ्युदय' का दूसरा खंड है। इसकी आधारभूमि मूल रामकथा के अयोध्या कांड की कथा है। 'दीक्षा' उपन्यास के समान ही 'अवसर' में रामकथा की युगानुरूप व्याख्या की गई है। साथ ही, इसे आधुनिक संदर्भ प्रदान किया गया है। इसमें राम-सीता के विवाहोपरांत से चित्रकूट प्रसंग तक की कथा को वर्णित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने चरितनायक 'राम' तथा अन्य पात्रों को मानवीय धरातल पर उतारकर, उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। राम के वनवास की कथा को समाहित करती हुई इसकी कथावस्तु मुख्यतः पौराणिक है। अभ्युदय के अवसर खण्ड की कथावस्तु में कोहली जी ने अनेक मौलिक तथ्यों की उद्भावना की है। प्रस्तुत उपन्यास में अयोध्या की राजनीतिक उथल-पुथल में 'राम' को 'विश्वामित्र' की दीक्षा को व्यावहारिक रूप देने का अवसर प्राप्त होता है। 'दशरथ' जब अपनी सुरक्षा के प्रति आशंकित होकर, अत्यंत गोपनीय ढंग से राम के राज्याभिषेक की घोषणा करते हैं, तब कैकेयी उन्हें दुख पहुँचाने हेतु राम को चौदह वर्षों का वनवास दे देती है, किंतु वनगमन की सूचना पाकर 'राम' तनिक भी विवर्लित नहीं होते अपितु वे लक्ष्मण से कहते हैं- "यह वनवास नहीं मेरे जीवन का अभ्युदय है, संकीर्ण राजनीति से उबर, व्यापक मानवीय कर्तव्य निभाने का अद्वितीय अवसर है।"⁴ इस प्रकार वन-गमन के द्वारा राम अयोध्या की संकुचित और स्वार्थी राजनीति से हटकर, दण्डकारण्य में राक्षसी शक्तियों को जन जागृति के माध्यम से संगठित करके, जनक्रांति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में पौराणिक संदर्भों को युगीन व्याख्या प्रदान की गई है। राम के विचारों के माध्यम से 'रामराज्य' की अपनी परिकल्पना प्रस्तुत की गई है। रामकथा की जिन घटनाओं को सामान्य भारतीय विकास, आस्था और देवीय स्फुरण की दृष्टि से देखता है, उन्हें रचनाकार डाल कोहली जी

ने गहरा राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आयाम प्रदान किया है। 'कैकेयी और युद्धाजित' की कूटनीति जिस प्रकार अयोध्या की संपूर्ण व्यवस्था को प्रभावित करती है, कहीं न कहीं यह आधुनिक समय के राजनीति और शासकों के परिप्रेक्ष्य को जीवन्त कर देती है। लेखक डा. कोहली ने उपन्यास में राम को जहाँ समतावादी, न्यायप्रिय और असुरों के विनाशक तथा राक्षसी सभ्यता के अत्याचारों, शोषण और उत्पीड़न से त्रस्त मानवता के उद्धारक एवं याक के रूप में प्रस्तुत किया है, तो वहीं 'राक्षसी सभ्यता को आधुनिक संदर्भ में उपनिवेशवादी एवं पूंजीवादी शासक के शासन-व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में ऋषि-मुनियों को सचेत बुद्धिजीवी के रूप में चित्रित किया गया है, जो जंगल में रहकर भी समाज के प्रति अत्यंत जागरूक रहते हैं। अतः उपन्यास के सभी चिर परिचित एवं काल्पनिक पात्रों की आधुनिक सृष्टि कोहली जी के रामकथा में की गई है। नरेंद्र कोहली जी ने विविध पात्रों और प्रसंगों के माध्यम से इस बात पर विशेष बल दिया है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी रक्षा का भार स्वयं उठाना बाहिए तथा अत्याचारों का विरोध करना चाहिए। डा. कोहली के राम राक्षसी सभ्यता के उन्मूलन द्वारा मात्र विजय के इच्छुक नहीं हैं अपितु जनतंत्र पर आप्त शासन व्यवस्था को स्थापित करने हेतु जनता को जागृत करके जन क्रांति लाने के आकांक्षी हैं। इसलिए वह 'लक्ष्मण से कहते हैं- " सेना विजय दिला सकती है, क्रांति नहीं ला सकती, जनक्रांति जन जागृति से होती है और उसकी आकांक्षा जनता के भीतर से होती है।"⁵ इस प्रकार राम' को आधुनिक जन-नायक' की सोच रखने वाले पात्र की भांति प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में 'सीता' के चरित्र में नारीत्व की सहजता एवं स्वाभाविकता के साथ उद्देश्यपूर्ण कर्मठता का सृजन हुआ है। वह अबला रूप में चित्रित नहीं है वरन उन्हें राम से शस्त्र चलाने, नाव चलाने के प्रशिक्षण के साथ-साथ युद्धाभ्यास और संघर्ष प्रतिरोध का प्रशिक्षण लेते देखा जा सकता है। इस तरह 'अवसर में नारी को पुरुष के समस्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। सीता के चरित्र में स्थित समकालीन नारी की छवि को प्रतिबिम्बित कर, लेखक ने वर्तमान संदर्भ में नारी क्रांति के स्वर को मुखरित किया है।

अतः प्रस्तुत उपन्यास में डा. कोहली ने अनेक युगीन प्रश्नों को जहाँ पात्रों के माध्यम से उठाया है, वहीं चिर-प्रसिद्ध आदर्श पात्रों द्वारा युगीन समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है। पुरुष-प्रधान समाज में नारी की निष्प्रयोजन भूमिका के प्रति आधुनिक नारी की विक्षोभ हो या फिर वर्तमान में टूटते हुए वैवाहिक सम्बन्ध हो, सभी आधुनिक समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसका समाधान भी अवसर उपन्यास में बताया गया है। इस तरह 'अवसर' उपन्यास मूल रामकथा का पुनर्वाचन नहीं करता अपितु उसके माध्यम से आज के युग की मुख्य समस्याओं को उजागर भी करता है। खुद नरेंद्र कोहली जी कहते हैं कि-"यह कृति सर्वथा समकालीन, आधुनिक उपन्यास है जिसमें आधुनिक परिप्रेक्ष्य और मूल्य मानकों के आधार पर उस प्राचीनकथा के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक मूल्यों का विश्लेषण किया गया है।"⁶ अतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'अवसर रामकथा की परम्परा में एक विशिष्ट कृति है, जिसे समकालीन बोध के अनुरूप बनाना ही, इसकी अपनी विशिष्टता है।

नरेंद्र कोहली का तीसरा रामकथात्मक उपन्यास संघर्ष की ओर 472 पृष्ठों का उपन्यास है। यह उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में पंद्रह अध्याय तथा द्वितीय साण्ड में आठ अध्याय हैं। प्रथम खण्ड में 'चित्रकुट प्रसंग तथा पंचवटी प्रसंग के मध्य की रामकथा का काल्पनिक कथा-प्रसंगों व पात्रों द्वारा आधुनिक समस्याओं और संदर्भों की दृष्टि से तर्कसंगत विस्तार किया गया है। तो वहीं, उपन्यास के दूसरे खण्ड में 'पंचवटी प्रसंग' तथा सीताहरण की कथा समाहित करके शूर्पणखा' जैसी नारी पात्रों द्वारा नारी के कामविह्वल रूप और दिग्भ्रमित नारीत्व का अत्यंत मार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के प्रथम खण्ड के सभी मुख्य पात्रों का संघर्ष क्षेत्र उनकी अपनी-अपनी परिस्थितियों एवं अनुकूलता का प्रतिफल है। एक ओर राम, रायण के वध के लिए प्रयान करते हैं। तो वहीं राम की जनवाहिनी, ऋषिगण राक्षसों के आतंक के नाश के लिए संघर्ष करते हैं। इसी तरह शूर्पणखा अपने प्रथम प्यार के कप की क्षतिपूर्ति के लिए विवश होकर संघर्ष करती हैं। इन संघर्षों के बीच उपन्यास के प्रथम खण्ड में कथा का केन्द्रबिंदु राम और राम द्वारा चलाया जाने वाला जन-जागरण अभियान ही रहा है। इस तरह 'राम' यहीं एक क्रांतिकारी न्याय के पक्षधर नायक के रूप में चित्रित किए गए हैं जो, अपने सुविकसित आयुधों, गुद्ध कौशल, अपराजेय साहस और अदभूत कार्यक्षमता से शोषित एवं उत्पीड़ित जन साधारण की रक्षा राक्षसों से करते हैं। साथ ही उन्हें स्वयं आत्मरक्षा के लिए जागृत कर सशस्त्र जन-क्रांति हेतु संगठित करते हैं। वे तनमें अस्तित्व बोध और आत्मविश्वास उत्पन्न कर, उन्हें सामूहिक जीवन-विकास हेतु प्रोत्साहित करते हैं। वहीं मुनि धर्मभृत्य चाक्षस क्या होता है' उसकी आधुनिक परिभाषा देते नजर आये हैं।-"लेखक ने मुनि धर्मभृत्य' के माध्यम से राक्षसों को किसी एक जाति या वर्ग विशेष तक सीमित न रखकर वरन् समकालीन संदर्भ में जनता का शोषण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को 'राक्षस' की संज्ञा से अभिहित किया है।"⁷ इसी प्रकार राम के मुख द्वारा उगानि' की राक्षसी व्यवस्था के मूल स्वरूप का उद्घाटन करवाते हुए कोहली जी ने आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था के स्वरूप का चित्रण किया है। राम का उगानि की व्यवस्था के बारे में यह कहना कि - "जाति कोई अर्थ नहीं रखती, मूल बात व्यवस्था की है। उगानि की व्यवस्था रादासी व्यवस्था थी,

जिसमें एक व्यक्ति अनेक मनुष्यों के श्रम की आय को झपटकर उन्हें भूखा मारना चाहता है तथा स्वयं अपने लिए उस आय से विलास की सामग्री एकत्रित करना चाहता है। यदि कोई उसका विरोध करे तो यह हिंसा पर उतर आता है। शस्त्र शक्ति द्वारा दमन से वह अपने शोषण का क्रम चलाए रखना चाहता है।⁸ यह उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार करके जनता का शोषण करने वाली आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था के बीभत्स रूप को उजागर करता है। इसके अलावा -"राम द्वारा उत्पादन के साधनों पर के सामूहिक स्वामित्व की घोषणा, समाजवादी व्यवस्था के रूप को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास का खण्ड राक्षस बनाम पूंजीवादी निरंकुश शक्तियों के अन्याय, अत्याचार व शोषण के विरुद्ध संघर्ष करते राम की कथा को प्रस्तुत करता है, उनके बीच के संघर्षों को दिखलाता है।"⁹ अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करते 'राम' को ईश्वरत्व, धर्म और अध्यात्म से परे अगमलक और सघर्षशील मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले जननायक के रूप में चित्रित कर, पूरे संघर्ष को मानवीय घरातल पर प्रस्तुत करने का एक सफल प्रयास संघर्ष की ओर उपन्यास में किया गया है।

इतना ही नहीं ऋषि अगस्त्य को आचार्य के साथ-साथ एक योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अपनी अपूर्व सैन्य संगठन क्षमता के कारण राक्षस विरोधी मानसिकता तथा जन-जागृति के साधन बनते हैं। प्रस्तुत उपन्यास के प्रथम भाग में ऋषि 'अगस्त्य' के उनके चिंतनशीलता एवं कर्म पक्ष को देखते हुए वर्तमान संदर्भ में एक सचेत जागरूक एवं क्रांतिकेता बुद्धिजीवी के रूप में चित्रित किया गया है, वहीं ज्ञानश्रेष्ठ एवं सुतीक्ष्ण जैसे ऋषि आधुनिक युग के सुविधाभोगी, आत्मकेन्द्रित और तथाकथित शांतिप्रिय बुद्धिजीवियों के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं, जो अपनी हितरक्षा के लिए न्याय के संघर्ष का प्रतिकार करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत है। तो वहीं, उपन्यास के दूसरे खण्ड में पंचवटी प्रसंग तथा सीताहरण की कथा समाहित करके शूर्पणखा जैसी नारी पात्रों द्वारा नारी के कामविह्वल रूप और दिग्भ्रमित नारीत्व का अत्यंत मार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के प्रथम खण्ड के सभी मुख्य पात्रों का संघर्ष क्षेत्र उनकी अपनी-अपनी परिस्थितियों एवं अनुकूलता का प्रतिफल है। एक और राम, रायण के वध के लिए प्रयाण करते हैं। तो वहीं राम की जनवाहिनी, ऋषिगण रक्षकों के आतंक के नाश के लिए संघर्ष करते हैं। इसी तरह शूर्पणखा अपने प्रथम प्यार के कप की क्षतिपूर्ति के लिए विवश होकर संघर्ष करती हैं। इन संघर्षों के बीच उपन्यास के प्रथम खण्ड में कथा का केन्द्रबिंदु राम और राम द्वारा चलाया जाने वाला जन-जागरण अभियान ही रहा है। इस तरह 'राम' यहीं एक क्रांतिकारी न्याय के पक्षधर नायक के रूप में चित्रित किए गए हैं जो, अपने सुविकसित आयुर्धर्म, युद्ध कौशल, अपराजेय साहस और अदभूत कार्यक्षमता से शोषित एवं उत्पीड़ित जन साधारण की रक्षा राक्षसों से करते हैं। साथ ही उन्हें स्वयं आत्मरक्षा के लिए जागृत कर सशस्त्र जन-क्रांति हेतु संगठित करते हैं। वे तनमें अस्तित्व बोध और आत्मविश्वास उत्पन्न कर, उन्हें सामूहिक जीवन-विकास हेतु प्रोत्साहित करते हैं। वहीं मुनि धर्मभृत्य चाक्षस क्या होता है उसकी आधुनिक परिभाषा देते नजर आये हैं। लेखक ने मुनि धर्मभृत्य के माध्यम से राक्षसों को किसी एक जाति या वर्ग विशेष तक सीमित न रखकर वरन् समकालीन संदर्भ में जनता का शोषण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को राक्षस इतना ही नहीं ऋषि अगस्त्य को आचार्य के साथ-साथ एक योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अपनी अपूर्व सैन्य संगठन क्षमता के कारण राक्षस विरोधी मानसिकता तथा जन-जागृति के साधन बनते हैं। प्रस्तुत उपन्यास के प्रथम खण्ड में ऋषि 'अगस्त्य' के उनके चिंतनशीलता एवं कर्म पक्ष को देखते हुए वर्तमान संदर्भ में एक सचेत जागरूक एवं क्रांतिकेता बुद्धिजीवी के रूप में चित्रित किया गया है, वहीं ज्ञानश्रेष्ठ एवं सुतीक्ष्ण जैसे ऋषि आधुनिक युग के सुविधाभोगी, आत्मकेन्द्रित और तथाकथित शांतिप्रिय बुद्धिजीवियों के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं, जो अपनी हितरक्षा के लिए न्याय के संघर्ष का प्रतिकार करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास के इस खण्ड में अनेक ऐसे पात्र आये हैं जो काल्पनिक तौर पर लागे गये हैं किन्तु कहीं न कहीं ये सभी पात्र आधुनिक संदर्भ की दिशा में लेखक द्वारा गड़े गये हैं। अतः 'संघर्ष की ओर' उपन्यास के इस खण्ड में 'शरनंग आश्रम' से लेकर 'अगस्त्य आश्रम तक के संघर्ष की प्रमुख दिशा पूंजीवादी व्यवस्था रुपी राक्षसी सभ्यता के उन्मूलन तथा 'जन-क्रांति' की रही है। किन्तु, लेखक ने ग्रामीण तथा शहरी संस्कृति के द्वन्द्व तथा नारी शोषण जैसे युगीन समस्याओं पर भी प्रकाश डालने की कोशिश की है। समाज के प्रत्येक वर्ग में हो रहे नारी शोषण का उद्घाटन लेखक ने 'अनुसूया' के माध्यम से किया है। उन्होंने न सिर्फ नारी के शोषण पर प्रकाश डाला है वरन् नर-नारी समानता के स्वर्गों को भी मुखरित किया है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत खण्ड के कथा क्रम में प्रौढ़ श्रमिकों की शिवा, भट्टियों में धातुकर्मियों का निर्माण कार्य कुटीर निर्माण, लकड़ी उद्योग, भूमि वितरण, कृषि विकास, सामूहिक शिक्षा, नदीन शिक्षा प्रणाली, स्त्रियों का नेतृत्व, सामाजिक उत्पादन, सामाजोत्पादन पर वाद-विवाद, संगीतशाला का उद्घाटन, हथियारबंदी रणनीति पर बहस, जन सेना इत्यादि अन्यान्य विकास एवं सुधार के क्षेत्रों के विस्तार को भी बड़ी कशलतापूर्वक नियोजित किया गया है। अतः उपन्यास के इस खण्ड में पहली बार 'राम' जैसे आदर्श पात्र व्यर्थ रूप में जन-सामान्य के निकट खड़े दिखाई देते हैं।

'पंचवटी प्रसंग' तथा 'सीता हरण' की पौराणिक कथा को अपने में समाहित करती 'संघर्ष की ओर' के दूसरे खण्ड में प्रथम खण्ड के ही भांति राम 'अगस्त्य ऋषि के आदेश से राक्षस पीड़ित पंचवटी को राक्षसों के आक्रांत से मुक्त कराने एवं उनसे संघर्ष की ओर एक और कदम बढ़ाने हेतु मोर्चा बनाते हैं। प्रस्तुत खण्ड में लेखक ने एक और जहाँ 'सूर्पणखा' को प्रौढ़, धन-सत्ता एवं सेना सम्पत्ति के कारण क्रूर कामांध, विलासिनी नारी के रूप में चित्रित कर, कामविह्वल और दिग्भ्रमित नारीत्व रूप का अत्यन्त मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। वहीं, दूसरी ओर 'रावण' को भीतर के अंतर्द्वन्द्वों, क्षोभ,

दर्प मद, पश्चाताप, आत्मनिरीक्षण, भय, संदेह, आशंका, उग्रता इत्यादि विभिन्न भावों के उतार-चढ़ाव का कुशलतापूर्वक सूक्ष्म चित्रण भी प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत खण्ड का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष 'मारीच' तथा 'सीता हरण' से संबंधित प्रसंग है, जिसमें कथा के प्रसंग को अत्यन्त कुशलतापूर्वक 'माया' एवं अतिमानवीयता के जाल से पृथक्कर उसे तथ्यपरक ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। सीता हरण प्रसंग में 'मारीच' स्वयं 'मायामृग' न बनकर, 'हेम मृग' के लोभ में लुभाकर राम को जंगल ले जाता है तथा वहीं सीता मृग को नहीं अपितु अत्यन्त देदीप्यमान 'मृगछालावत् आसन' को देखकर प्रभावित होती है, जिसे मारीच ने उन्हें भ्रमित करने के उद्देश्य से धूर्ततापूर्वक बिछाया था। इसी प्रकार सीता हरण के इसी प्रसंग में 'सीता' हरण के पश्चात् भय से विलाप करती नजर नहीं आती अपितु शस्त्र संचालन कर रावण से आत्मरक्षा के लिए युद्ध करती है, जो इसे आधुनिक और प्रमाणिक बनाता है। इस तरह संघर्ष की ओर उपन्यास रामकथा के माध्यम से समसामयिक परिस्थितियों का चित्रण करने के साथ-साथ आधुनिक समस्याओं के संदर्भ में अपने गुण के चिंतन को वाणी देने में सफल रहा है। एक ओर जहाँ यह उपन्यास रामकथा को अलौकिक माया एवं अतिमानवीयता से मुक्त कराता है, वहीं इसे विश्वासनीय एवं प्रमाणिक भी बनाता है। अतः पाठकों का आधुनिक मन इस प्रमाणिक रामत्व और रामकथा को ससहज रूप में ग्रहण कर लेता है। पौराणिक घटनाओं का यह एक ऐसा तर्कसंगत, बुद्धिवादी, समाजशास्त्रीय, राजनैतिक और ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है जो बहुत आधुनिक प्रतीत होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संघर्ष की ओर रामकथात्मक उपन्यास पौराणिक गाथा होते हुए भी, आधुनिक संदर्भ को समेटने का साहसिक एवं सार्थक प्रयास करता है।

इसी भांति युद्ध उपन्यास रामकथा के औपन्यासिक रूप में लिखी जा रही उपन्यास शृंखला का चतुर्थ खण्ड है, जो दो भागों में प्रकाशित है।¹⁰ इसमें रामकथा के किष्किंधा कांड, 'सुंदर कांड तथा लंका कांड' की कथा समाहित है, जिसकी लेखक ने आधुनिक ढंग से व्याख्या की है।¹⁰ 'युद्ध' अपने समय अर्थ में शोषकों के विरुद्ध, शोषितों का आधुनिक स्वातंत्र्य युद्ध है। 'युद्ध' (भाग-1) की मूल कथा में समकालीनता को समायोजित करने का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास का आरंभ, विकसित पूंजीवादी राष्ट्र तथा अविकसित शोषित जाति के मूल द्वन्द्व से होता है। पूंजीवादी राष्ट्र 'लंका' का कूटनायक 'मायावी शराब (सुरा) तथा सुंदरी के माध्यम से अविकसित राष्ट्र किष्किंधा के वानर सम्राट 'बालि को फंसा कर पूर्ण रूप से अपनी तरह राक्षस अर्थात् शोषक बना देता है। प्रस्तुत उपन्यास अनेक पूंजीवादी राष्ट्रों की सरकारों के अनेक आंतरिक एवं बाह्य नीतियों को उजागर करता है। एक ओर जहाँ 'सुग्रीव' को सत्ता पर बैठने पर, आधुनिक संदर्भ में आपातकाल के बाद जनता में आये उत्साह को चित्रित करने का प्रयास हुआ है। तो वहीं सत्ता परिवर्तनोत्तर दमन की विविध तत्कालीक राजनीतिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करने का प्रयास, सुग्रीव को सत्ता से हटाकर बालि के बैठने के माध्यम से की गई है। इस प्रकार युद्ध उपन्यास के रामकथा की यह राजनीतिमूलक पुनर्रचना, आधुनिक संदर्भों में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है।

प्रस्तुत उपन्यास के इस खण्ड में राम एक बार फिर दण्डकारण्य की भांति सामाजिक नव-निर्माण का कार्य करते हुए नजर आये हैं। 'बालि कथ' के पश्चात् प्रसवणगिरि में भी राम के सानिध्य में संपन्न होने वाले शिविर के जीवन, सामूहिक व्यायाम, शस्त्राभ्यास, विविध प्रशिक्षण, शस्त्र निर्माण, भट्टी संचालन, धातु भण्डार की खोज एवं उसकी खुदाई, कृषि विकास, सेना संगठन तथा व्यापक स्तर पर शिक्षा के प्रधार संबंधी कार्यों के माध्यम से आधुनिक संदर्भ में सामाजिक नव-निर्माण को उद्घाटित किया गया है। इस प्रकार पौराणिक रामकथा में नवीन प्रसंगों की उद्भावना कर उसे आज को संदर्भ में प्रस्तुत कर तत्कालीन परिस्थितियों से अवगत कराने का प्रयास किया गया है, जिसमें लेखक डा० कोहली को पूर्णतः सफलता प्राप्त हुई है।

संदर्भ - ग्रंथ -

1. नरेंद्र कोहली के उपन्यासों का अनुशीलन. डा .प्रदीप लाड.अभय प्रकाशन सं० 2012 पृष्ठ सं० 88
2. वही. पृष्ठ सं० 88
3. रामकथा कालजयी चेतना . के सी.सिंधु .पुरोवाक् वाणी प्रकाशन, सं० 2007
4. नरेंद्र कोहली, अभ्युदय-1, (अवसर), पृष्ठ सं० 243
5. वही. पृष्ठ सं० 244
6. नरेंद्र कोहली के उपन्यास: समकालीन सरोकार . डा.माधवी रूपवाल .अन्नपूर्णा प्रकाशन सं- 2009, पृष्ठ सं० 22
7. नरेंद्र कोहली, अभ्युदय (खण्ड-1). सं० 2014, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा०) लि० प्रकाशन पृष्ठ सं० 402
8. वही. पृ. 405
9. वही. पृ. 442
10. नरेंद्र कोहली के उपन्यासों का अनुशीलन. डा .प्रदीप लाड.संस्करण 2012 अभय प्रकाशन, पृष्ठ सं० 89

पृथक बिहार आन्दोलन : एक अवलोकन

आकाश दीप*

प्रो. (डॉ.) दीनेश प्रसाद कमल**

आधुनिक बिहार का प्रांत के रूप में निर्माण 1912 ई० में हुआ। बिहार औपनिवेशिक शासन के आरंभ होने के उपरांत बंगाल के अधीन था।¹ बिहार की संस्कृति बंगाल की संस्कृति से भिन्न रही है। खान-पान भाषा, बोलियाँ आदि भिन्न हैं। इसलिए बंगाल का विकास तीव्र हो रहा था परन्तु बिहार विकास में सहायक होते हुए भी बंगालियों के अपेक्षा निम्नतर थे। 1911 से पूर्व बिहार मात्र भौगोलिक अभिव्यक्ति था।² बिहार बंगाल प्रेसीडेन्सी के अधीनस्थ क्षेत्र विशेष का नाम भर था। वस्तुतः सोलहवीं शताब्दी से ही केन्द्रीय सत्ता से अपनी निकटता का लाभ लेकर बंगाल ने बिहार का अपहरण सा कर रखा था, और बिहार की प्रसिद्धि में कम रुचि ले रहे थे। ऐसे में बिहार का सामाजिक-आर्थिक पतन होने लगा तथा राजनीतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से बंगालियों का बर्चस्व बढ़ने लगा जिन्होंने अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेज शासकों के राजस्व प्रयोगों के परिणामस्वरूप बिहार में अपने लिए भूअर्जन भी किया। आन्तरिक रूप से सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण भी बिहार पिछड़ता गया और समान भारतीय राष्ट्रीयता के अंग के रूप में अपना स्थान सुनिश्चित नहीं कर सका। वहाँ कोई वर्ग नहीं था, किन्तु जब कई कारणों से क्षेत्रीयता की चेतना वाला बिहारी मध्यम वर्ग का अभ्युदय हुआ तो 'बिहारियों के लिए बिहार' आन्दोलन का सूत्रपात भी हुआ। पृथक बिहार के आन्दोलन के प्रणेता डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा थे।³ इनके प्रमुख सहयोगी महेश नारायण, नंदकिशोर लाल, कृष्णा सहाय, अली इमाम, मौलाना शफूद्दीन, मौलाना मजहरूल हक, दीप नारायण सिंह एवं परमेश्वर लाल महंपा जैसे प्रबुद्ध लोग थे। महेश नारायण ने पृथक बिहार प्रान्त के गठन के आन्दोलन को ठोस आधार प्रदान किया।

पृष्ठभूमि

बिहार प्राचीन काल से राजनैतिक एवं प्रशासनिक तौर पर सशक्त स्थान रहा है। प्राचीनकाल में मगध का अभ्युदय एवं केन्द्रीयकृत शासन व्यवस्था की स्थापना यहाँ की जागरूकता को दर्शाता है।⁴ विश्व में सर्वप्रथम गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली का आरंभ वज्रगणतंत्र आज के वैशाली में हुआ। मध्यकाल में हेमू तथा शेरशाह सूरी जैसे योग्य नायकों के कारण बिहार की महत्ता बनी रही। 1574 ई० में अकबर द्वारा बिहार पर अधिकार करने के बाद यहाँ की महत्ता समय के साथ समाप्त होने लगी। औपनिवेशिक शासन में यह बंगाल प्रान्त का अंग था।⁵

कारण :- पृथक बिहार के निर्माण के कारण को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :-

i. स्थायी कारण

ii. अस्थायी कारण।

i. स्थायी कारणों में आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक कारणों के अन्तः क्रिया के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय चेतना का विकास था।

ii. अस्थायी कारण :-

(क) सरकारी नौकरी में बिहारियों के साथ भेदभाव,

(ख) बंगाल विभाजन (1905)

पृथक बिहार प्रान्त आन्दोलन प्रारंभ करने का श्रेय वास्तव में सच्चिदानंद सिन्हा एवं महेश नारायण को दिया जाता है। सच्चिदानंद सिन्हा अपने संस्मरण में लिखते हैं कि "उस समय इंग्लैंड में बिहार का नाम कोई नहीं जानता था। पिछली सदी के अंतिम वर्षों में जब मैं लंदन में अध्ययन कर रहा था, तो मुझे ज्ञात हुआ कि 'बिहार' शब्द को कोई नहीं जानता था।⁶ उनके संस्मरण में प्रमुख तथ्य निम्नलिखित था :-

❖ अंग्रेजों के साथ-साथ अधिकांश भारतीय भी 'बिहार' से परीचित नहीं थे।

❖ बिहार के भौगोलिक मानचित्र को बंगाली मानचित्र कहने के लिए बाध्य किया गया। भूगोल की पुस्तकों में बिहार शब्द दिखाने के लिए कहा जाता था।

* शोधार्थी, UGC- NET, JRF, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

** प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

❖ बिहारी सिपाही को बंगाल पुलिस का बिल्ला लगाये देखा। इन प्रकरणों के कारण में संकल्पबद्ध हुए कि बिहार का नव निर्माण आवश्यक है। औपनिवेशिक शासकों ने जानबुझकर बिहार की महत्ता को कम किया। शासन करने के लिए यहाँ के गौरवशाली अतीत को खत्म करना आवश्यक था, इसलिए सत्ता का केन्द्र बिहार न रखकर बंगाल रखा। बिहार के युवाओं के साथ सरकारी नौकरियों में भेदभाव होता था। बंगालियों से कनिष्ठ पद मिलता था।

बंगाल के विभाजन ने पृथककरण आन्दोलन को एक आधार प्रदान किया। 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विस्तार ने बिहारियों की स्मिता को जगाने का प्रयास किया। लोकभाषाओं में संचार प्रणाली का विकास ने पृथककरण आन्दोलन को गति दिया। महेश नारायण कायस्थ गजट के संस्थापक थे।⁷ इन्होंने पृथक बिहार आन्दोलन की गति देने के लिए अपने पत्र का नाम बदलकर 'दी बिहार टाइम्स' रखा। 'बिहार टाइम्स' का प्रकाशन शुष्क बिहार के जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसी संदर्भ में सच्चिदानंद सिंहा ने लिखा कि "इस पत्र के जन्मतिथि से ही सही अर्थों में बिहार में पुनर्जागरण की प्रारंभ माना जा सकता है।"⁸

सच्चिदानंद सिंहा ने हिन्दूस्तान रिव्यू में एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था, 'दि पार्टिशन ऑफ लोअर प्रोविन्सेज ऐन अल्टरनेटिव प्रोजेक्ट', इसी शीर्षक से महेश नारायण में 1905 में एक लेख लिखा। महेश नारायण की पत्रकारिता पृथक बिहार राज्य के निर्माण की मांग को लेकर मांगों के विश्लेषण जैसे विषयों पर अधिक रहा है। हसन इमाम ने महेश नारायण को बिहारी जनमत 'पिता' घोषित किया।

1906 में महेश नारायण और सच्चिदानंद सिंहा के आलेख को मिलाकर एक पुस्तक तैयार किया गया, जिसका नाम "पार्टिशन ऑफ बंगाल और सेपेरेशन ऑफ बिहार" था। इस पुस्तक में आँकड़ों के माध्यम से सिद्ध करने की कोशिश की गई कि बिहार के हितों का किस प्रकार नुकसान हो रहा है। 1895 से 1998 के मध्य प्रत्येक वर्ष प्रान्तीय लोकसेवा के लिए सात नियुक्तियों में पाँच स्थान बंगालियों को प्राप्त हुए। एक स्थान मुसलमान को मिला एवं शेष एक स्थान बिहारी को मिला। 1899 में एक भी बिहारी की नियुक्ति नहीं की गई। इसी वर्ष 60 सहायक जजों में से केवल तीन बिहारी जज बने। इस पर टिप्पणी करते हुए बिहार टाइम्स ने लिखा कि बिहार में पदस्थापित सहायक जजों के केवल पाँच प्रतिशत ही बिहारी हैं – यह अपने आप में हतोत्साहित करनेवाली स्थिति है। जजों की बहाली सीधी प्रतियोगिता के माध्यम से नहीं होनी थी। मुंसिफ के पद से प्रोन्नति के बाद सहायक जज बनते थे। 1883 से 1893 के मध्य केवल 7 बिहारी मुंसिफ बना था। बंगाल प्रांतीय शिक्षा सेवा के 103 अधिकारियों में केवल 3 बिहारी थे।⁹

समाचार पत्रों तथा संगठनों के क्रिया-कलापों से पृथक बिहार के निर्माण के लिए जनमंच बनने लगा। औपनिवेशिक सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये थे। जिसका प्रभाव लेखन पर पड़ा। फ्रांसिस बुकानन पहले ही पूर्णिया, भागलपुर, पटना और शाहाबाद जिलों का सर्वेक्षण उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में कर चुका था। 1828 में ईस्ट इंडिया गजेटियर प्रकाशित किया जा चुका था, जिसमें बिहार की मगध और मिथिला के दो स्वतंत्र सम्प्रभु राज्यों को प्रदेश कहा गया था।¹⁰ इसी तरह एक दूसरे गजेटियर में बिहार की महिला बतलाने के लिए मगध के महान इतिहास का उल्लेख किया गया। ईस्ट इंडिया गजेटियर में बिहार को 22⁰ और 27⁰ उत्तरी अक्षांश के बीच अवस्थित बताते हुए पलामू, रामगढ़ और छोटानागपुर क्षेत्रों सहित पटना, छपरा, भागलपुर, मुंगेर, गया और मुजफ्फरपुर जैसे नगरों का उल्लेख किया गया।¹¹ 1787 में ही जेम्स ग्रान्ट ने भी रामगढ़ को बिहार का जिला बताया था।¹² प्रशासनिक प्रतिवेदनों में बिहार को प्रजातीय रूप से बंगाल से भिन्न बताया गया और उत्तरी पश्चिमी प्रान्तों के निकट बताया गया।

ले0 गवर्नर जनरल कैम्बेल के शासन काल में दो महत्वपूर्ण प्रशासनिक निर्णय लिए गए:-

1. पटना और भागलपुर कमिश्नरी के विद्यालयों के विषय के रूप में हिन्दी की पढ़ाई और उन दोनों को 1870 के दशक तक बिहार का भाग बताना।¹³
2. कैम्बेल ने बिहार में बिहारियों के लिए कतिपय नौकरियाँ सुरक्षित कर दी। उसने सरकारी कार्य में उर्दू के स्थान पर हिन्दी के उपयोग तथा हिन्दी के पाठ्य पुस्तकों की रचना का आदेश दिया।¹⁴

1877 में बिहार गजट का प्रकाशन हिन्दी में हुआ।

- ❖ बंगाल के विभाजन की कयासों के मध्य बिहार के नेताओं ने बंगाल विभाजन के स्थान पर सांस्कृतिक आधार पर विभाजन के मांग किये। इलाहाबाद से प्रकाशित आंग्ल भारतीय पत्र दि पायोनियर में एक मुख्य लेख में कहा गया। यदि ब्रिटिश तार्किक है और विरोधाभासों को सहन नहीं करते हैं तो निम्न

प्रांतों की सरकार के कार्यभार को कम करना, आवश्यक रूप से बिहार और छोटानागपुर से पृथक्ता संभव है। पृथक आसाम न कभी हो सकता है और न कभी होगा। इतना लोकप्रिय कि वह बिहार की तरह सर्वोत्तम प्रशासकों को आकर्षित कर सके।

बिहार टाइम्स में भी लिखा गया कि “भौगोलिक रूप से सुगठित, जनसंख्यात्मक दृष्टि से एक रूप तथा सांस्कृतिक और भाषाई दृष्टि से बंगाल से भिन्न था, इसलिए इसे पृथक करना ही सुविधापूर्ण था।¹⁵

बिहार हेराल्ड में गुरु प्रसाद सेन के विरोधी स्वर और कलकत्ता के अमृत बाजार पत्रिका, हितवादी और बंगाली में भी विरोधी स्वर दिखाई दिये। कलकत्ता के हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका ‘भारत-मित्र’ ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया और लिखा कि बंगाल के अधीन बिहारी अनवरत शैक्षिक रूप से पिछले और आर्थिक रूप से विपन्न रहेंगे।¹⁶

बिहार टाइम्स ने 1907 में अपना नाम बदलकर ‘बिहारी’ कर दिया।

संदर्भ

1. मिश्रा, रत्नेश्वर (2018) बिहार का बदलता भूगोल का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ० 1.
2. वही
3. दास प्रमोदानंद एवं कुमार अमरेन्द्र(2007), बिहार : इतिहास एवं संस्कृति, लूसेन्ट, पटना, पृ० 231.
4. प्रसाद, ओम प्रकाश (2001), पाटलिपुत्र से पटना तक, काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना, पृ० 01.
5. वही
6. झा नरेन्द्र ,(2012) द मेकिंग ऑफ बिहार एंड बिहारीज, मनोहर पब्लि, नई दिल्ली, 2012, पृ० 01.
7. दत्त, के० के० (1968) दी कम्प्रेहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, काशी प्र० जायसवाल शोध संस्थान, पटना, पृ० 92.
8. नारायण एवं सिन्हा (1907), ‘पार्टिशन ऑफ बंगाल और सेपरेशन ऑफ बिहार, शोध आलेख
9. वही
10. रत्नेश्वर मिश्रा, पूर्वोक्त : पृ० 6.
11. वही
12. वही
13. वही
14. नरेन्द्र झा ,पूर्वोक्त.
15. बिहार टाइम्स
16. प्रमोदानंद दास एवं कुमार अमरेन्द्र ,पूर्वोक्त



वैश्विक पटल पर 1857 के क्रांति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

नन्दिता यादव*

डॉ. गोविन्द सिंह दागी**

यह तथ्य सर्वमान्य है, कि 1857 का क्रांति ब्रिटिश औपनिवेश नीति के लिए एक सशस्त्र चुनौती साबित हुआ जिसकी गूँज न सिर्फ भारत और ब्रिटेन में अपितु सम्पूर्ण विश्व में सुनाई पड़ी।

आज संचार एवं प्रौद्योगिकी के युग में कोई घटना घटित होती है उसकी ध्वनि हमें तुरंत ही सुनाई दे जाती है परंतु आज के 168 वर्ष पहले जब 1857 का क्रांति हुई। उस समय संचार के माध्यम बहुत ही सीमित हुआ करते थे। ऐसे परिस्थिति में भी यह क्रांति चीन, जापान, अमेरिका फ्रांस, रूस, इटली आदि देशों पर अपना एक अलग प्रभाव स्थापित किया। यहाँ रहने वाले बौद्धिक वर्ग के लोग तथा समाचार पत्रों ने इस क्रांति को वैश्विक पटल पर स्थापित किया।

यह क्रांति फ्रांस, अमेरिका, चीन, रूस, जापान आदि देशों के वक्ताओं एवं प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। इसके अतिरिक्त कार्लमार्क्स, आर्नेस्ट जॉन्स की कविता को भी शामिल किया गया है। साहित्यकार रामविलाम शर्मा ने अपनी पुस्तक 'सन् सतावन की राज्यक्रांति व मार्क्सवाद' में तथा विश्व की राजनीति में 1857 की जनक्रांति के नजरिए को उस देश की प्रचलित विचारधाराओं से जोड़कर रखा है।¹

इस परिपेक्ष्य में जब हम विभिन्न देशों सामाचार पत्रों का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि सभी देशों की अपनी अलग-अलग विचार धारें थीं। उस समय के समाचार पत्रों दो विचारधाराओं में छापे जाते थे उदारवादी एवं जनवादी, इन दोनों ने एक स्वर में इस जनाक्रोश को समर्थन दिया और उन्होंने अपने संपादकीय के माध्यम से यह दर्शाने की कोशिश कि, कि विद्रोह की व्यापकता का प्रमुख कारण ब्रिटिश सरकार की शोषणपरक नीतियाँ थीं। वहीं कुछ प्रतिक्रियावादी समाचार पत्रों ने इस विद्रोह का कारण औपनिवेशिक माना तथा इसे असफल होने के कामना करने लगे।

इस संदर्भ में सबसे पहली प्रतिक्रिया फ्रांस के समाचार पत्रों ने दी इस समय फ्रांस में तानाशाही शासन था। संचार के संसाधन भी सीमित थे, परन्तु इसके बावजूद भी फ्रांस में तथा वहाँ के समाचार पत्रों में जैसी चर्चाएँ हुई निःसंदेह वह फ्रांस की महान परम्पराओं के अनुकूल है। इस क्रांति को रेखांकित करते हुए 'ल सिएवल' नामक उदारवादी पत्र ने 3 सितम्बर 1857 के लिखा-भारत में क्रांति एक मात्र बड़ी घटना है जो इस समय सबका ध्यान खींच सकती है।²

फ्रांस में भी इस क्रांति को लेकर अलग-अलग प्रतिक्रिया हो रही थी जहाँ एक ओर भारतीयों के प्रति उनकी सहानुभूति थी। अंग्रेजों के दमन की नीति को भर्त्सना कर रहे थे। वहीं दूसरी तरफ इस क्रांति के पक्षधर भी थे जो अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। इन सब के बावजूद भी अंग्रेजों की भारतीयों के प्रति कुछ नीतियों को लेकर उनका मत एक जैसे थे। सितम्बर 1857 में फ्रांस के प्रतिक्रिया वादी पत्र 'ला पेज' ने लिखा-भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अंत का अर्थ होगा-सभ्यता पर बर्बरता की विजय।³

सरकारी सामाचार पत्र जर्नल 'डी देबात' ने नवम्बर 1857 के लिखा- इंग्लैण्ड हमारा मित्र है हमें आपसी संबंधों को तोड़ने की जोखिम के बिना उनकी कठिनाइयों से लाभ उठाना नहीं है। यह तक की फ्रांसीसी बुर्जुआ का मानना था कि भारतीय स्वाशासन करने में अयोग्य है और औपनिवेशिक शासन उनके हित में आवश्यक है।⁴

जहाँ एक ओर यहाँ की सामाचार पत्रों में अंग्रेजों की नीतियों को सही ठहराया जा रहा था वहीं दूसरी प्रतिक्रिया इससे बिल्कुल ही भिन्न थी वे अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किये गये अपराधों को भर्त्सना करते हुए इस क्रांति का मुक्तकण्ठ से भारत का स्वाधीनता संग्राम कहा। एक उदारवादी पत्र "ल एस्ताफेत" ने 31 अगस्त 1857 को लिखा था कि भारतीय केवल अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता की पुनः प्राप्ति के लिए ये क्रांति कर रहे हैं। इसी में यह बात कही गयी कि धर्म का प्रश्न बहाना भर था वास्तविक कारण राष्ट्रीयता का अभ्युदय था।⁵

* शोधार्थी (नेट), ए.पी.एस. विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश

** शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, प्रा. भा. सं. एवं पुरा विभाग

इतना ही नहीं जब ब्रिटिश प्रेस में 1857 का क्रांति एवं नाना साहब को गलत तरीके से बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया था उसकी आलोचना में 20 सितम्बर 1857 के संदर्भ में एस्ताफेत ने लिखा था—“ एक बात हमेशा के लिए सुनो, हमे विद्रोहियों के द्वारा की गई क्रूरताओं के बारे में अधिक मत कहो। उनकी क्रूरताएं करुण नाटक की नियति में लिखा गया उपसंहार है, जिसकी मुख्य भूमिका में अंग्रेज रहे हैं।”⁶

फ्रांस के बाद ब्रिटेन में भी 1857 के विद्रोह की प्रतिक्रिया हुई। हालांकि यह क्रांति ब्रिटेन के ही खिलाफ था, परन्तु इस क्रांति को लेकर वहां भी एकमत नहीं था। एक विचार धारा ईस्ट इंडिया कम्पनी का समर्थन कर रही थी और इसे 'सिपाही क्रांति' के रूप चिन्हित कर अपना नैतिक बचाव कर रही थी। तथा यूरोपीय औरतों और बच्चों पर ढाए गये जुल्मों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहे थे। 'न्यूकैसिल क्रॉनिकल' ने कैनिंग की आलोचना करते हुए लिखा है “यह समय दया दिखाने का नहीं है, हमे तीव्र और रक्त रंजित प्रतिशोध इस तरह लेना चाहिए कि हर हिन्दुस्तानी दिल्ली को सोचते ही थराने लगे— उनका सफाया ऐसी ही हो जैसे कि जंगली जानवरों का किया जाता है।”⁷

वही दूसरी विचारधारा जो 'ईस्ट इंडिया' कंपनी का विरोध कर रही थी इस क्रांति का समर्थन कर रहे थे। हालांकि ऐसे लोग कम ही थे। फिर भी इसके समर्थकों में डिजरैली व ग्लैडस्टोन के वक्तव्य काफी मायने रखते हैं। एक ब्रिटिश सामाचार 'द वीकली डिस्पैच' ने 23 अगस्त 1857 को लिखा— “यह तो कायरता ही होगी या फिर घोर अनैतिकता कि हम हिन्दुओं और मुसलमानों के अपराधों के खिलाफ कड़ी सजा की मांग करें और उन यूरोपीय अधिकारियों को दोषमुक्त कर दे, जो इन अपराधों के जिम्मेदार हैं।”⁸

कुछ इसी प्रकार का वक्तव्य वहां की एक 'डेसी ग्राफ' कंपनी ने दिये— “यह सबकी सरकार न होकर किसी एक वर्ग की है, और उसकी वर्ग का पोषण भी करती है।”⁹

रूस में भी इस क्रांति को लेकर उत्सुकता देखने को मिली। भारत में 1857 का क्रांति शुरू होने से कुछ समय पहले ही क्रीमिया युद्ध में ब्रिटेन-फ्रांस को संयुक्त सेना ने रूस को पराजित किया था ऐसी परिस्थिति में जब यह खबर लंदन से रूसी प्रेस में प्रकाशित की गयी तो यह रूसी जनमत को गहरे रूप से प्रभावित किया। जैसा की उदारवादी मैगनीज औतेचस्तपिये जयीस्की ने लिखा— आज के राजनीतिक जगत में भारत से संबंधित खबरों से अधिक महत्वपूर्ण और कोई नहीं है।¹⁰

1857 के क्रांति का रूसी दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न थे। परन्तु क्रांति के बारे में सबसे स्पष्ट दृष्टिकोण रूसी उदारवादियों का था। प्रतिक्रियावादी पत्र 'रस्की वैस्तनिक' ने लिखा कि इंग्लैण्ड व रूस दोनों की जिम्मेदारी है कि अविकसित व अंधकारपूर्ण एशिया को यूरोपीय सभ्यता के द्वारा प्रकाशित करें। परन्तु उस राय को रूस की जनता से कोई समर्थन नहीं मिला क्योंकि क्रीमिया के युद्ध में हुई बेइज्जती को रूसी जनता भूल नहीं पायी थी। इस लिए उनकी सहानुभूति भारतीय जनता के साथ थी। जो भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराने का प्रयास कर रहे थे।¹¹

क्रांति को लेकर कुछ इसी प्रकार की प्रक्रिया इटली में भी हुई। जो उस समय राष्ट्रीय एकीकरण की स्थापना के लिए संघर्ष कर रहा था वहाँ भी प्रतिक्रियावादियों द्वारा अपने-अपने विचार वयक्त किए गये। प्रतिक्रियावादियों द्वारा अपने-अपने विचार वयक्त किए गये। जुलाई 1857 में एक प्रतिक्रियावादी जोसफ मसारी ने इटालियन जनता को यह संदेश दिया कि यह क्रांति भारत में राष्ट्र का निर्माण करने और स्वाधीनता प्राप्त करने से संबंधित नहीं है बल्कि “सिपाही क्रांति विशुद्ध फौजी बगावत है स्वाधीनता से उसका कोई संबंध नहीं है।”¹²

इटली के जनवादी इससे बिल्कुल सहमत नहीं हुए वे 1857 के क्रांति को भारत के स्वाधीनता संग्राम से जोड़कर देख रहे थे इसी परिपेक्ष्य में इटालियन पत्रिका—'इतालिया दि पोवोलो' ने चीन और भारत के एक ही समय होने वाले क्रांति के महत्व के बारे में लिखा है। “पीली नदी और गंगा के तट पर क्रांति का अभ्युदय एक विराट धरना है और किसी भी तरह क्यों न देख, यह स्वाधीनता की चेतना के नए उद्वेलक की सूचक है।”¹³

कुछ इसी प्रकार की प्रतिक्रिया समाजवाद के प्रणेता कार्ल मार्क्स, इंग्लैण्ड के कवि अर्नेस्ट जॉंस के आलेखों द्वारा भी दी गई। कार्ल मार्क्स और एंजेल्स ने सन् सत्तावन के क्रांति पर एक लेख 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' में प्रकाशित किया। यह लेख क्रांति को जनमानस तक पहुँचाने में काफी कारगर साबित हुआ। मार्क्स ने अपना पहला लेख 17 जुलाई 1857 को लिखा जिसमें उन्होंने एशियाई जातियों में ब्रिटिश प्रभुत्व के विरुद्ध फैले हुए आम असंतोष की बात कही थी। उन्होंने लिखा की पहले के युद्ध किसी एक राज्य के और अक्सर किसी एक राष्ट्रीयता के दम पर लड़े गये थे। परन्तु 1857 की क्रांति में विभिन्न जातियों और समुदायों

के लोग शामिल हुए सबका अपना अलग लक्ष्य तथा अन्ततः सभी ब्रिटिश शोषण से छुटकारा पाना ही चाह रहे थे।¹⁴

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि कार्लमार्क्स ने मौलिक कारणों को व्यापक परिदृश्य में रखकर समझने की कोशिश की है। इसके अतिरिक्त मार्क्स ने इसके स्वरूप को भी काफी स्पष्टता से परिभाषित किया है। तथा इस क्रांति को राष्ट्रीय क्रांति का दर्जा प्रदान किया है। मार्क्स ने इस क्रांति के स्वरूप का निर्धारण अपनी विचारधारा के आधार पर नहीं बल्कि तथ्यों के आलोक में किया है।¹⁵

1857 की क्रांति के संदर्भ में उपरोक्त वर्णित विचारों, सम्पादकीय टिप्पणियों में अवलोकन के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सम्पूर्ण विश्व में इस क्रांति को गम्भीरता से लिया गया, एवं उस कालखंड में यह साम्राज्यवाद के विरोधियों के लिए एक प्रेरणा स्रोत भी बना रहा। भारत में इस क्रांति के अधिकांश स्रोत एंकाकी हैं जो इस क्रांति को समझने से पूर्ण रूप से सक्षम नहीं हैं। अब वैदेशिक स्रोत में तत्पक्षता का भाव स्वाभाविक रूप से ज्यादा होने के कारण इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. शर्मा रामविलास सन् सत्तावन की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद, इलाहाबाद 2007, पृष्ठ 358।
2. वही, पृष्ठ 359।
3. चार्ल्स फॉरनियन 'समकालीन फ्रांसीसी प्रेस, उद्भावना, अंक 75, संपादित प्रदीप सक्सेना, जुलाई 2007, पृष्ठ 194 – 195।
4. वही, पृष्ठ 198।
5. वही, पृष्ठ 196।
6. शर्मा रामविलास पृष्ठ 363।
7. शर्मा रामविलास पृष्ठ 364।
8. जेम्स बायन, ब्रिटिश दृष्टि और भारतीय क्रांति, हमारे इतिहास में 1857, संपादित, प्रदीप सक्सेना, दिल्ली 2012 पृष्ठ 180।
9. वही पृष्ठ 177।
10. पी शास्त्रिको '1857 और रूसी प्रेस, वसुधा अंक 76 संपादित, कमला प्रसाद भोपाल, जनवरी-मार्च 2008 पृष्ठ 50।
11. वही पृष्ठ 51-52।
12. शर्मा रामविलास पृष्ठ 359।
13. वही पृष्ठ 361।
14. पूर्वोक्त शर्मा रामविलास पृष्ठ 409।
15. पी.सी. जोशी, हमारे इतिहास में 1857 ; दिल्ली 2021 पृष्ठ 115।



डिजिटल युग में महाविद्यालय पुस्तकालय की बदलती भूमिका और चुनौतियाँ

अजय कुमार यादव*

सारांश

डिजिटल क्रांति ने कॉलेज पुस्तकालयों की भूमिका में व्यापक परिवर्तन किया है, उन्हें मुद्रित सामग्री के पारंपरिक भंडारों से डिजिटल सूचना प्रबंधन के गतिशील केंद्रों में परिवर्तित कर दिया है। इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों, ऑनलाइन डेटाबेस और ओपन-एक्सेस प्लेटफॉर्म के प्रसार के साथ, पुस्तकालय अब सूचना साक्षरता, डिजिटल छात्रवृत्ति और आभासी शिक्षण वातावरण के आवश्यक सूत्रधार बन गए हैं। इस विकास ने उनके कार्यात्मक दायरे का विस्तार किया है और पुस्तकालयों को शैक्षणिक अनुसंधान, शिक्षण और सहयोगात्मक शिक्षण में महत्वपूर्ण भागीदार के रूप में स्थापित किया है। हालाँकि, डिजिटल युग में संक्रमण कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ भी प्रस्तुत हुई हैं, जिनमें बढ़ती सदस्यता लागत, तकनीकी अप्रचलन, डिजिटल विभाजन और पुस्तकालय कर्मचारियों के बीच निरंतर व्यावसायिक विकास की आवश्यकता शामिल है। इसके अलावा, डिजिटल संसाधनों की दीर्घकालिक अखंडता सुनिश्चित करने में डिजिटल संरक्षण और सामग्री की सुलभता के मुद्दे अभी भी गंभीर चिंताएँ बने हुए हैं। यह शोधपत्र डिजिटल युग में कॉलेज पुस्तकालयों की बदलती भूमिका की जाँच करता है, उनके समक्ष आने वाली बहुआयामी चुनौतियों का विश्लेषण करता है, और शैक्षणिक उत्कृष्टता को बढ़ावा देने में उनकी निरंतर प्रासंगिकता सुनिश्चित करने के लिए रणनीतिक दृष्टिकोणों की पड़ताल करता है। तकनीकी नवाचार को अपनाकर, समावेशी पहुँच को बढ़ावा देकर, तथा सेवा मॉडलों को पुनर्निर्भाषित करके, महाविद्यालय पुस्तकालय उच्च शिक्षा के निरंतर विकसित होते परिदृश्य में महत्वपूर्ण ज्ञान केन्द्र के रूप में कार्य करना जारी रख सकते हैं।

की-वर्ड- कॉलेज लाइब्रेरी, डिजिटल युग, डिजिटल परिवर्तन, ई-संसाधन, तकनीकी नवाचार, ओपन एक्सेस, लाइब्रेरी कंसोर्टिया, डिजिटल डिवाइड, पुस्तकालयों में एआई, शैक्षणिक सहयोग।

परिचय

कॉलेज पुस्तकालय पारंपरिक रूप से शैक्षणिक संस्थानों की आधारशिला रहे हैं, जो ज्ञान के भंडार, बौद्धिक गतिविधियों के केंद्र और शिक्षण, अधिगम और अनुसंधान के लिए आवश्यक सहायक प्रणालियों के रूप में कार्य करते हैं। हालाँकि, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) में तीव्र प्रगति से प्रेरित डिजिटल क्रांति ने पुस्तकालयों की भूमिका को मौलिक रूप से बदल दिया है, जिससे उन्हें केवल मुद्रित सामग्री के संरक्षक से गतिशील डिजिटल सूचना केंद्रों में बदलना आवश्यक हो गया है जो ई-पुस्तकों, ई-पत्रिकाओं, डिजिटल अभिलेखागार और शैक्षणिक डेटाबेस सहित इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों की एक विशाल श्रृंखला तक निर्बाध पहुँच की सुविधा प्रदान करते हैं।¹

डिजिटल युग में, पुस्तकालयों से न केवल इन संसाधनों तक पहुँच प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है, बल्कि सूचना साक्षरता को भी बढ़ावा देने की अपेक्षा की जाती है, जिससे छात्र और संकाय ऑनलाइन उपलब्ध सूचनाओं की विशाल मात्रा का आलोचनात्मक मूल्यांकन और नैतिक रूप से उपयोग कर सकें।² इसके अलावा, पुस्तकालय खुली पहुँच पहलों का समर्थन करने, संस्थागत भंडारों का प्रबंधन करने और डिजिटल प्लेटफॉर्मों के माध्यम से सहयोगात्मक अनुसंधान को सुविधाजनक बनाने में तेजी से सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।³ COVID-19 महामारी ने इस डिजिटल परिवर्तन को तेज कर दिया है, जिसने आभासी पुस्तकालय सेवाओं और शैक्षणिक संसाधनों तक दूरस्थ पहुँच के महत्वपूर्ण महत्व को उजागर किया है, जिससे पुस्तकालयों को तेजी से नवाचार करने और अपने डिजिटल सेवा पोर्टफोलियो का विस्तार करने के लिए मजबूर होना पड़ा है।⁴ इन अवसरों के बावजूद, पुस्तकालयों को डिजिटल सदस्यता की बढ़ती लागत, तकनीकी अप्रचलन, डिजिटल विभाजन जो समान पहुँच को सीमित करता है, और जटिल डिजिटल पारिस्थितिकी प्रणालियों⁵ का प्रबंधन करने के लिए पुस्तकालय पेशेवरों को पुनः प्रशिक्षित करने की निरंतर आवश्यकता सहित कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इस प्रकार, डिजिटल युग का विकसित परिदृश्य मांग करता है कि कॉलेज पुस्तकालय रणनीतिक रूप से अपनी भूमिकाओं की पुनर्कल्पना करें, तकनीकी नवाचारों को अपनाएं, और अपने संस्थानों के शैक्षणिक मिशन का अभिन्न अंग बने रहने के लिए इन बहुमुखी चुनौतियों का समाधान करें।

* एसोसिएट प्रोफेसर, लाइब्रेरी, सकलडीहा पीजी कॉलेज, सकलडीहा, चंदौली।

कॉलेज पुस्तकालयों की विकसित होती भूमिका

1. पुस्तकों के संरक्षक से डिजिटल सूचना केंद्र तक

ऐतिहासिक रूप से, कॉलेज पुस्तकालयों को मुख्यतः मुद्रित ज्ञान के भौतिक भंडार के रूप में देखा जाता था। हालाँकि, इंटरनेट और डिजिटलीकरण के आगमन ने उन्हें गतिशील सूचना केंद्रों में बदल दिया है, जिससे उनके भौतिक संग्रहों से परे विशाल डिजिटल संसाधनों तक पहुँच आसान हो गई है। पुस्तकालय अब ई-पुस्तकों, ई-पत्रिकाओं, डेटाबेस और डिजिटल अभिलेखागार तक पहुँच प्रदान करते हैं, जो विविध शैक्षणिक विषयों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं (जेनकिंस, 2020)।⁶

2. सूचना साक्षरता को सुगम बनाना

सूचना अधिभार के युग में, कॉलेज पुस्तकालयों की एक प्रमुख भूमिका छात्रों और संकाय सदस्यों के सूचना साक्षरता कौशल को बढ़ाना है। पुस्तकालयाध्यक्ष उपयोगकर्ताओं को विश्वसनीय डिजिटल स्रोतों से जानकारी का पता लगाने, उसका मूल्यांकन करने और नैतिक रूप से उसका उपयोग करने का तरीका सिखाने में सक्रिय रूप से शामिल होते हैं (कॉलेज और अनुसंधान पुस्तकालय संघ, 2015)।⁷ इसने पुस्तकालय को शैक्षणिक निर्देश में एक आवश्यक भागीदार बना दिया है।

3. अनुसंधान और मुक्त पहुँच पहलों का समर्थन

आधुनिक कॉलेज पुस्तकालय शैक्षणिक अनुसंधान को समर्थन देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे सदस्यता-आधारित विद्वानों के डेटाबेस तक पहुँचने के लिए प्लेटफॉर्म प्रदान करते हैं और ओपन एक्सेस संग्रहों को बढ़ावा देते हैं। पुस्तकालयों द्वारा प्रबंधित संस्थागत संग्रह संस्थान के शोध परिणामों को प्रसारित करने में मदद करते हैं, जिससे शैक्षणिक साझाकरण की संस्कृति को बढ़ावा मिलता है (सुबार, 2012)।⁸

4. सहयोगात्मक शिक्षण स्थान

इंटरैक्टिव और सहयोगात्मक शिक्षण मॉडल की ओर बदलाव के साथ, पुस्तकालय "लर्निंग कॉमन्स" के रूप में विकसित हो रहे हैं जो मल्टीमीडिया संसाधनों, समूह अध्ययन कक्षाओं और डिजिटल प्रयोगशालाओं से सुसज्जित लचीले स्थान प्रदान करते हैं। यह बदलाव सहयोगात्मक शैक्षणिक जुड़ाव के लिए एक भौतिक और आभासी वातावरण के रूप में पुस्तकालय की भूमिका को रेखांकित करता है (बेनेट, 2003)।⁹

5. आभासी पुस्तकालय सेवाएँ प्रदान करना

कोविड-19 महामारी ने आभासी पुस्तकालय सेवाओं की ओर बदलाव को तेज़ कर दिया है। डिजिटल संदर्भ सेवाएँ, डेटाबेस तक दूरस्थ पहुँच, आभासी सूचना साक्षरता सत्र और ऑनलाइन शैक्षणिक परामर्श आधुनिक कॉलेज पुस्तकालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली मानक सेवाएँ बन गई हैं (आईएफएलए, 2021)।¹⁰

डिजिटल युग में कॉलेज पुस्तकालयों के सामने प्रमुख चुनौतियाँ

1. बजट की कमी और बढ़ती सदस्यता लागत

कॉलेज पुस्तकालयों के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक डिजिटल संसाधनों की सदस्यता लेने का वित्तीय बोझ है। शैक्षणिक पत्रिकाओं, डेटाबेस और ई-पुस्तकों की लागत लगातार बढ़ रही है, जो अक्सर पुस्तकालय के बजट से भी अधिक हो जाती है। यह वित्तीय दबाव विकासशील देशों में अधिक है जहाँ संस्थान आवश्यक शैक्षणिक संसाधनों की सदस्यता बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं (बॉश और हेंडरसन, 2013)।¹¹

2. डिजिटल विभाजन और पहुँच संबंधी समस्याएँ

डिजिटल क्रांति के बावजूद, तकनीकी असमानताओं के कारण सभी छात्रों और शिक्षकों की डिजिटल संसाधनों तक समान पहुँच नहीं है। उच्च गति वाले इंटरनेट की कमी, अपर्याप्त डिजिटल उपकरण और कुछ उपयोगकर्ता समूहों में सीमित डिजिटल साक्षरता डिजिटल विभाजन को और बढ़ा देती है, जिससे समावेशी पहुँच के लक्ष्य वाले पुस्तकालयों के लिए एक बड़ी चुनौती उत्पन्न होती है (आईटीयू, 2021)।¹²

3. तकनीकी अप्रचलन

तकनीकी प्रगति की तीव्र गति अक्सर मौजूदा पुस्तकालय प्रणालियों और प्लेटफॉर्मों के अप्रचलन का कारण बनती है। पुस्तकालयों पर अपने डिजिटल बुनियादी ढाँचे को उन्नत करने, नई सूचना प्रबंधन प्रणालियों को अपनाने और कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं डेटा विश्लेषण जैसी उभरती तकनीकों को अपनी सेवाओं में एकीकृत करने का निरंतर दबाव रहता है (Jisc, 2018)।¹³

4. डिजिटल सामग्री का संरक्षण

मुद्रित सामग्री के विपरीत, डिजिटल सामग्री तकनीकी विफलताओं, प्रारूप अप्रचलन और साइबर खतरों के प्रति संवेदनशील होती है। डिजिटल शैक्षणिक संसाधनों के दीर्घकालिक संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए मज़बूत डिजिटल संरक्षण

रणनीतियों की आवश्यकता होती है, जिन्हें कई कॉलेज पुस्तकालय अभी भी विकसित कर रहे हैं (डिजिटल संरक्षण गठबंधन, 2015)।¹⁴

5. पुस्तकालयाध्यक्षों की भूमिका को पुनर्परिभाषित करना

भौतिक संग्रहों के संरक्षक के रूप में पुस्तकालयाध्यक्षों की पारंपरिक भूमिका अब सूचना नेविगेटर, डिजिटल क्यूरेटर और अनुसंधान सुविधाकर्ता के रूप में विकसित हो रही है। हालाँकि, इस भूमिका परिवर्तन के लिए निरंतर व्यावसायिक विकास और पुनः कौशलीकरण की आवश्यकता होती है, जो अक्सर संस्थागत जड़ता और संसाधन की कमी के कारण बाधित होता है (कोरल, 2010)।¹⁵ **भविष्य के लिए तैयार पुस्तकालयों के लिए रणनीतियाँ**

तेज़ी से विकसित हो रहे शैक्षिक परिदृश्य में, कॉलेज पुस्तकालयों को गतिशील, तकनीक-सक्षम ज्ञान केंद्रों में बदलना होगा। प्रासंगिक और प्रभावी बने रहने के लिए, उन्हें ऐसे रणनीतिक उपाय अपनाने होंगे जो डिजिटल युग के शिक्षार्थियों और शिक्षकों की ज़रूरतों के अनुरूप हों। पुस्तकालयों को भविष्य के लिए तैयार बनाने के लिए नीचे प्रमुख रणनीतियाँ दी गई हैं:

1. डिजिटल बुनियादी ढाँचे में निवेश

आधुनिक पुस्तकालयों को मज़बूत डिजिटल बुनियादी ढाँचे को प्राथमिकता देनी चाहिए:

- ऑनलाइन संसाधनों तक निर्बाध पहुँच के लिए उच्च गति की इंटरनेट कनेक्टिविटी।
- कुशल कैटलॉगिंग, संचलन और उपयोगकर्ता प्रबंधन के लिए क्लाउड-आधारित पुस्तकालय प्रबंधन प्रणाली (LMS)।
- दूरस्थ पहुँच समाधान छात्रों और संकाय को कहीं से भी पुस्तकालय संसाधनों का उपयोग करने में सक्षम बनाते हैं।
- ये निवेश भौतिक और आभासी शिक्षण वातावरण के बीच की खाई को पाटेंगे।

2. खुली पहुँच को बढ़ावा देना

पत्रिका सदस्यता की बढ़ती लागत शैक्षणिक संस्थानों के लिए एक चुनौती है। पुस्तकालय इसे निम्न तरीकों से कम कर सकते हैं:

- संकाय को खुली पहुँच वाली पत्रिकाओं में शोध प्रकाशित करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- शैक्षणिक कार्यों को संग्रहित करने और साझा करने के लिए संस्थागत संग्रह बनाना।
- मुक्त शैक्षणिक संसाधनों (OER) का समर्थन करके शिक्षण सामग्री को निःशुल्क उपलब्ध कराना।
- यह ज्ञान साझा करने की संस्कृति को बढ़ावा देता है और वित्तीय बाधाओं को कम करता है।

3. सहयोग और कंसोर्टिया

पुस्तकालय अपने संसाधन आधार को निम्नलिखित तरीकों से बढ़ा सकते हैं:

- क्षेत्रीय, राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय पुस्तकालय कंसोर्टिया में शामिल होकर।
- पत्रिकाओं और डेटाबेस के लिए अनुकूल सदस्यता सौदों पर बातचीत करने हेतु संसाधनों को एकत्रित करना।
- विविध सामग्रियों तक पहुँच को व्यापक बनाने के लिए अंतर-पुस्तकालय ऋण प्रणालियों में संलग्न होना।
- ऐसे सहयोग संसाधनों की उपलब्धता को बढ़ाते हैं और व्यक्तिगत लागतों को कम करते हैं।

4. डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम

भविष्य के लिए तैयार पुस्तकालय को डिजिटल दक्षताओं का पोषण करना चाहिए:

- शोध पद्धतियों, उद्धरण प्रबंधन और डेटाबेस उपयोग पर कार्यशालाओं का आयोजन करना।
- डिजिटल अभिलेखागार और शैक्षणिक खोज इंजनों को नेविगेट करने में व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करना।
- संकाय और छात्रों को ऑनलाइन जानकारी का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के लिए सशक्त बनाना।
- ये पहल उपयोगकर्ताओं को डेटा-संचालित शैक्षणिक दुनिया में फलने-फूलने के लिए सक्षम बनाती हैं।

5. उभरती हुई तकनीकों को अपनाना

नवीन तकनीकें सीखने की प्रक्रिया को नए सिरे से परिभाषित कर रही हैं:

- व्यक्तिगत और सटीक जानकारी प्राप्त करने के लिए AI-संचालित खोज इंजन।
- इमर्सिव शैक्षणिक अनुभवों के लिए वर्चुअल रियलिटी (VR) उपकरण।
- डिजिटल अधिकारों का प्रबंधन और सुरक्षित लेनदेन सुनिश्चित करने के लिए ब्लॉकचेन तकनीक।
- इन उन्नतियों को एकीकृत करके, पुस्तकालय अत्याधुनिक शिक्षण सहायता प्रदान कर सकते हैं।

शैक्षणिक पुस्तकालयों का भविष्य उनकी अनुकूलनशीलता में निहित है। डिजिटल बुनियादी ढाँचे को अपनाकर, खुली पहुँच को बढ़ावा देकर, सहयोग को बढ़ावा देकर, डिजिटल साक्षरता को बढ़ाकर और उभरती हुई तकनीकों का लाभ उठाकर, कॉलेज पुस्तकालय जीवंत, भविष्य के लिए तैयार ज्ञान पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में विकसित हो सकते हैं जो शैक्षणिक उत्कृष्टता का समर्थन करते रहेंगे।

निष्कर्ष

डिजिटल क्रांति ने कॉलेज पुस्तकालयों की भूमिका को नए सिरे से परिभाषित किया है, उनकी पहचान पारंपरिक पुस्तक-उधार केंद्रों से बदलकर गतिशील, बहुक्रियाशील शैक्षणिक सहायता केंद्रों में बदल दी है। इस नए प्रतिमान में, पुस्तकालय अब केवल पुस्तकों के भंडारण के लिए भौतिक स्थान नहीं रह गए हैं, बल्कि डिजिटल शिक्षण पारिस्थितिकी तंत्र का अभिन्न अंग बन रहे हैं, जो ई-संसाधनों, ऑनलाइन डेटाबेस, डिजिटल रिपॉजिटरी और सहयोगी शिक्षण प्लेटफॉर्मों तक पहुँच प्रदान करते हैं। इस परिवर्तन ने उनकी प्रासंगिकता को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाया है, जिससे पुस्तकालयों को अनुसंधान सुविधा, डिजिटल सामग्री संग्रह

और सूचना साक्षरता प्रशिक्षण जैसी विविध शैक्षणिक गतिविधियों का समर्थन करने में सक्षम बनाया गया है। हालाँकि, यह परिवर्तन अपनी चुनौतियों से रहित नहीं है। वित्तीय बाधाएँ अक्सर पुस्तकालयों की आवश्यक तकनीकी अवसंरचना में निवेश करने की क्षमता को सीमित कर देती हैं, जबकि डिजिटल उपकरणों का निरंतर विकास निरंतर सीखने और अनुकूलन की माँग करता है। इसके अतिरिक्त, पुस्तकालयों को डिजिटल विभाजन को पाटने की शैक्षणिक चुनौती का सामना करना होगा, जिससे सभी छात्रों और शिक्षकों के लिए संसाधनों तक समान पहुँच सुनिश्चित हो, चाहे उनकी तकनीकी दक्षता या संस्थागत संसाधन कुछ भी हों।

डिजिटल युग में शैक्षणिक जीवन का केंद्र बने रहने के लिए, कॉलेज पुस्तकालयों को एक दूरदर्शी और रणनीतिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। इसमें शैक्षणिक संघों, प्रौद्योगिकी प्रदाताओं और ओपन-एक्सेस प्लेटफॉर्म के साथ सहयोग को बढ़ावा देना शामिल है ताकि लागतों का प्रभावी प्रबंधन करते हुए संसाधनों की उपलब्धता बढ़ाई जा सके। उभरती हुई तकनीकों जैसे कि AI-संचालित खोज प्रणालियाँ, इमर्सिव लर्निंग अनुभवों के लिए वर्चुअल और ऑगमेंटेड रियलिटी, और सुरक्षित डिजिटल अधिकार प्रबंधन के लिए ब्लॉकचेन को अपनाना उनकी सेवाओं को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण होगा। इसके अलावा, पुस्तकालय कर्मचारियों को जटिल डिजिटल पारिस्थितिकी प्रणालियों को नेविगेट और प्रबंधित करने के लिए आवश्यक कौशल से लैस करने हेतु सतत व्यावसायिक विकास कार्यक्रम आवश्यक हैं। जो पुस्तकालय अपने पारंपरिक शैक्षणिक मूल्यों—जैसे ज्ञान संरक्षण, शैक्षणिक अखंडता और बौद्धिक स्वतंत्रता—को नवीन डिजिटल प्रथाओं के साथ सफलतापूर्वक मिश्रित करते हैं, वे न केवल वर्तमान चुनौतियों का सामना करेंगे, बल्कि 21वीं सदी में शैक्षणिक उत्कृष्टता को आगे बढ़ाने वाले अग्रणी संस्थानों के रूप में भी उभरेंगे। इस डिजिटल परिवर्तन में अनुकूलन, विकास और नेतृत्व करने की उनकी क्षमता अंततः उच्च शिक्षा परिदृश्य में उनकी निरंतर प्रासंगिकता और प्रभाव का निर्धारण करेगी।

संदर्भ-ग्रन्थ-

1. Borgman, C. L. (2000). *From Gutenberg to the Global Information Infrastructure: Access to Information in the Networked World*. MIT Press.
2. Association of College & Research Libraries (ACRL). (2015). *Framework for Information Literacy for Higher Education*. <https://www.ala.org/acrl/standards/ilframework>
3. Suber, P. (2012). *Open Access*. MIT Press.
4. IFLA. (2021). *COVID-19 and the Global Library Field*. International Federation of Library Associations and Institutions. <https://www.ifla.org/covid-19-and-libraries>
5. Digital Preservation Coalition. (2015). *Digital Preservation Handbook*. <https://dpconline.org/handbook>
6. Jenkins, B. (2020). "Reimagining Libraries in the Digital Age". *The Chronicle of Higher Education*.
7. Association of College & Research Libraries (ACRL). (2015). *Framework for Information Literacy for Higher Education*. [Online]. Available:
8. Suber, P. (2012). *Open Access*. MIT Press.
9. Bennett, S. (2003). *Libraries Designed for Learning*. Washington, D.C.: Council on Library and Information Resources.
10. IFLA. (2021). *COVID-19 and the Global Library Field*. International Federation of Library Associations and Institutions. [Online]. Available: <https://www.ifla.org/covid-19-and-libraries>
11. Bosch, S., & Henderson, K. (2013). "The Winds of Change: Periodicals Price Survey 2013". *Library Journal*.
12. ITU. (2021). *Measuring digital development: Facts and Figures 2021*. International Telecommunication Union
13. Jisc. (2018). *The Future of Library Services*. [Online]. Available: <https://www.jisc.ac.uk/reports/future-of-library-services>
14. Digital Preservation Coalition. (2015). *Digital Preservation Handbook*. [Online]. Available: <https://dpconline.org/handbook>
15. Corral, S. (2010). "Educating the academic librarian as a blended professional: A review and case study". *Library Management*, 31(8/9), 567-593.

